॥ श्रीहरिः ॥

देवर्षि नारद

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

लेखक—

चतुर्वेदी पं० श्रीद्वारकाप्रसाद शर्मा
साहित्यभूषण, एम० आर० ए० एस०
पं० श्रीइन्द्रनारायण द्विवेदी

निवेदन

भगवद्भक्तिके प्रधान आचार्य लोक-प्रसिद्ध परम भागवत देवर्षि श्रीनारदका महान् चरित्र जगत्‌के लिये परम आदर्श है। देवर्षि नारद ज्ञानके स्वरूप, भक्तिके सागर, परम पुनीत प्रेमके भण्डार, दयाके निधान, विद्याके खजाने, आनन्दकी राशि, सदाचारके आधार, सर्वभूतोंके सुहृद्, विश्वके सहज हितकारी, अधिक क्या वे समस्त सद्‌गुणोंकी खान हैं। नारदका चरित्र अपार है, उसका पूरा संकलन और प्रकाशन तो असम्भव है, उनके जीवनकी कुछ इनी-गिनी घटनाओं और उनके थोड़े-से उपदेशोंका यह संग्रह प्रकाशित करनेमें गीताप्रेसके संचालक अपना बड़ा सौभाग्य समझते हैं। देवर्षि नारद सारे विश्व-प्राणियोंके—देवता, मनुष्य, राक्षस सभीके समान आदरणीय और पूजनीय क्यों हैं, इस सम्बन्धमें महाभारतमें एक बड़ा सुन्दर प्रसङ्ग है। जिसमें देवर्षिके पुनीत गुणों और उनके विश्ववन्द्य होनेके कारणोंका संक्षेपमें उल्लेख है; मनुष्य किस प्रकारके गुणोंसे सम्पन्न होनेपर जगत्पूज्य होता है, इस बातका पता उक्त प्रसङ्गसे भलीभाँति लग जाता है, पाठकोंके लाभार्थ उक्त प्रसङ्ग यहाँ दिया जाता है—

एक समय राजा उग्रसेनने भगवान् श्रीकृष्णसे पूछा कि 'हे वासुदेव! नारदजीके गुण-गानसे मनुष्यको दिव्य-लोककी प्राप्ति होती है, इससे इतना तो मैं समझता हूँ कि नारद सर्व सद्‌गुणोंसे सम्पन्न हैं, परन्तु हे केशव! आप बतलाइये कि नारदमें वे गुण कौन-कौन-से हैं?' इसके उत्तरमें भगवान् बोले कि 'हे राजन्! नारदके जिस उत्तम गुणोंको मैं जानता हूँ, उन्हें संक्षेपमें कहता हूँ, आप ध्यान देकर सुनिये।

नारदको अपने चरित्रका कभी अभिमान नहीं हुआ कि जो उसके देहको सन्ताप देता। उसका शास्त्रज्ञान और चरित्र सदा ही अस्खलित है, इसीसे वह सर्वत्र पूजित होता है। नारदमें प्रेमहीनता, क्रोध, चपलता और भय—ये दोष कभी देखनेमें नहीं आते, वह कर्त्तव्यमें तत्पर और शूरवीर है,

इसीसे जगत्में सर्वत्र पूजा जाता है। नारदकी वाणीमें कामके या क्रोधके कारण कभी विपरीत भाव नहीं आता, इसलिये वह परम सेवाके योग्य है और इसीलिये वह सर्वत्र पूजा जाता है। वह अध्यात्मशास्त्रके तत्त्वको जाननेवाला, क्षमाशील, शक्तिमान्, जितेन्द्रिय, सरलहृदय और सत्यवादी है, इससे उसकी सर्वत्र पूजा होती है। वह नारद तेज, यश, बुद्धि, ज्ञान, विनय, जन्म और तपमें सबसे श्रेष्ठ है, इसीलिये सर्वत्र पूजित होता है। वह सुशील, आनन्दवेषी, सात्त्विक अन्नभोजी, सबका आदर करनेवाला और भीतर-बाहरसे पवित्र है। सुन्दर (सत्य, मधुर, हितकर) वाणी बोलता है और किसीके साथ ईर्ष्या नहीं करता, इसलिये वह सर्वत्र पूजा जाता है। वह सबका कल्याण करता है, उसमें पापका लेश भी नहीं है, वह दूसरेका अनिष्ट देखकर कभी प्रसन्न नहीं होता, इसीलिये सर्वत्र पूजित होता है। वह वेद और इतिहासको सुनकर विषयोंको जीतना चाहता है, वह स्वाभाविक ही वैराग्यवान् और सहनशील है, वह किसीका अपमान नहीं करता, इसलिये वह सर्वत्र पूजित होता है। वह सर्वत्र समदृष्टि है, उसके कोई प्रिय या अप्रिय नहीं है, वह सबके मनके अनुकूल बोलनेवाला है, इसीसे सब जगह उसकी पूजा होती है। वह बहुश्रुत है, बड़ी-बड़ी विचित्र कथाएँ जानता है, महान् पण्डित है, लालसा और शठतासे रहित है; उसमें दीनता, क्रोध और लोभ नहीं है, इसीसे वह सर्वत्र पूजा जाता है। उसने विषय, धन, कामके लिये कभी किसीसे विरोध नहीं किया, उसके दोष समूल नष्ट हो चुके हैं, इसीलिये वह सर्वत्र पूजा जाता है। मुझमें उसकी भक्ति अत्यन्त दृढ़ है, उसका अन्तःकरण निर्विकार है, वह वेदका ज्ञाता, दयालु तथा मोह और दोषसे रहित है, इसीसे सर्वत्र पूजित होता है, वह किसी विषयमें आसक्ति नहीं रखनेवाला होनेपर भी व्यवहारमें आसक्ति रखनेवाला-सा प्रतीत होता है, उसमें सन्देह नहीं ठहरता और वह महान् वक्ता है, इसीसे जगत्में सर्वत्र पूजा जाता है। काम्य-विषयमें उसकी चित्तवृत्ति ठहरती ही नहीं, वह कभी अपनी प्रशंसा नहीं करता, किसीसे डाह नहीं करता, सबके साथ कोमल वाणीसे बातचीत करता है, इससे उसकी सर्वत्र पूजा होती है। वह लोगोंके भिन्न-भिन्न

प्रकारके चित्रोंको देखता है, पर किसीकी निन्दा नहीं करता, वह सृष्टि-सम्बन्धी विद्यामें निपुण है, इसलिये सर्वत्र पूजा जाता है। वह किसी भी शास्त्रकी निन्दा नहीं करता, पर अपनी नीतिपर स्थित रहकर चलता है, समयको कभी व्यर्थ नहीं खोता, अपने शरीर और अन्तःकरणको वशमें रखता है, इसलिये सर्वत्र पूजित होता है। उसने जीवनका उद्देश्य पूरा करनेमें बड़ा परिश्रम किया है, उसको प्रज्ञा प्राप्त है, वह भगवान्के ध्यानसे—समाधिसे कभी तृप्त नहीं होता, सदा सावधानीके साथ नित्य भगवच्चिन्तनमें लगा ही रहता है, इसीलिये वह सर्वत्र पूजा जाता है। वह निर्लज्ज नहीं है, दूसरे कोई उसे अपने कल्याणके काममें जोड़ लेते हैं तो वह सावधानीसे उस कामको पूरा करता है, दूसरोंकी गुप्त बातें प्रकट नहीं करता, इसीलिये सर्वत्र पूजा जाता है। वह अर्थकी प्राप्तिमें प्रसन्न नहीं होता, अर्थके नाशमें दुःखी नहीं होता, वह सदा स्थिरबुद्धि और विषयोंमें अनासक्त रहता है, इसीसे सर्वत्र उसकी पूजा होती है। इस प्रकार वह सर्व सद्‌गुणोंसे सम्पन्न, अपने कर्त्तव्यपालनमें निपुण, परम पवित्र, शरीर और मनसे स्वस्थ, कल्याणमय समयको पहचाननेवाला और सबको आत्मरूपसे प्रिय जाननेवाला है, ऐसे नारदपर भला किसका प्रेम नहीं होगा?'

देवर्षि नारदके इन पवित्र गुणोंका अनुकरण कर हम सबको अपना जीवन सफल बनाना चाहिये। आशा है नारदके इस जीवन-चरित्रसे देशवासी लाभ उठाकर लेखक और प्रकाशकके परिश्रमको सफल करेंगे।

विनीत

हनुमानप्रसाद पोद्दार

॥ श्रीहरिः ॥

प्राक्कथन

भागवतरत्न-ग्रन्थमालाकी यह पुस्तक दूसरा मनिया है। प्रथम मनिया है, भागवतरत्न प्रह्लाद। इस ग्रन्थरत्नमालाका मुख्य उद्देश्य है प्राचीनकालीन भागवतरत्नोंका विस्तृत परिचय भगवद्भक्तोंको देना। अतः प्राचीनकालीन भागवतोंके सम्बन्धमें प्राचीन संस्कृतग्रन्थोंहीसे सहायता लेकर इस पुस्तकमालाके ग्रन्थोंकी रचना की गयी है और की जायगी। अभी हमारा विचार निम्न भागवतोत्तमोंके सम्बन्धमें पुस्तक-प्रणयन करनेका है। इस प्रातःस्मरणीय भागवतोत्तमोंके नाम निम्न उद्धृत श्लोकमें दिये गये हैं—

प्रह्लादनारदपराशरपुण्डरीक-
व्यासाम्बरीषशुकशौनकभीष्मदाल्भ्यान्।
रुक्माङ्गदार्जुनवसिष्ठविभीषणादीन्
पुण्यानिमान्परमभागवतान्स्मरामि ॥

प्रत्येक आस्तिक हिन्दू प्रातःकाल चारपाईसे उठते ही इस श्लोकको पढ़ इन प्रसिद्ध परम भागवतोंका स्मरण अवश्य किया करता है; किन्तु ये परम भागवत क्यों कहलाते हैं, यह बात बहुत थोड़े जन जानते हैं। अतः इन भागवतोत्तमोंके परम पावन जीवनचरित्रोंको स्वतन्त्र ग्रन्थद्वारा लिपिबद्ध कर अपने-आपको, अपनी लेखनीको और इस ग्रन्थरत्नमालाके पाठकोंको पवित्र करनेका उद्योग किया गया है। इस उद्योगमें हमें कहाँतक सफलता प्राप्त हुई है—यह बतलाना हमारा कर्त्तव्य नहीं है। इसका निर्णय ग्रन्थरत्नमालाके विवेकी पाठकोंके हाथ है। किन्तु हमलोगोंको यह

स्वीकार करनेमें तिल-बराबर भी सङ्कोच नहीं है कि जिन भागवतोत्तमोंके जीवनचरित्र लिखे गये हैं या आगे लिखे जायँगे—उनके पवित्र जीवनचरित्र लिखनेकी योग्यता हममें नहीं है। क्योंकि भागवतोत्तमोंके जीवनचरित्र सफलतापूर्वक वे ही जन लिख सकते हैं, जो स्वयं भगवद्भक्त हों। हमलोग इस कलिकालके जीव होनेके कारण कामिनीकाञ्चनके क्रीतदास हैं। अतः हम भगवद्भक्त होनेका दावा कभी स्वप्नमें भी नहीं कर सकते। अतः इन ग्रन्थोंमें त्रुटियोंका रह जाना स्वाभाविक है। तब हाँ, इन ग्रन्थोंमें जो अच्छाई (खूबियाँ) हैं—वे उन भागवतोत्तमोंकी उत्कृष्टताके कारण हैं, जिनके जीवनचरित्र लिखे गये हैं और जहाँ कहीं त्रुटियाँ हैं, वे इन पंक्तियोंके लेखकोंकी अयोग्यताके कारण हैं—न कि उन भागवतोत्तमोंके चरित्रमें।

हम अपने इस कथनको समाप्त करनेके पूर्व यह बतला देना भी आवश्यक समझते हैं कि हमारी इस ग्रन्थमालाकी पुस्तकें किसी भी भाषाकी किसी पुस्तकका अनुवाद नहीं हैं, प्रत्युत मौलिक हैं। जो केवल अन्य भाषाओंकी पुस्तकोंके अनुवाद पढ़नेके आदी हैं—उन्हें अवश्य ही हताश होना पड़ेगा; किन्तु जो मौलिक ग्रन्थ पढ़ना पसन्द करते हैं, उन्हें इस ग्रन्थमालाकी पुस्तकें पढ़कर सन्तोष होगा।

भूल करना मानव-स्वभाव-सुलभ बात है, अतः इन पुस्तकोंमें भूलोंका रह जाना कोई अनहोनी बात नहीं है। साथ ही अपनी भूलें अपनेको जान भी नहीं पड़तीं। अतः यदि पाठक महानुभाव इन ग्रन्थोंकी भूलें हमें अवगत करानेका कष्ट उठावेंगे तो हम आगे यथासम्भव उन भूलोंको सुधार देनेका प्रयत्न करेंगे और उनको धन्यवाद देंगे।

दारागंज, प्रयाग } **ग्रन्थकार**

॥ श्रीहरि: ॥

विषय-सूची

श्रीहरिः शरणम्

देवर्षि नारद

वन्दे गोविन्दवात्सल्यं स्वतः स्वविमुखानपि।
निर्हेतुककृपालेशैर्मादृशानभिपाति यत्॥
अहो देवर्षिर्धन्योऽयं यत्कीर्तिं शार्ङ्गधन्वनः।
गायन्माद्यन्निदं तन्त्र्या रमयन्त्यातुरं जगत्॥

पहला अध्याय

आविर्भाव और पूर्वजन्म

'बन्दौं श्रीनारद मुनिनायक। करतल बीन रामगुनगायक॥'

—भक्तमाल

इस असार संसारके बीच, समस्त चराचरात्मक सृष्टिमें, जिस प्रकार प्रत्येक परमाणुमें सर्वव्यापी भगवान् विष्णुकी सत्ता विद्यमान है, ठीक उसी प्रकार पुराण, उपपुराण, इतिहासादि धार्मिक ग्रन्थ हमारे चरित्रनायक देवर्षि नारदके उपदेशों, सिद्धान्तों और उनके चरित्रोंसे ओतप्रोत हैं। आदिकाव्य श्रीमद्वाल्मीकिरामायणसे लेकर नारदपुराणतक सभी पुराणोंमें तथा उपपुराणोंमें देखनेसे यही प्रतीत होता है कि देवर्षि नारदकी महिमासे हमारा कोई भी धर्मग्रन्थ वञ्चित नहीं है। इन समस्त ग्रन्थोंमें देवर्षि नारदहीकी महिमा गायी गयी है, उन्हींकी कथाएँ लिखी गयी हैं और उन्हींके ज्ञानका विस्तार किया गया है। चाहे भागवत-धर्मके अनादि सिद्धान्तग्रन्थ नारदपाञ्चरात्रको देखिये और चाहे नारदगीताको अथवा चाहे उनके रचित भक्तिसूत्रोंको देखिये—देवर्षि नारदका ज्ञानोपदेश सर्वव्यापी देख पड़ता है। इतना ही नहीं, ज्योतिषशास्त्रके मूल सिद्धान्त सूर्यसिद्धान्त, सूर्यसंहिता एवं सूर्यहोराशास्त्रको विचारपूर्वक देखनेसे उन सबके अन्तस्तलमें भी देवर्षि नारदके ज्ञानामृतका स्रोत ही प्रवाहित होता हुआ देख पड़ता है। अतएव हमारे विचारमें यदि धार्मिक संस्कृत-साहित्य एवं प्राचीन ज्योतिषशास्त्रसे देवर्षि नारदके

ज्ञानोपदेश, उनके सिद्धान्त और उनकी कथाएँ निकाल दी जायँ तो वे संस्कृतके समस्त ग्रन्थ एवं ज्योतिषके प्राचीन शास्त्र सारहीन रह जाते हैं। अतः कहना पड़ेगा कि देवर्षि नारद संस्कृत-भाषाके धर्मग्रन्थों एवं ज्योतिषशास्त्रके प्राणस्वरूप हैं, सर्वस्व हैं और उन सबमें आदिसे अन्ततक उनके ज्ञान-भण्डारकी महिमा ओतप्रोत दिखलायी पड़ती है।

गोस्वामि नाभादासजीने लिखा है—

'अप्रतिहतगति देवर्षि नारदभगवान् तो परमात्माके मन हैं, भगवत्‌के अवतार हैं और जगत्‌के परम उपकारक प्रसिद्ध हैं। सेवा, पूजा, कीर्तन, प्रसाद, भक्तिप्रचार इत्यादि सब ही निष्ठाओंमें वे प्रधान हैं। पुराणमात्रमें आपकी शुभकथाएँ भरी हैं। सर्व लोकोंमें आपका पर्यटन केवल परोपकारके निमित्त है—यही आपका व्रत-सा है।'

इसमें सन्देह नहीं कि, देवर्षि नारद, जो नाभादासजीके शब्दोंमें 'भगवत्‌के मानस अवतार हैं,' नवधा भक्तिके आचार्य हैं और परोपकारहीके लिये वे समस्त लोकोंमें पर्यटन किया करते हैं। यही नहीं—पुराणमात्रमें तथा धार्मिक साहित्य एवं ज्योतिषशास्त्र भी आपकी शुभ कथाओं, आपके अपार ज्ञान तथा आपके अकाट्य सिद्धान्तोंसे परिपूर्ण हैं। अतएव यदि हम नारदजीको सर्वगुणाधार भगवान् विष्णुका मानस अवतार कहें और उनको ज्ञानभाण्डारका सर्वेसर्वा मानें तो भी अनुचित न होगा।

भगवान् विष्णुके इन मानस अवतार देवर्षि नारदका आविर्भाव कब और कैसे हुआ? क्या उनके पूर्वजन्मका भी कहीं कोई वृत्तान्त है? इन प्रश्नोंके उत्तरोंके विषयमें, हम आगे विचार करेंगे। इस समय हम यह बतला देना आवश्यक समझते हैं कि अनादि एवं सर्वव्यापी भगवान् विष्णुके मानस अवतार देवर्षि नारद भी अनादि हैं और समस्त कालोंमें, किसी-न-किसी रूपमें इनका अस्तित्व बना ही रहता है। इसीसे इनका अस्तित्व इस समय भी माना जाता है तथा वस्तुतः है भी। श्रीमद्वाल्मीकिरामायण, पाञ्चरात्रशास्त्र, महाभारत, भक्तिसूत्र, समस्त पुराण तथा उपपुराण, संगीत एवं ज्योतिषशास्त्रोंमें विविध कथाओं, उपदेशों और सिद्धान्तोंका वर्णन नारदजीके ही द्वारा अथवा नारदजीके उद्देश्यहीसे किया गया है। उन समस्त प्रसङ्गोंमें आये हुए नारद नामक व्यक्ति हमारे इस ग्रन्थके चरित्रनायक

देवर्षि नारद ही हैं अथवा भिन्न-भिन्न प्रसङ्गोंमें वर्णित नारद नामक व्यक्ति भिन्न-भिन्न हैं? यह प्रश्न सर्वप्रथम विचारणीय है।

हरिवंशपुराण (अ० १। ३) में नारदजीकी उत्पत्तिकथा वर्णित है। उस कथाका सारांश यह है कि सृष्टिके आरम्भमें ब्रह्माजीके सात मानस पुत्रोंमें एक देवर्षि नारद थे, जो बड़े भगवद्भक्त थे। जिस समय आदि प्रजापति दक्षने मैथुनी सृष्टि रची और वीरणा नामक प्रजापतिकी असिक्नी नाम्नी कन्याके गर्भसे पाँच सहस्र पुत्र, जो हर्यश्व कहलाते हैं, उत्पन्न किये एवं उनको सृष्टि बढ़ानेकी आज्ञा दी, उस समय उन हर्यश्वोंको देवर्षि नारदने उपदेश देकर और गर्भवासके दु:खोंका वर्णन सुनाकर सृष्टिकी वृद्धि करनेसे रोका। नारदजीके उपदेशसे वे लोग योगाभ्यासपरायण हो गये और सृष्टिकी वृद्धि नहीं की, तब उनके पिताने सबलाश्व नामक एक सहस्र पुत्रोंको पुनः उत्पन्न किया और उनको भी सृष्टिकी वृद्धि करनेकी आज्ञा दी। जब सबलाश्व अपने पिताकी आज्ञाको शिरोधार्य कर सृष्टि बढ़ानेको रवाना हुए तब मार्गमें उनको भी नारदजीके दर्शन हुए और उनको भी नारदजीने वही ज्ञानोपदेश दिया जो हर्यश्वोंको वे दे चुके थे। नारदजीके उपदेशके प्रभावसे प्रभावान्वित सबलाश्व भी हर्यश्वोंकी तरह सृष्टि-कर्मसे विमुख हो योगाभ्यासी बन गये। जब यह बात दक्षप्रजापतिने सुनी, तब वे अत्यन्त क्रुद्ध हुए। दैवसंयोगवश उसी क्रोधावेशके समय देवर्षि नारद उनके सामने जा पहुँचे। नारदजीको सामने देख दक्षप्रजापतिका क्रोध अधिक भड़का और उन्होंने नारदको शाप दे दिया कि तुम्हारा यह शरीर नष्ट हो जाय। तुम जिस गर्भवासकी निन्दा कर हमारे पुत्रोंको हमारी आज्ञाके पालनसे विमुख करते हो, उसी गर्भवासके कष्टोंका तुम्हें स्वयं अनुभव हो।

लिखा है दक्षप्रजापतिके इस शापके प्रभावसे नारदका वह शरीर उसी समय नष्ट हो गया। इस घटनाको लेकर देवताओंमें बड़ी हलचल मची। ब्रह्मादि देवता, दक्षप्रजापतिके निकट गये और उनको बहुत समझाया-बुझाया। ब्रह्माजीने कहा—'हे प्रजापते! आप नारदको जीवित कीजिये। क्योंकि बिना नारदके सृष्टिका काम नहीं चल सकता।' इसपर दक्षप्रजापतिने कहा—'नारद इस शरीरसे तो जी नहीं सकते, क्योंकि हमारा शाप अन्यथा नहीं हो सकता, किन्तु हम आपकी आज्ञाको टाल भी नहीं सकते, अतः नारदके जी उठनेके लिये दूसरा उपाय करते हैं।' यह कहकर दक्षप्रजापतिने

अपनी एक कन्या ब्रह्माजीको दी और कहा कि इसीके गर्भसे नारदका जन्म होगा। ब्रह्माजीने प्रजापतिकी दी हुई वह कन्या कश्यपको दी, उसी कन्याके गर्भसे नारदजीका जन्म हुआ और आगे चलकर, ये ही नारद 'काश्यप नारद' के नामसे प्रसिद्ध हुए।

काश्यप नारदकी इस उत्पत्तिका वर्णन ब्रह्माजीने स्वयं नारदजीसे किया था। यह बात नारदपुराणमें लिखी हुई है।

नारदपुराणमें लिखा है कि ब्रह्माजीने नारदजीसे कहा था—कि तुम इस सारस्वतकल्पके पूर्व, पच्चीसवें कल्पमें, काश्यप नारदके नामसे उत्पन्न हुए थे। उस समय तुमने कैलास पर्वतपर जाकर भगवान् शङ्करसे, श्रीकृष्णका लीलारहस्य पूछा था और नीलकण्ठ भगवान् शिवने तुम्हें श्रीकृष्णलीलारहस्य सुनाया था। नारदपुराणकी इस कथाका समर्थन पद्मपुराणमें भी किया गया है। पद्मपुराणके मतानुसार नारदजीको भगवान् शङ्करने श्रीकृष्णलीलामृतपान कराया था और श्रीकृष्णमें भक्ति करनेका उपदेश भी दिया था। इन कथाओंको पढ़नेसे अवगत होता है कि किसी पूर्ववर्ती कल्पमें नारदजी कश्यपके औरस और दक्षकन्याके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। उस समय वे काश्यप नारदके नामसे प्रसिद्ध थे। उसी समय शिवजीने नारदजीको श्रीकृष्णभक्तिका उपदेश दिया था, किन्तु काश्यप नारद हमारे चरित्रनायक देवर्षि नारद नहीं, प्रत्युत वे देवर्षि नारदके पूर्वावताररूप दूसरे नारद थे।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके ब्रह्मखण्डमें भी नारदसम्बन्धी एक कथा है। उसका मर्म इस प्रकार है। ब्रह्माजीने अपने कण्ठसे नारदजीको उत्पन्न किया, तदनन्तर अन्य पुत्रोंकी तरह नारदजीको भी ब्रह्माजीने सृष्टि रचनेकी आज्ञा दी। तब नारदजीने अपने मनमें विचारा कि यदि मैं सृष्टिरचनाके कार्यको करता हूँ तो मेरे ईश्वराराधन-कार्यमें बाधा पड़ेगी। यह विचारकर सृष्टि-रचना-कार्यकी निन्दा करते हुए तथा उसमें अपनी अनिच्छा प्रकटकर नारदजीने ब्रह्माजीके सामने अपना यह विचार प्रकट कर दिया और सृष्टि-रचनाका कार्य न किया। पुत्रको अवज्ञाकारी देख ब्रह्माजी क्रुद्ध हुए और क्रोधावेशमें उन्होंने नारदजीको शाप दिया कि उनका वह शरीर नष्ट हो जाय और वे जिस कामदेवकी निन्दा करते थे और जिस सृष्टि-रचनाके कामसे वे दूर भागते हैं, उसीमें लिप्त होकर वे गन्धर्वयोनिमें जन्म लें। इस शापके प्रभावसे नारदका वह शरीर नष्ट हो गया

और गन्धमादन पर्वतपर वे उपवर्हण नामक अत्यन्त कामुक गन्धर्व हुए। उन्होंने अपनी जातिकी पचास गन्धर्व-कन्याओंके साथ विवाह किया। इन पचासोंमें जो प्रधान थी, उसका नाम था मालावती। कहा जाता है कि एक दिन ब्रह्माजीकी सभामें उपवर्हणके अभ्यास-व्यवहारसे ब्रह्माजीने उनको शाप दिया और कहा—'तुम्हारे कर्म इस देवसंज्ञक गन्धर्वयोनिके योग्य नहीं हैं, तुम्हारी ये चेष्टाएँ मानव-योनिके अनुरूप हैं। अतएव तुम इस योनिको छोड़, नरयोनिमें जाकर उत्पन्न होओ।' ब्रह्माजीके इस दूसरे शापसे नारदको उपवर्हण गन्धर्वका भी शरीर त्यागना पड़ा। इस बार वे कान्यकुब्जदेशमें गोपराज द्रुमिलकी धर्मपत्नी कलावतीके गर्भसे उत्पन्न हुए। इस जन्ममें इनका नाम पड़ा नारद। कलावतीके इसके पूर्व कोई पुत्र नहीं हुआ था। उसे लोगोंने बाँझ समझ रखा था। किन्तु उसने अपने पतिकी आज्ञासे काश्यप नारद नामक ऋषिके वीर्यसे गर्भ धारण किया और इस गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका नाम गर्भाधान करनेवाले ऋषिके नामके सम्बन्धसे नारद रखा गया। बाल्यावस्थामें यह नारद अपने साथी बालकोंको जल पिलाते थे और अपने ज्ञानोपदेशसे, उन बालकोंका अज्ञानान्धकार भी नष्ट किया करते थे। अतएव इनका नाम नारद सार्थक समझा गया। यह नारद जातिस्मर और ज्ञानी थे। इनके नामकी व्युत्पत्ति निम्न श्लोकमें प्रदर्शित की गयी है।

ददाति नारं ज्ञानं च बालकेभ्यश्च बालकः।
जातिस्मरो महाज्ञानी तेनायं नारदाभिदः॥

अर्थात् नार शब्दका अर्थ है जल और अज्ञान। नारदजी बाल-अवस्थामें अन्य बालकोंको जल पिलाते थे और अपने ज्ञानोपदेशद्वारा उनका अज्ञानतम नष्ट करते थे। अतएव ये जातिस्मर और महाज्ञानी, महापुरुष नारद कहलाये। गोपपुत्र नारदको ब्राह्मणोंद्वारा विष्णुभक्तिकी शिक्षा प्राप्त हुई थी और भागवत-धर्मका उपदेश मिला था। बालक नारदने विष्णुमन्त्रका अनुष्ठान किया और उस मन्त्रके प्रभावसे उनको भगवान्के दर्शन हुए, किन्तु यह दर्शन क्षणिक थे। बालक नारदने एक बार कुछ ही समयके लिये भगवान्के दर्शन पाकर, फिर दर्शन पानेके लिये भगवान्का बार-बार ध्यान किया किन्तु फिर नारदको भगवान्के दर्शन

न मिले। तब तो बालक नारद बहुत विकल हुए और बड़ा पश्चात्ताप करने लगे। उनकी इस विकलताको दूर करनेके लिये यह आकाशवाणी हुई 'इस शरीरसे तुम्हें अब हमारा दर्शन न होगा। इस शरीरके छूटनेपर तुम्हें केवल हमारा दर्शन ही न होगा, प्रत्युत तुम हमें अविच्छिन्नरूपसे प्राप्त करोगे'। आकाशवाणीको सुन, बालक नारदको धीरज बँधा और उस शरीरके त्यागनेके बाद उनको भगवान्‌का सान्निध्य प्राप्त हुआ।

इस कथाके प्रधान पात्र गोपराजपुत्र नारद भी हमारे चरित्रनायक देवर्षि नारद नहीं हैं, प्रत्युत यह किसी अन्यतम कल्पके नारद हैं और सम्भवतः हमारे चरित्रनायक देवर्षि नारदके किसी पूर्वजन्मके प्रतिरूप। ऊपर वर्णित कथाओंमें आये हुए नारद ब्रह्मपुत्र देवर्षि नारदसे भिन्न हैं। बहुत खोजनेपर भी न तो उपवर्हण-शरीरधारी नारदका और न गोपराजपुत्र नारदहीका विस्तृत वृत्तान्त उपलब्ध होता है। हाँ, गोपराजकी धर्मपत्नीके गर्भसे उत्पन्न नारदका सम्बन्ध काश्यप नारदसे अवश्य पाया जाता है। इसका वर्णन नारद और पद्मपुराणमें मिलता है।

श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्ध (अ० १—३) में भी नारदजीकी उत्पत्तिकथाका वर्णन दिया हुआ है। उसका सारांश यह है। अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त वर्णन करते हुए नारदजी कहते हैं—पूर्वजन्ममें मैं दासीपुत्र था। मैं बालकालहीमें वेदवेत्ता ब्राह्मणोंकी सेवा किया करता था और उनके उपदेशामृतका पान किया करता था। संयोगवश एक दिन मैंने उन वेदवेत्ता ब्राह्मणोंका उच्छिष्ट भगवत्प्रसाद पा लिया। इसका फल यह हुआ कि पूर्वजन्मकृत मेरे समस्त पापोंका सञ्चित नष्ट हो गया और मेरा मन निर्मल हो गया। उसी दिनसे मेरे मनमें भगवद्भजनके प्रति अनुराग बढ़ने लगा। यद्यपि उस समय मेरी अवस्था केवल पाँच ही वर्षकी थी, तथापि मेरे विचारोंमें त्यागकी प्रधानता उत्पन्न हो गयी थी। मेरे इन त्यागमय विचारोंके कार्यरूपमें परिणत होनेमें केवल मातृस्नेह बाधक था। इस मातृस्नेहके बन्धनको मैं किसी प्रकार भी न तोड़ सका। किन्तु भगवान् अपने भक्तदासोंकी रक्षा करते हैं। उनकी भलाई करनेमें वे सदा यत्नवान् रहते हैं। अतएव उन्हीं दयामय भगवान्‌ने मेरा मनोरथ भी पूर्ण किया। एक दिन मेरी माता लकड़ी बीनने वनमें गयी। वहाँ उसे एक विषैले सर्पने डस लिया और वह वहीं मर गयी। मुझे

मातृवियोगका शोक अवश्य हुआ किन्तु साथ ही यह प्रसन्नता भी हुई कि मेरे त्यागमार्गकी बड़ी रुकावट दूर हो गयी। मैं अब निर्द्वन्द्व हो गया। अब मैं तपोवनमें जा तप करनेके विचारसे उत्तर दिशाकी ओर चल पड़ा।

चलते-चलते जब मैं बहुत थक गया तब एक वटकी छायामें एक सरोवरके किनारे बैठ गया। उस समय यद्यपि मेरा शरीर श्रान्त था और भूख-प्यास भी बारी-बारीसे मुझे सता रही थीं किन्तु इन सबके ऊपर शासन था भगवद्भक्तिका। मेरे मनमें भगवान्‌के दर्शन करनेकी लौ लगी हुई थी। उसके सामने भूख-प्यास आदि मुझे तुच्छ जान पड़ती थीं। मैंने कुछ देर विश्रामकर सरोवरके जलमें स्नान किया और तत्पश्चात् जल-पान किया। तदुपरान्त वेदवेत्ता ब्राह्मणोंद्वारा प्राप्त धर्मोपदेशोंका स्मरण कर मैं भगवान्‌का ध्यान करने लगा। उस समय दयामय भगवान्‌ने मेरे ऊपर फिर कृपा की और मुझे मेरे हृदयमें क्षणिक दर्शन दिये। वे दर्शन देकर क्षणस्थायी चपलाकी तरह पलक मारते अन्तर्धान हो गये। उनके अन्तर्धान होते ही मैं मणि गँवाये हुए सर्पकी तरह विकल हो गया। मैं उनके पुनः पानेके लिये बारम्बार उनका ध्यान करने लगा। मेरी विकलता देखकर दयामय श्रीहरिने आकाशवाणीद्वारा मुझसे कहा—'इस शरीरसे अब तुझे हमारा दर्शन न होगा। जिन लोगोंके कामादि मल भस्म नहीं होते, उन्हें हमारा दर्शन दुर्लभ है। हे अनघ! हे वत्स! इस दास-योनिमें हमने तुझे दर्शन दिया है। वह इसलिये कि तेरे मनमें उन देवता ब्राह्मणोंके उपदेशके प्रभावसे हमारा दर्शन पानेकी जो उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हो गयी थी, उसकी हम वृद्धि करना चाहते थे, क्योंकि जो लोग अपने मनमें हमारे दर्शनकी प्रबल कामना रखते हैं, उनके कामादि मल अपने-आप नष्ट हो जाते हैं और तभी उनका कल्याण होता है। हे वत्स! अल्पकालीन साधु-सत्सङ्ग, अल्पकालीन साधुसेवा तथा उनके अनुग्रहके प्रभावसे तुझे हमारे क्षणिक दर्शन हुए हैं। हमारे दर्शन पाकर अब तू हमसे कभी विमुख नहीं हो सकता।'

इस आकाशवाणीको सुन मैंने भगवद्दर्शन करनेका आग्रह त्याग दिया और साधुसेवा एवं भगवद्भजनद्वारा मैं अपना शेष जीवन शान्तिके साथ बिताने लगा। यथासमय शरीरवासनाका समय उपस्थित हुआ और मेरा

वह दासयोनिका पांचभौतिक शरीर नष्ट हो गया और भगवान्‌के अनुग्रहसे मुझे शुद्ध सत्त्वमय भगवत्पार्षद-शरीर प्राप्त हुआ। गत कल्पतक मैं उसी पार्षद-शरीरसे भगवान्‌का कैङ्कर्य करता रहा। किन्तु जब प्रलयकाल उपस्थित हुआ और भगवान् विष्णुने निज अपर रुद्ररूपसे त्रिलोकीका संहार किया, तब मैं उनके अन्तःकरणमें प्रविष्ट हो गया। जब भगवान् जागे और उन्होंने पुनः सृष्टि रचनेकी इच्छा की, तब उनके ब्रह्मशरीरसे मरीचि आदि सप्त-ऋषियोंकी उत्पत्ति हुई। उसी समय उनके प्राणेन्द्रियसे मेरी भी उत्पत्ति हुई। जहाँ अन्यान्य ऋषियों और तपस्वियोंकी गति नहीं है, वहाँ तथा त्रिलोकीमें—बाहर-भीतर—सर्वत्र मेरी अप्रतिहत गति है। भगवान्‌की मेरे ऊपर विशेष कृपा है। इसीसे मैं अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर सर्वत्र पर्यटन किया करता हूँ। भगवान् विष्णुके बतलाये हुए १ निषाद, २ ऋषभ, ३ गान्धार, ४ षड्ज, ५ मध्यम, ६ धैवत और ७ पञ्चम नामसे 'सा रे ग म प धा नी' संगीत-शास्त्र-प्रसिद्ध जो सात स्वर हैं और जो साक्षात् ब्रह्मस्वरूप हैं, उनकी रागिनियोंको मैं अपनी इसी वीणामें बजाकर श्रीहरिका गुणानुवाद गाया करता हूँ। मैं सदैव श्रीहरिके ही चरित्र गाया करता हूँ और उन्हींके ध्यानमें मग्न रहता हूँ। जैसे ही मैं अपने मनमें भगवान्‌का स्मरण करता हूँ, वैसे ही वे बुलाये हुए किसी आत्मीय जनकी तरह आकर मुझे दर्शन देते हैं। मेरी समझमें आसुरी-प्रकृतिवाले प्राणियोंको, इस संसाररूपी अपार एवं अगाध भवसागरसे पार होनेके लिये श्रीहरि-चरित्र-गानरूपी नौका ही सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वसुलभ साधन है। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि मानवोंके सहज शत्रुओंसे ग्रसित प्राणियोंको हठयोगमें वर्णित यम-नियमद्वारा वैसी मनकी शान्ति नहीं मिलती, जैसी स्थायी मनःशान्ति भगवान् मुकुन्दके कैङ्कर्यसे प्राप्त होती है।

इस कथासे हमारे चरित्रनायक देवर्षि नारदकी उत्पत्तिका वृत्तान्त हमें अवगत होता है और इसीसे पूर्ववर्णित कल्पान्तरोंके अन्यान्य नारदोंका सम्बन्ध भी भलीभाँति हमारी समझमें आ जाता है।

पुराणान्तरमें नारद नामधारी एक ब्राह्मणका भी उपाख्यान पाया जाता है। (देखो शिवपुराण चतुर्थ खण्ड अध्याय ६) किन्तु इन नारदसे भी हमारे चरित्रनायक देवर्षि नारद भिन्न हैं। अतएव उन ब्राह्मण नारदका चरित्र यहाँ उद्धृत करना अनावश्यक है। जहाँतक पता चल सका है, हम कह सकते

हैं कि अन्यान्य पुराणोंमें भी ऊपर वर्णित कथाओंसे अधिकांश मिलती-जुलती नारदसम्बन्धी कथाएँ हैं। उनका यहाँ वर्णन करना न तो पाठकोंको रुचिकर होगा और न उनको यहाँ उद्धृत करनेसे हमारा कोई प्रयोजन ही सिद्ध होगा। अतएव अब उन सबका विस्तार न करके, हम अपने चरित्रनायक देवर्षि नारदके आविर्भाव और उनके पूर्वजन्मके वृत्तान्तका विवरण दे देना आवश्यक समझते हैं।

हमारे चरित्रनायक वही देवर्षि नारद हैं जिन्होंने श्रीमद्भागवतमें अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त वर्णन किया है। उनका आविर्भाव भगवान् महाविष्णुके ब्रह्म-शरीरस्थ प्राणेन्द्रियद्वारा प्रचलित कल्पके आरम्भमें हुआ था। इसके पूर्व वे भगवान्‌के पार्षद थे। पिछले तीसरे जन्ममें नारदजी जिस दासीके पुत्र थे, वह कान्यकुब्ज देशव्यापी गोपराज द्रुमिलकी धर्मपत्नी थी और उसका नाम था कलावती। उन दासीपुत्र नारदके पिता यद्यपि गोपराज द्रुमिल माने गये हैं, तथापि उनके औरससे उन नारदकी उत्पत्ति नहीं हुई थी। जिनके वीर्यसे उनकी उत्पत्ति हुई थी, उन ऋषिका नाम था काश्यप नारद। यह काश्यप नारद पूर्वजन्ममें ब्रह्मपुत्र नारद ऋषि थे। यह किसी प्राचीनतम कल्पमें हुए थे। दासीपुत्र नारद पूर्वजन्ममें उपवर्हण नामक गन्धर्व थे और उपवर्हण नामक गन्धर्व पूर्वजन्ममें ब्रह्मपुत्र नारद थे। इस प्रकार हमारे देवर्षि नारदके पूर्वजन्मोंका वृत्तान्त पाया जाता है। इससे ब्रह्मपुत्र नारद, उपवर्हण गन्धर्व, दासीपुत्र नारद, भगवत्पार्षद नारदका क्रमशः जन्म अथवा आविर्भाव प्रकट होता है। '**आत्मा वै जायते पुत्रः**' के सिद्धान्तानुसार काश्यप नारदको भी हम देवर्षि नारदका पूर्वजन्म मान लें तो इसमें किसीको कुछ भी आपत्ति नहीं हो सकती। इससे एक लाभ भी है। वह यह कि उनका सम्बन्ध हमारे चरित्रनायक देवर्षि नारदके पूर्वजोंसे जुड़ जाता है, न कि उनके पूर्वजन्मसे।

दूसरा अध्याय

नारद नामका शब्दार्थ—नारदका निवास-विचार—क्या नारदकी कलहकारिता लोकप्रवादमात्र है?

नारद शब्दको हम दो भागोंमें विभक्त कर सकते हैं? अर्थात् नार+द। 'नार' का अर्थ है जल, जनसमूह तथा अज्ञान। 'द' का अर्थ है देना तथा नाश करना। अमरकोषके **'नारदाद्याः सुरर्षयः'** पदकी व्याख्यामें श्रीरामाश्रमाचार्यने लिखा है **'नारं ददाति'** अर्थात् जल देता है, पितरोंको सदा तर्पणद्वारा जल देता है अतएव नारद नाम पड़ा है। अथवा **'नारं—जनसमूहं द्यति'** अर्थात् जनसमूहको जो कलहद्वारा नाश करता है, उसका नाम नारद पड़ा। श्रीरामाश्रमाचार्यने आगे लिखा है कि **'नुरिदं नारमज्ञानं द्यति'** अर्थात् नरोंके अज्ञानको नार कहते हैं, उस अज्ञानका जो ज्ञानोपदेशद्वारा नाश करता है, उसका नाम नारद है। इसी प्रसङ्गमें उक्त व्याख्याकारने एक श्लोक भी उद्धृत किया है, जो किसी पुराणका है। वह श्लोक यह है—

'नार पानीयमित्युक्तं तत् पितृभ्यः सदा भवान्।
ददाति तेन ते नाम नारदेति भविष्यति॥'

अर्थात् आप पितरोंको तर्पणद्वारा सदा जल-दान करते हैं, और 'नार' जलको कहते हैं अतएव आपका नाम नारद होगा। 'नार' और 'द' के अर्थभेदोंसे यदि प्रस्तारभेद किया जाय तो 'नारद' शब्दके निम्नलिखित सात प्रकारके अर्थ हो सकते हैं; किन्तु इन अर्थोंसे भी अधिक विलक्षण अर्थ श्रीमद्वाल्मीकिरामायणकी टीकामें एक आचार्यने किये हैं।

१-नार—जल देनेवाला—पौसला चलानेवाला।

२-नार—जल, (तर्पणद्वारा) पितरोंको देनेवाला।

३-नार—जलधिको नष्ट करनेवाले अगस्त्यजी।

४-नार—अज्ञानको देनेवाला—भ्रममें डालकर लड़ानेवाला।

५-नार—अज्ञानको ज्ञानोपदेशद्वारा नाश करनेवाला।

६-नार—जनसमूहको झगड़ा कराके नष्ट करनेवाला।

७-नार—जनसमूहको बढ़ानेवाला।

इन अर्थोंमेंसे हमारे चरित्रनायक देवर्षि नारदके वर्तमान अवतारमें दूसरा, पाँचवाँ तथा छठवाँ अर्थ पूर्णतया घटित होता है और नारदमें पहला और पाँचवाँ अर्थ घटित होता है और कतिपय पौराणिक आख्यानोंके अनुसार देवर्षि नारदपर चौथा अर्थ भी घटाया जा सकता है, किन्तु शेष अर्थ, अर्थके प्रस्तार तथा व्याकरणकी महिमामात्र कहे जा सकते हैं।

नारद शब्दके अर्थ निज भावानुसार भी किये जा सकते हैं। जिस समय दक्षप्रजापतिको यह विदित हुआ कि उनके पुत्रोंको सृष्टि-रचनाके कार्यसे नारदजीने विरत कर दिया है, उस समय उन्होंने कहा था—

एवं त्वं निरनुक्रोशो बालानां मतिभिद्धरेः।
पार्षदमध्ये चरसि यशोहा निरपत्रपः॥
तन्तुकृन्तन यन्नस्त्वमभद्रमचरः पुनः।
तस्माल्लोकेषु ते मूढ न भवेद् भ्रमतः पदम्॥

(श्रीमद्भा० ६। ५। ३८। ४३)

अर्थात् दक्षप्रजापतिने नारदसे कहा—बालकोंकी बुद्धिको नष्ट करनेवाले तुम भगवत्पार्षदोंमें रहते हो। तुम उनके यशको नष्ट करनेवाले हो। तुमने हमारे पुत्रोंको स्थान-भ्रष्ट किया है। तुमने सन्तान-छेदनरूपी पाप-कर्म किया है, अतएव हे मूर्ख नारद! तुमको संसारमें भ्रमण करते-ही-करते जीवन व्यतीत करना पड़ेगा; तुम कहीं ठहर नहीं सकोगे। इस प्रसङ्गमें दक्षप्रजापतिके भावानुसार नारद शब्दका चौथा अर्थ भी किया जा सकता है; किन्तु वास्तवमें हमारे चरित्रनायक देवर्षि नारदमें तीन गुण स्पष्टरूपसे पाये जाते हैं। ये तीनों गुण पौराणिक उपाख्यानोंमें समर्थित होते हैं। अर्थात् नारदजी एक तो ज्ञानी हैं, क्योंकि उन्होंने ज्ञानोपदेशद्वारा असंख्य जीवोंके अज्ञान-बन्धनोंको काटा है। दूसरे वे भू-भार उतारनेके उद्देश्यसे भगवदिच्छानुसार जनसमूहको परस्पर लड़ानेमें भी कुशल हैं। तीसरे वे पितरोंको तर्पणद्वारा जल प्रदानकर सदा तृप्त किया करते हैं। इस प्रकार 'नारद' शब्दके कई अर्थ सार्थक होते हैं।

किन्तु इस प्रसङ्गमें एक बात विचारणीय है। वह यह कि जो नारद देवर्षियोंमें परम मान्य हैं, जो भागवत-धर्मके प्रधान प्रवर्तक हैं, जो अहिंसात्मक एवं शान्तिमय श्रीवैष्णव-धर्मके सिद्धान्तको चरितार्थ करके दिखलानेवाले हैं, क्या वे ही देवर्षि नारद कलहप्रिय, कलहकारी तथा हिंसामय युद्धके

उत्तेजक और इधर-की-उधर लगानेवाले चुगलखोर भी हो सकते हैं? देवर्षि नारदके कलहप्रिय एवं कलहकारी होने-न-होनेकी मीमांसा करते हुए श्रीउपेन्द्र मुखोपाध्याय लिखते हैं—

'नारद कलहकारी अथवा कलहके वाहन प्रसिद्ध हैं। किन्तु इसका कोई शास्त्रीय प्रमाण नहीं है। यह कोरा लोकप्रवाद है।'

इसी मतसे मिलता-जुलता हमारे कई एक विद्वान् मित्रोंका भी मत है। किन्तु हमारा अपना यह विश्वास है कि अधिकांश लोकोक्तियाँ शास्त्रीय आधारोंपर अवलम्बित हैं और लोकप्रवादमें भी प्रायः शास्त्रीय प्रमाणोंका आधार हुआ करती हैं। निज विश्वासानुसार अनुसन्धान करनेपर हमें पता चलता है कि, देवर्षि नारदजीके कलहप्रिय होनेका प्रवाद निराधार नहीं है, इसका आधार भी शास्त्र ही है।

युद्धस्थानका निर्णय करनेके लिये यदि कोई मनुष्य किसी ज्योतिषीसे प्रश्न करे तो ज्योतिषके प्रश्न-विभागके आधारपर, वह नारदका वास, कलहका स्थान बतलावेगा। विचार करनेकी रीति यह है—

शुक्लादितिथ्यो गतवासराद्या मन्दैर्युता रामविभाजिताः स्युः।
एकावशेषे सुरराजलोके स्यान्नारदो मृत्युगते द्वितीये॥
शेषैस्त्रिभिर्भोगिपुरेऽवतिष्ठेत तत्रैव युक्तं खलु यत्र संस्थः॥

अर्थात् प्रश्न करते समय शुक्ल-प्रतिपदासे वर्तमान तिथिकी पूर्व तिथिपर्यन्त भुक्त तिथियोंकी गणना कर, गतवारकी संख्या और ९ की संख्या जोड़ दे। योगफलमें तीनसे भाग दे। यदि एक बचे तो स्वर्गमें, दो बचे तो मर्त्यलोकमें और तीन बचे तो पाताललोकमें नारदका निवास समझना चाहिये। जहाँ नारदका निवास निकले वहींपर युद्धका स्थान बतलाना चाहिये। ज्योतिषके इस प्रश्नविचारसे पता चलता है कि नारदजी जहाँ रहते हैं वहीं युद्ध होता है अथवा जहाँ युद्ध होनेवाला होता है, वहाँ नारदजी जा पहुँचते हैं। ज्योतिषके इस श्लोकसे नारदजीका युद्धके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध सिद्ध होता है; किन्तु इसपर कुछ लोग कह सकते हैं कि ज्योतिषमें तो युद्धस्थानका विचार किया गया है, न कि नारद-निवासका। नारद-निवासकी बात लोकप्रवादके आधारपर ज्योतिषियोंने लिख दी है। इस प्रकार ज्योतिषके प्रमाणका खण्डन करके ऐसे लोग कह सकते हैं कि नारदका कलहसे सम्बन्ध जोड़ना लोकप्रवादमात्र है। इसमें शास्त्रीय प्रमाण कुछ भी नहीं है। यद्यपि यह ज्योतिषका

प्रमाण लोकप्रवादके आधारपर नहीं बनाया गया; प्रत्युत यह लोकोक्ति ही ज्योतिषके शास्त्रीय प्रमाणके आधारपर प्रचलित हुई है; तथापि जिन सज्जनोंका विश्वास ज्योतिषशास्त्रपर और विशेषकर फलित ज्योतिषशास्त्रपर नहीं है, उनके लिये इसी सम्बन्धके अन्य शास्त्रीय प्रमाण भी दिये जा सकते हैं।

जिस समय महाभारतीय युद्धकी तैयारियाँ हो रही थीं, जिस समय भाई-भाईमें परस्पर प्राणघातक युद्ध छिड़नेवाला था, उस समय दोनों पक्षोंके समान हितैषी बलरामजी उस अप्रिय प्रसङ्गसे अपनेको बचाये रखनेके अभिप्रायसे तीर्थाटन करनेको निकले थे और जब वह देशनाशी महायुद्ध समाप्त हो चुका था और दुर्योधन तथा भीमका गदायुद्ध आरम्भ होनेवाला ही था, तब मित्रावरुणके आश्रममें बलरामकी भेंट देवर्षि नारदसे हुई थी। इस प्रसङ्गका वर्णन महाभारतके गदापर्वमें इस प्रकार किया गया है—

उपविष्टः कथाः शुभ्राः शुश्राव यदुपुङ्गवः।
तथा तु तिष्ठतां तेषां नारदो भगवानृषिः॥
आजगामाथ तं देशं यत्र रामो व्यवस्थितः।
जटामण्डलसंवीतः स्वर्णचीरो महातपाः॥
हेमदण्डधरो राजन् कमण्डलुधरस्तथा।
कच्छपीं सुखशब्दान्तां गृह्य वीणां मनोरमाम्॥
नृत्यगीते च कुशलो देवब्राह्मणपूजितः।
प्रकर्त्ता कलहानां च नित्यं च कलहप्रियः॥
तं देशमगमत् यत्र श्रीमान् रामो व्यवस्थितः।
प्रत्युत्थाय च तं सम्यक् पूजयित्वा यतव्रतम्॥
देवर्षिं पर्यपृच्छत्स यथा वृत्तं कुरून्प्रति।
ततोऽस्या कथयद्राजन्नारदः सर्वधर्मवित्॥

(५४। १७—२२)

अर्थात् मित्रावरुणके आश्रममें यदुपुङ्गव बलरामजीने सुन्दर कथाएँ सुनीं। उसी समय वहाँ भगवान् देवर्षि नारदजी जा पहुँचे। नारदजी सुनहले रंगके वस्त्र पहिने हुए थे, सिरपर जटाजूट था, गलेमें जनेऊ था। हाथमें सोनेका दण्ड और कमण्डलु था। वे कच्छपी नाम्नी मनोरम वीणाको सुमधुर ध्वनिसे बजा रहे थे। वे नृत्य और गान-कलाओंमें कुशल, देवर्षियोंमें पूज्य, सदा कलहप्रिय और कलहकारी थे। वे वहाँ जा उपस्थित हुए। देवर्षि नारदको देख, बलरामजी

उनका सम्मान करनेको उठ खड़े हुए और उन्होंने यथाविधि उनका पूजन किया। तत्पश्चात् बलरामने अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रतधारी नारदजीसे कौरवोंका हाल पूछा। तब समस्त धर्मवेत्ता नारदने उनके प्रश्नोंके उत्तर देते हुए कहा।

महाभारतके इस स्पष्ट एवं अभ्रान्त प्रमाणसे यह भलीभाँति सिद्ध हो जाता है कि नारदके कलहप्रिय होनेकी प्रसिद्धि कोरा लोकप्रवाद नहीं है प्रत्युत यह शास्त्रीय आधारपर अवलम्बित है। इसके अतिरिक्त महाभारतके सभापर्वके पाँचवें अध्यायमें भी इसी आशयका प्रमाण मिलता है।

देखिये—

सांख्ययोगविभागज्ञो निर्निवित्सुः सुरासुरान्।
युद्धगान्धर्वसेवी च सर्वत्राप्रतिघस्तथा॥

अर्थात् सांख्ययोग-विभागज्ञ, झगड़ा उठाकर देवताओं और असुरोंको लड़ानेवाले, युद्ध तथा नृत्य-गीतादिके सेवी या चाहनेवाले नारद। इस श्लोककी टीकामें महाभारतके टीकाकार नीलकण्ठने स्पष्ट शब्दोंमें नारदजीको कलहप्रवर्तक सिद्ध किया है। इस प्रकारके अन्य अनेक प्रमाण पुराणोंमें भी पाये जाते हैं। उन सबका यहाँ उल्लेख करना आवश्यक नहीं जान पड़ता।

देवर्षि नारदके कलहकारी और कलहप्रिय सिद्ध हो जानेपर भी यह समझना नितान्त मूर्खता होगी कि वे चुगल हैं, हिंसाप्रेमी हैं और भूतद्रोही हैं। नहीं, नहीं, देवर्षि नारदके उपदेशों, सिद्धान्तों तथा उनसे सम्बन्ध रखनेवाले उपाख्यानों एवं कथाओंसे यह भलीभाँति सिद्ध हो जाता है कि वे संसारभरको भगवद्भक्तिका मार्ग बतलानेवाले हैं। वे प्राणिमात्रका कल्याण चाहते हैं और त्रितापसे प्रतप्त जीवोंको इस भवसागरसे पार उतारनेके लिये उन समस्त साधनोंको काममें लाते हैं, जिन्हें वे आवश्यक समझते हैं। देवर्षि नारदमें भगवान् विष्णुके वे सब गुण विद्यमान हैं, जिनके द्वारा संसार कल्याणमार्गका पथिक बनाया जा सकता है। देवर्षि नारद—

‘समत्वमाराधनमच्युतस्य’

—सिद्धान्तके एकान्त पक्षपाती ही नहीं, किन्तु एक दृढ़ स्तम्भ हैं। उनमें पक्षपात छू-तक नहीं गया। उनकी दृष्टिमें देव, दानव, मनुज आदि सभी योनियोंमें सर्वव्यापी अन्तर्यामी भगवान् विष्णु समानरूपसे विद्यमान हैं और इसीलिये वे सबके कल्याणके लिये जो उचित और आवश्यक

समझते हैं, वही स्वयं करते हैं और जिसे स्वयं करना अपनी शक्तिके बाहर समझते हैं, उसे दूसरोंके द्वारा करवाते हैं। उनके ऐसे कृत्योंका अन्तिम परिणाम परम कल्याणकारी भूत-दयामय होता है।

इसमें सन्देह नहीं कि देवर्षि नारद दक्षप्रजापतिके शापवश अथवा भगवान्‌की इच्छाके अनुसार सदैव पर्यटन किया करते हैं और एक स्थानपर अधिक कालतक ठहर नहीं सकते। मनका धर्म चञ्चलतामय माना गया है। अतः जब मन अधिक समयतक एक स्थानपर ठहर नहीं सकता, तब भगवान् विष्णुके मानस-अवतार देवर्षि नारद एक स्थानपर अधिक समयतक ठहर ही कैसे सकते हैं? उनका सदैव भ्रमण करते रहना आश्चर्यकी बात नहीं है। मनुष्योंकी गति-मति जहाँतक होती है, उनका मन भी वहींतक घूम सकता है, उसके बाहर उसके जानेकी शक्ति नहीं होती; किन्तु सर्वान्तर्यामी एवं सर्वव्यापी परमेश्वरके मनःस्वरूप हमारे चरित्रनायक देवर्षि नारद यदि सर्वत्र जा सकते हैं और तीनों लोकों तथा चौदहों भुवनोंमें अप्रतिहत गति होनेके कारण वे प्रसिद्ध हैं तो इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है? देवर्षि नारद सत्यनारायण—भगवान् विष्णुके मानस-अवतार हैं और भक्ताग्रगण्य हैं। अतएव वे सत्यसङ्कल्प और सत्यव्रत हैं, वे कुटिल नीतिके उपासक नहीं हैं। उनसे जो कोई जो कुछ पूछता है उसे वे सत्य-सत्य जो बात होती है वही बतला देते हैं। उनके मनमें यह भेदभाव नहीं है कि पूछनेवाला देवता है या दानव; मनुष्य है कि राक्षस। वे पूछनेवालेको यथार्थ उत्तर देते हैं; उसे उसके हितकी सलाह देते हैं और यही कारण है कि नारदजीको देव-दानव, मनुज-राक्षस सब आदरकी दृष्टिसे देखते हैं और उनका सम्मान करते हैं।

जब देवर्षि नारद सदैव सर्वत्र पर्यटन किया करते हैं और सर्व-हितैषी और सत्यव्रत वे हैं ही, तब एक स्थानकी बात दूसरे स्थानमें उनके द्वारा पहुँच जाना, चुगलखोरी नहीं है बल्कि यह तो उनकी सत्यवादिता है। अवश्य ही कभी-कभी और कहीं-कहीं देवर्षि नारदके मुखसे यथार्थ वृत्तको जानकर लोग परस्पर भिड़ गये हैं, एक-दूसरेके घोर शत्रु बन गये हैं और इसीसे बड़े-बड़े संग्राम भी हो गये हैं। किन्तु नारदजीका उद्देश्य परस्पर युद्ध कराना या परस्पर दो पक्षवालोंमें मनोमालिन्य उत्पन्न कराना

नहीं कहा जा सकता। प्रत्युत उनके मुखसे निकली ऐसी बातोंमें सत्यवादिता होती है। उनके विचारोंमें शुद्धता पायी जाती है और भूतदयामय सात्त्विक विचारोंका प्रतिबिम्ब स्पष्ट देख पड़ता है।

तब हाँ, जिस प्रकार—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

अपनी इस प्रतिज्ञाके अनुसार भगवान् विष्णु समय-समयपर स्वयं हिंसात्मक युद्धोंमें प्रवृत्त होते हैं अथवा लोगोंको प्रवृत्त कराते हैं, उसी प्रकार उनके मानस-अवतार नारदजीमें भी कभी-कभी विष्णुके इस गुणका प्राधान्य दृष्टिगोचर होता है। जब हिंसात्मक युद्धमें स्वयं प्रवृत्त अथवा अन्य जनोंको प्रवृत्त करानेके कारण भगवान् विष्णुको हिंसाप्रेमी, कलहकारी अथवा कलहप्रिय नहीं कहते, तब हम देवर्षि नारदको भी हिंसाप्रेमी, कलहकारी अथवा कलहप्रिय नहीं कह सकते। क्योंकि भगवान् विष्णुके मानस-अवतार और उनके अनन्य उपासक देवर्षि नारदजी यदि भगवान् विष्णुके अनुरूप कार्य करते हैं अथवा भू-भार उतारनेमें सहायक अथवा प्रवर्तक देखे या सुने जाते हैं तो हम उन्हें हिंसाप्रेमी, कलहप्रिय अथवा कलहकर्ता कभी नहीं कह सकते। क्योंकि कार्यमें कारणके अनुरूप गुणोंका होना अनिवार्य है। अतः हमारे चरित्रनायक देवर्षि नारद अहिंसाके पक्षपाती, सात्त्विक भावस्वरूप, दयासागर, निर्मलचित्त एवं पवित्रकर्मी हैं। उनपर किसी भी प्रकारका आक्षेप करना, आक्षेप करनेवालेका भ्रम अथवा प्रमाद ही कहा जायगा।

तीसरा अध्याय

देवर्षि नारदका वर्ण एवं आश्रम—उनका निवासस्थान (आश्रम)—सर्वत्र समस्त योनियोंद्वारा उनकी बहुमान्यता

यद्यपि कहा जा चुका है कि देवर्षि नारद ब्रह्माजीके घ्राणेन्द्रियसे अवतीर्ण होनेके कारण, दिव्य शरीरधारी देवयोनियोंसे भी परे भगवान् विष्णुके मानस अवतार हैं, अतएव उनका वर्ण, उनका आश्रम तथा उनके निवासस्थानके विषयमें विचार करना अनावश्यक है। समस्त योनियोंद्वारा उनकी बहुमान्यताका होना भी स्वाभाविक है, क्योंकि वर्ण एवं आश्रमादिका प्रश्न साधारणतः मानवजातिके लिये उठता है, तथापि लौकिक दृष्टिसे उनके पावन चरित्रको लिखते समय, हमें उनके वर्ण, आश्रम तथा उनके निवासस्थानके सम्बन्धमें भी विचार करना ही पड़ेगा। पुराणकर्ताने यत्र-तत्र नारदके लिये ब्रह्मर्षि, विप्र आदि विशेषणोंका प्रयोग किया है। उनकी कथाएँ, उनके व्यवहार, उनके प्रति किये गये व्यवहार और उनके आचार-विचारोंपर दृष्टि डालनेसे पता चलता है कि प्राचीन कालहीसे लोग देवर्षि नारदको सर्वोत्तम ब्राह्मणवर्णमें मानते चले आये हैं। अतएव हमारे चरित्रनायकका शरीर पाञ्चभौतिक प्रपञ्चसे परे माना जाय तो ऐसा मानना अनुचित न होगा। भगवान् श्रीकृष्णके यहाँ देवद्रुमके सहित तुलादान लेनेकी कथासे भी यही विश्वास होता है कि देवर्षि नारदका वर्ण—सर्वमान्य एवं सर्वपूजित ब्राह्मणवर्ण है। अतः हम भी देवर्षि नारदको विप्रवर्णमें मानते हैं।

जब वर्ण हुआ तब आश्रम भी अवश्य होना चाहिये। क्योंकि भगवान् मनुकी आज्ञा है कि—‘**अनाश्रमी न तिष्ठेत**’। इस वचनके अनुसार जब किसी भी वर्णके लिये आश्रमरहित रहना उचित नहीं, तब ब्राह्मण तो आश्रमविहीन रह ही कैसे सकता है। हमारी समझमें यदि देवर्षि नारद

ब्रह्मचर्याश्रमी माने जायँ तो अनुचित न होगा। क्योंकि वे अविवाहित हैं, अत: वे गृहस्थ तो हो नहीं सकते। फिर उनके चरित्रमें कहींपर यह भी नहीं आया कि वे कभी संन्यासी हुए हों। तब हाँ, उनके चरित्रसे यह पता अवश्य चलता है कि वे संन्यासाश्रमोचित आचारप्रिय अवश्य हैं। वे परम त्यागी हैं, एक स्थानपर चिरकालतक कभी नहीं रहते, वे दण्ड-कमण्डलुधारी हैं और संसारमें जीवन्मुक्त होकर विचरण किया करते हैं। यद्यपि वे ये सब कर्म संन्यासियों-जैसे करते हैं, तथापि वे न तो संन्यासी कभी थे और न अब ही हैं। इसका कारण है। सुनिये, नारदजी दण्डधारी अवश्य हैं, किन्तु उनका दण्ड स्वर्णका है और सुवर्ण तो क्या, कोई भी धातुका स्पर्श संन्यासीके लिये निषिद्ध बतलाया गया है। उन्होंने श्रीकृष्णके यहाँ पारिजातसहित तुलादान लिया था। संन्यासीके लिये तुलादान तो क्या—कोई भी दान लेना शास्त्रसम्मत कर्म नहीं है। फिर उन्होंने एक बार राजा अम्बरीषकी कन्याके साथ विवाह करनेकी चेष्टा की थी। संन्यासी विवाहकी बात मनमें लाते ही आश्रम-भ्रष्ट हो जाता है। अतएव देवर्षि नारद दण्ड-कमण्डलुधारी तथा परम त्यागी होनेपर भी संन्यासी नहीं माने जा सकते। वे तो अखण्ड बाल-ब्रह्मचारी कहे जा सकते हैं। श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धके छठवें अध्यायमें अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त वर्णन करते हुए स्वयं बतलाया है कि वे अखण्ड ब्रह्मचर्य धारण कर विचरण किया करते हैं। इस प्रमाणसे बढ़कर प्रमाण उनके ब्रह्मचारी होनेका और कौन-सा हो सकता है।

यदि कोई तार्किक शङ्का करे कि नारदजीने एक राजकन्याको देख और उसपर मोहित हो, उसके साथ विवाह करनेकी इच्छा की थी और अपनी इच्छाको चरितार्थ करनेके लिये स्वयंवरसभामें भी गये थे; अत: उनका ब्रह्मचर्याश्रम खण्डित हो गया—अथवा विष्णुभगवान्‌द्वारा निर्मित मायाको देख देवर्षि नारदने स्त्रीरूपसे सन्तानोत्पादन किया था, अतएव उनका अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रत कहाँ रहा, अथवा ब्रह्मचर्याश्रमोचित नियमोंके विरुद्ध वे वीणा बजाते हैं, नृत्य करते हैं और गाते फिरते हैं, अतएव वे ब्रह्मचारी नहीं कहे जा सकते। हम इन सब शङ्काओंका समाधान इस प्रकार करेंगे। निस्सन्देह नारदजीने विवाह करना चाहा था, उनका मन चञ्चल हो उठा था और स्त्रीरूपसे उन्होंने न जाने कितने पुत्र उत्पन्न किये थे; किन्तु इन सब कर्मोंसे

भी उनका ब्रह्मचर्यव्रत खण्डित नहीं हुआ। क्योंकि राजकन्याको देख उनका मोहित होना और विवाह करनेकी इच्छासे स्वयंवर-सभामें जाना तथा स्त्री-रूपसे पुत्रोत्पादन करना—केवल भगवन्माया थी। उनका निज इच्छासे स्वयं किया हुआ इनमेंसे कोई कार्य न था। ये सब कार्य बाजीगरी-जैसे खेल थे, मायाका प्रपञ्च था, उनमें वास्तविकता कुछ भी न थी। जब नारदजीने भगवान्‌की माया देखनी चाही तब भगवान्‌ने उनको अपनी दुरत्यया मायाका चमत्कार दिखा दिया। न तो इस शरीरसे देवर्षि नारदके पुत्र हुए और न उनका शरीर ब्रह्मचर्यसे च्युत हुआ। केवल मुह्यमान हो, विवाहकी इच्छासे स्वयंवरसभामें जाना—सो भी भगवत्-प्रेरणाके वश—ब्रह्मचर्यका बाधक नहीं कहा जा सकता। अब रही दूसरी शङ्का नाचने, गाने और वीणा बजानेकी। इस शङ्काके समाधानमें हम कहेंगे कि निश्चय ही ब्रह्मचारीके लिये बाजा बजाना, नाचना और गाना वर्जित बतलाया गया है। इन कर्मोंको करनेवाला व्यक्ति ब्रह्मचारी नहीं कहा जा सकता। किन्तु जिस संगीतके अभ्यासको शास्त्रकारोंने दोषयुक्त बतलाया है और जिससे ब्रह्मचर्यव्रतके खण्डित होनेकी सम्भावना रहती है, वह संगीत सांसारिक संगीत है न कि पारमार्थिक। देवर्षि नारद सांसारिक संगीतके उपासक नहीं हैं—वे तो भगवद्गुणानुवादोंके गाने-बजानेवाले और भगवान्‌की भक्तिमें विभोर हो नाचनेवाले हैं तथा अन्य जनोंको भगवान्‌की भक्तिसे सराबोर करनेवाले हैं। अतः उनके इस संगीतप्रेमसे उनका ब्रह्मचर्य खण्डित नहीं होता। उनका अखण्ड बालब्रह्मचर्य उनके इन कृत्योंसे भी अक्षुण्ण बना रहता है। जिस प्रकार सामवेद-गायक ब्रह्मचारी व्रतसे भ्रष्ट नहीं होते, उसी प्रकार हमारे चरित्रनायक देवर्षि नारदका भी संगीत, पवित्र संगीत है। संगीतप्रेमी नारद संगीतप्रेमके कारण ब्रह्मचर्यव्रतसे च्युत नहीं माने जा सकते। अतएव हमारे चरित्रनायक देवर्षि नारदके अखण्ड बालब्रह्मचारी होनेमें तिलमात्र भी सन्देह करनेकी गुंजाइश नहीं है। इसलिये उनका ब्रह्मचर्याश्रमी होना मानना ही समुचित होगा।

सर्वव्यापी एवं सर्वान्तर्यामी भगवान् विष्णुके मानस-अवतार देवर्षि नारदके निवासस्थान अथवा आश्रमका निश्चय करना भी धृष्टतामात्र है। क्योंकि जिस प्रकार मनुष्यके मनका स्थान निश्चित करना बालूसे तेल निकालनेके समान व्यर्थ श्रम करना है, ठीक उसी प्रकार सर्वव्यापी एवं

सर्वान्तर्यामी विष्णुके मानस अवतार नारदके आश्रमका निश्चय करना व्यर्थ श्रम करना है। तब हाँ, एक बात अवश्य है। भगवान् विष्णु सर्वव्यापी होनेपर भी जिस प्रकार अपनी इच्छा अथवा समयकी आवश्यकताके अनुसार कभी-कभी स्थानविशेषमें अवतार धारण कर प्रकट होते हैं और लीला दिखलाकर अन्तर्धान हो जाते हैं और कुछ कालके लिये किसी स्थान-विशेषमें दिखलायी पड़ा करते हैं, उसी प्रकार नारदजी भी यदि समय-विशेषतक किसी स्थान-विशेषपर प्रत्यक्ष हो लीला दिखलावें तो ऐसा होना असम्भव नहीं माना जा सकता, किन्तु साथ ही उस स्थान-विशेषको हम उनका सार्वकालिक अथवा स्थायी निवासस्थान नहीं कह सकते। अतः कहना पड़ेगा कि नारदजीका निवासस्थान अथवा आश्रम यह समूचा संसार है—तीनों लोक और चौदहों भुवन उनके घर हैं। वे जब जहाँ चाहते हैं, वहाँ अनायास पहुँच जाते हैं और सदैव भ्रमण करते हुए दक्षप्रजापतिके शापको चरितार्थ करते रहते हैं।

महाभारतके शान्तिपर्वके ३४६ वें अध्यायमें यह लिखा हुआ मिलता है कि नारदजी नर-नारायणके आश्रममें सहस्र वर्षपर्यन्त निवास करके एवं भगवद्‌गुणानुवाद सुनकर तथा अविनाशी श्रीमन्नारायणका दर्शन करके हिमालय-पर्वत-स्थित निज आश्रमको चले गये। इस प्रमाणसे यह पता चल जाता है कि देवर्षि नारदका आवास-स्थल अवश्य ही किसी स्थल-विशेषपर था और वह स्थल-विशेष था हिमालय-पर्वत। इससे दो बातोंका पता चलता है। एक तो यह कि देवर्षि नारदजीका आश्रम हिमालय-पर्वतपर था और दूसरी बात यह कि वे एक सहस्र वर्षोंतक नर-नारायणके आश्रममें रहे थे। इन दोनों बातोंसे यह सन्देह अपने-आप उठ खड़ा होता है कि जब दक्षप्रजापतिके शापवश वे चिरकालतक एक स्थानपर ठहर ही नहीं सकते थे, तब उनका आश्रम हिमालयपर्वतपर क्योंकर माना जाय? इस शङ्काका समाधान करनेके लिये कहना पड़ेगा कि वर्तमान सृष्टिके आरम्भकालमें देवर्षि नारदने ब्रह्माजीके प्राणेन्द्रियद्वारा अवतीर्ण होनेपर अपना आश्रम हिमालयपर्वतपर बनाया। वही आश्रम नारद-आश्रमके नामसे प्रसिद्ध है। उसी आश्रमसे जाकर उन्होंने नर-नारायणके आश्रममें एक सहस्र वर्षपर्यन्त तप किया, किन्तु जबसे उनको दक्षप्रजापतिने शाप दिया, तबसे वे स्थायीरूपसे किसी आश्रममें नहीं रहे

और तबसे तीनों लोकों और चौदहों भुवनोंमें निरन्तर भ्रमण करते रहते हैं। यह एक बुद्धिगम्य और प्रमाणसिद्ध समाधान है। इससे नारदजीके आश्रमकी बात और दक्षके शापानुसार उनका निरन्तर भ्रमण करना तथा उनका सर्वव्याप्त होना भी युक्तिसङ्गत हो जाता है।

कहा जा चुका है कि देवर्षि नारदका शरीर पाञ्चभौतिक प्रपञ्चसे परे होनेके कारण परम दिव्य है। वे भगवान् विष्णुके मानस-अवतार हैं। अतः भगवान् विष्णुकी जो इच्छा होती है, उनको चरितार्थ करनेमें देवर्षि नारद सहायक होते हैं। अतएव उनकी अवस्थाविशेषका वर्णन करना केवल कठिन ही नहीं, प्रत्युत असम्भव है। जिस प्रकार किसी मनुष्यके मनकी बाल, युवा एवं वृद्ध-अवस्था नहीं होती, उसी प्रकार अजर, अमर, अनादि, अनन्त, परमात्माके मनःस्वरूप देवर्षि नारदके शरीरमें बाल, युवा, वृद्ध आदि अवस्थाओंका विचार करना भी समुचित नहीं है। देवर्षि नारद जबसे अवतीर्ण हुए, तबसे न तो कभी वे बालक थे, न युवा थे और न वृद्ध ही। उनका मनुष्योंकी तरह कभी देहावसान भी नहीं होगा। महाप्रलयकाल उपस्थित होनेपर देवर्षि नारद अजर, अमर, अनादि परमात्माके शरीरमें प्रविष्ट हो जायँगे और अगले कल्पमें भगवदिच्छासे वे पुनः प्रकट होकर अपनी लीलाओं तथा अपने उपदेशोंसे भागवत-धर्मका प्रचार और विस्तार करेंगे।

यद्यपि देवर्षि नारदको जन्म-जन्मान्तरमें न मालूम कितनी बार शाप मिले, तथापि उनके आदर-सम्मानमें न तो तिलभर भी अन्तर पड़ा और न उनकी आज्ञाओंके पालनमें ही किसीने अवहेलना की। क्या सुर और क्या असुर, क्या मनुष्य और क्या राक्षस, देवर्षि नारदको सभी सर्वोत्तम मानते आते हैं। मनुष्योंकी तो बात ही क्या, क्योंकि वे तो देवर्षि नारदको साक्षात् ईश्वरस्वरूप मानते आते हैं और नित्य प्रातःकाल उठकर 'प्रह्लाद, नारद, पराशर, पुण्डरीक' कहकर उनका बड़े आदरके साथ स्मरण करते हैं; देवर्षि नारदकी आज्ञाको शिरोधार्य कर एक ओर तो देवराज इन्द्र महारानी कयाधूको छोड़ देते हैं और दूसरी ओर वैष्णवोंका घोर शत्रु और विष्णु-भक्तोंको खोज-खोजकर वध करवानेवाला दैत्यराज हिरण्यकशिपु नारदको आते देख, उनका सम्मान करनेके लिये राजसिंहासन छोड़कर खड़ा हो जाता है और बड़े विनम्र-भावसे उनको प्रणाम कर उनकी अभ्यर्थना करता

है। एक ओर यदि देवर्षि नारद भगवान् विष्णुके मानस-अवतार माने जाते हैं तो दूसरी ओर वे ही नारद शैवमतके परम ज्ञाता और शिवजीके परम प्रेमी दिखलायी पड़ते हैं। एक ओर वे आकाशवाणीसे भयभीत कंसको गणितके चक्करमें डाल, निर्दोष बालकोंकी हत्या करानेमें प्रवृत्त करते हैं तो दूसरी ओर वे ही नारद नन्दगृहमें जाकर नन्दको विविध उपदेश देते हैं। यही नहीं, यदि एक ओर वे '**समत्वमाराधनमच्युतस्य**' की दुन्दुभी बजाते और पाञ्चरात्रके द्वारा भागवत-धर्मका प्रचार कर त्रितापसे उत्तम प्राणियोंको भवसागरसे सहजमें पार हो जानेका उपाय बतलाये हैं तो दूसरी ओर त्यागमूर्ति देवर्षि नारद युधिष्ठिरको प्रश्नोंके मिस उत्कृष्ट राजनीतिका उपदेश देते हैं और उनके उस उपदेशको सुन कुरुराजके राजनीतिक ज्ञानका अभिमान चूर-चूर हो जाता है। इस प्रकार हमारे चरित्रनायक देवर्षि नारद ऋषि-समाजमें, देववृन्दमें, दैत्यदलमें, मानवसमूहमें और समस्त संसारमें सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं और सबसे अधिक सम्मान प्राप्त करते हैं तथा समस्त समुदायोंमें उनकी बहुमान्यताकी महिमा स्पष्ट दिखलायी पड़ती है।

चौथा अध्याय

देवर्षि नारदकी ज्ञानगरिमा, उनके उपदेश, उपाख्यान, सिद्धान्त और रचे हुए ग्रन्थ

देवर्षि नारदकी विद्वत्ता और बुद्धिमत्ताका वर्णन करना हमलोगोंके लिये केवल कठिन ही नहीं, असम्भव है। जब मङ्गलमय भगवान्‌के अन्यान्य समस्त अवतारोंका साङ्गोपाङ्ग वर्णन करना, उनके उत्तमोत्तम चरित्रोंका उल्लेख करना एवं उनके गुणोंका कीर्तन करना हम अल्प बुद्धिवालोंके लिये सर्वथा असम्भव है, तब भगवान्‌के मनःस्वरूप देवर्षि नारदके ज्ञान एवं चरित्रोंका पार पाना कैसे सम्भव हो सकता है? तो भी पौराणिक कथाओं और उपाख्यानोंके आधारपर एवं उनके सिद्धान्तयुक्त उपदेशों, उनके भक्ति-सूत्रों, उनकी संहिता आदि छोटे-बड़े ग्रन्थोंका अवलोकन करनेसे उनकी ज्ञानगरिमाका भलीभाँति परिचय मिलता है और उस परिचयसे देवर्षि नारदकी सर्वज्ञता सर्वतोभावसे सिद्ध होती है। भक्ति-शास्त्र अथवा भागवतधर्मके विषयमें तो अधिक लिखनेकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती, क्योंकि इस धर्म या शास्त्रके सबसे बड़े आचार्य एवं प्रवर्तक तो स्वयं देवर्षि नारद ही माने जाते हैं। भागवतधर्मके सम्बन्धमें नारद-विरचित पाञ्चरात्र-शास्त्र इस विषयका संसार-प्रसिद्ध सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ माना गया है। नारद-रचित भक्ति-सूत्र भी अन्याय भक्ति-सूत्रोंकी अपेक्षा, कैसे भावपूर्ण एवं सिद्धान्तयुक्त हैं—इस बातको हम आगे चलकर, भक्ति-सूत्रके प्रसङ्गमें ही दिखलावेंगे। यहाँ तो केवल इतना बतला देना ही पर्याप्त है कि भक्ति-मार्गके सच्चे पथप्रदर्शक नारद-रचित भक्तिसूत्र ही हैं! इसके अतिरिक्त नारदजीके भक्तिसम्बन्धी ज्ञानका अधिक उल्लेख करना आवश्यक नहीं; क्योंकि नारदजीके पौराणिक उपदेश—यथा महारानी कयाधूके गर्भमें स्थित बालक प्रह्लादको दिये हुए उनके धर्मोपदेशोंसे लेकर कुरुराज महाराज युधिष्ठिरतकके उपदेश एवं उपाख्यान भक्तिशास्त्रके सिद्धान्तोंके कैसे प्रतिपादक हैं—यह बात सभी भक्तजन भलीभाँति जानते हैं। देवर्षि नारद भागवत-धर्मके आचार्य, भक्ति-शास्त्रके

प्रवर्तक एवं स्वयं परम भागवत हैं। हम यह नहीं कहेंगे कि देवर्षि नारद कोरे धार्मिक विद्वान् हैं, क्योंकि जैसे वे भक्ति-शास्त्रके उच्च कोटिके विद्वान् हैं वैसे ही वे राजनीतिके मर्मज्ञ, ज्योतिष-शास्त्रके सर्वस्व एवं समस्त वेद-वेदाङ्गोंके प्रकाण्ड विद्वान् हैं। संगीत-विद्याके वे परम प्रेमी हैं और संगीत-कलाके मर्मके ज्ञाता हैं।

आधुनिक ज्योतिष-सिद्धान्तोंमें सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वमान्य सिद्धान्त सूर्यसिद्धान्त माना गया है। अधिकांश प्राचीन आचार्योंने सूर्यसिद्धान्तहीको सर्वश्रेष्ठ, शुद्ध एवं सूक्ष्म गणनायुक्त ज्योतिष-ग्रन्थ माना है। यह सूर्यसिद्धान्त वास्तवमें नारदद्वारा आविष्कृत ज्योतिष-सिद्धान्तोंके आधारपर ही रचा गया मालूम होता है। नारदपुराणके पूर्वार्द्धमें ज्योतिष-गणितका जो वर्णन दिया हुआ है, वह ज्योतिषके सिद्धान्तोंका प्रतिपादक है और सूर्यसिद्धान्तके गणितका वही आधार है। सूर्यसिद्धान्तमें एक-दो नहीं, सैकड़ों श्लोक नारदपुराणसे अक्षरशः उद्धृत कर दिये गये हैं। इसलिये यदि हम ज्योतिष-शास्त्रके सर्वश्रेष्ठ आचार्य देवर्षि नारदको कहें तो अनुचित न होगा। फलित ज्योतिषके देवर्षि नारद प्रधान पण्डित माने जाते हैं और उनके होरा-ग्रन्थके विचित्र फलादेश तथा उनकी संहिताके अपूर्व विचार बड़े-बड़े नामी ज्योतिषियोंको भी मोहित कर देते हैं। सनत्कुमार-संहिताको देखनेसे पता चलता है कि जिस समय शिवजीसे मिलनेके लिये ब्रह्मादि देवगण गये हुए थे और उनके कैलासके आवासस्थानके द्वारपर कोई दरबान न देखकर वे चिन्तित थे कि अपने आगमनकी सूचना शिवजीको किस प्रकार दें। उसी समय वहाँ देवर्षि नारद जा पहुँचे। उनको देख देवराज इन्द्रने उनसे पूछा—'भगवन्! आप विचारकर बतावें कि इस समय शिवजी क्या कर रहे हैं? हमलोग इस समय उनके निकट जा सकते हैं कि नहीं?' इन प्रश्नोंको सुन, देवर्षि नारदने उत्तर दिया—'ज्योतिष-शास्त्रके मतानुसार आपलोगोंकी यात्रा बड़े बुरे मुहूर्तमें आरम्भ हुई थी, इसका परिणाम आपलोगोंके लिये बहुत बुरा होनेवाला है। आपका प्रश्न रतिमुहूर्तमें हुआ है, इससे पता चलता है कि इस समय शिवजी रतिक्रीड़ा कर रहे हैं।' भावीके वशीभूत देवताओंको नारदजीके इस उत्तरपर विश्वास न हुआ और उन लोगोंने अग्निदेवको वृद्ध ब्राह्मणके रूपमें याचनार्थ अन्तःपुरमें भेजा। उस समय अन्तःपुरमें शिवजी सचमुच रतिक्रीड़ामें रत थे। अन्य पुरुषको सामने देख पार्वतीजी लज्जित

हो गयीं और देवताओंकी कपट-नीतिके लिये उनको शाप दे दिया। देवराज इन्द्रके प्रश्नोंका जो उत्तर नारदजीने ज्योतिष-शास्त्रके अनुसार दिया था, वह अक्षरशः सत्य था। इससे स्पष्ट विदित होता है कि देवर्षि नारद उस समय देवताओंमें भी ज्योतिषी प्रसिद्ध थे और उनका ज्योतिषज्ञान बहुत चढ़ा-बढ़ा था और उनका फलादेश प्रत्यक्ष चरितार्थ होता था। नारदजीके ज्योतिषज्ञानके सम्बन्धमें एक और कथा कही जाती है। जब हिमालय-दुहिता पार्वतीजीकी बाल्यावस्था थी, तब देवर्षि नारद उनके निकट गये। पार्वती-जननी मैनाने नारदजीसे अपनी कन्याके सम्बन्धमें भविष्य-फल पूछा। तब नारदजीने पार्वतीजीका भविष्य-फल सामुद्रिक शास्त्रानुसार कहा था, जो पीछे ज्यों-का-त्यों उतरा। इससे यह भी पता चलता है कि देवर्षि नारद ज्योतिष-शास्त्रके सर्वाङ्गपूर्ण ज्ञाता हैं, ज्योतिषाचार्य हैं और अपने ज्योतिषज्ञानके लिये सर्वत्र प्रसिद्ध हैं।

नारदजी संगीत-शास्त्रके कितने नामी विद्वान् और मर्मज्ञ हैं, इसका भी परिचय हमें पुराणोंमें वर्णित उनकी कथाओंसे चल जाता है। ब्रह्माण्डपुराणमें लिखा है कि एक बार नारदजी और तुम्बुरु नामक एक गन्धर्व भगवान् विष्णुकी सभामें उपस्थित थे। नारदजी संगीत-कलाके आदिहीसे प्रेमी थे और इसीलिये वे सदैव अपने साथ वीणा रखते थे। भगवान् विष्णुके आदेशसे तुम्बुरु-गन्धर्वने गाना आरम्भ किया। तुम्बुरु-गन्धर्व गान-विद्याके अद्वितीय पण्डित थे और नारदजी उस समय गान-विद्या सीख रहे थे। उस समय नारदजी तुम्बुरुकी योग्यता और अपने गान-विद्या-सम्बन्धी ज्ञानकी लघुता देख, बड़े ईर्ष्यान्वित हुए। भगवान् विष्णुने उनको समझाया कि आप अभी संगीत-शास्त्रके पूर्ण ज्ञाता नहीं हैं और गन्धर्व इस कलामें प्रवीण होते हैं, यदि आप चाहते हैं कि आप भी संगीतकलामें निपुण हो जायँ, तो आप उलूकेश्वर नामक गन्धर्वके निकट जाइये और उससे यह विद्या सीखिये। नारदजी उलूकेश्वर गन्धर्वके पास गये और दीर्घ कालतक उसके यहाँ रहकर उन्होंने संगीत-शास्त्रका अभ्यास किया। संगीत-शास्त्रमें पारङ्गत हो नारदजी, प्रथम भगवान् विष्णुके निकट न जाकर, सर्वप्रथम गाते हुए तुम्बुरु गन्धर्वके यहाँ गये। क्योंकि नारदजीको तुम्बुरुसे ईर्ष्या हो गयी थी। अतः वे उसे संगीतकलामें परास्त करनेको उसके यहाँ गये। तुम्बुरु-गन्धर्वके स्थानके निकट पहुँचनेके पूर्व नारदको बहुत-सी स्त्रियाँ और पुरुष अंग-भंग होनेके

कारण अत्यन्त दुःखी देख पड़े। नारदजीने उन दुखियारी स्त्रियों और दुखिया पुरुषोंसे उनके विकलाङ्ग होनेका कारण पूछा। उत्तरमें उन लोगोंने जो कुछ कहा, उसे सुन नारदजी चकित हो गये, उन लोगोंने कहा—'हम राग-रागिनियाँ हैं, यदि कोई नियमविरुद्ध गान करता है तो हमारे शरीरके अङ्ग-भङ्ग हो जाते हैं और हमें बड़ा क्लेश होता है। जब कोई गुणी और संगीत-कलाका प्रवीण जन नियमानुसार ठीक-ठीक गान करता है, तब हमारे विकलाङ्ग ठीक हो जाते हैं और हमारा सारा कष्ट दूर हो जाता है। इस समय नारदजीके नियमविरुद्ध गानके कारण हम लोग इस दुर्दशाको प्राप्त हुए हैं। हम यहाँ इसलिये आये हैं कि तुम्बुरु नियमानुसार गावे, जिससे हमारे अङ्ग ठीक हो जायँ और हमलोग पीड़ासे मुक्त हो, प्रसन्न होते हुए अपने स्थानोंको लौट जायँ।'

यह सुन नारदजी अपने मनमें बहुत लज्जित हुए और संगीतकलामें तुम्बुरुको परास्त करनेकी अभिलाषा त्याग, वे वहींसे उलटे पाँवों लौटकर भगवान् विष्णुके निकट गये। भगवान् विष्णुने नारदका बड़ा आदर-सत्कार किया और पूछा आप उदास क्यों हैं? इस प्रश्नके उत्तरमें नारदजीने अपने मनकी ग्लानिका कारण बतलाया। उसे सुन भगवान् विष्णुने उन्हें सान्त्वना प्रदान की और कहा 'आप ग्लानि न करें, अभी आप गान-विद्यामें प्रवीण नहीं हुए हैं। इसीसे आप गानेमें चूकते हैं। आप कुछ समयके लिये धीरज रखें, हम आपका मनोरथ पूर्ण करेंगे। हम शीघ्र ही धरा-धामपर अवतीर्ण हो व्रजमें श्रीकृष्णके रूपमें प्रकट होंगे। उस समय आप हमारे पास आवें, हम आपको संगीत-विद्याका पूर्ण परिज्ञान करा देंगे।' यह सुन नारदजी भगवान्के अवतारकी प्रतीक्षा करते रहे। नारदजीके मनमें संगीत-विद्या सीखनेकी लगन थी। अतः जब भगवान् श्रीकृष्णका मथुरामें अवतार हुआ और नारदजीको विदित हुआ कि अब वे द्वारकाधीश हो अपनी लीलासे संसारको चकित कर रहे हैं, तब वे उनके निकट गये और उनको उनकी पूर्वप्रतिज्ञाका स्मरण कराया। इसपर भगवान् श्रीकृष्णने नारदजीको अपनी धर्मपत्नियोंके निकट संगीत-विद्या सीखनेके लिये भेजा। वहाँ नारदजीने बहुत दिनोंतक संगीत-शास्त्रका अभ्यास किया। वे दो-वर्षतक जाम्बवती और सत्यभामाके निकट संगीत-शास्त्रका अभ्यास करते रहे, किन्तु तिसपर भी उनको इस शास्त्रका पूर्ण ज्ञान न हुआ। तब श्रीकृष्णजीकी आज्ञासे

नारदजीने रुक्मिणीका दो वर्षतक शिष्यत्व किया। तब कहीं उन्हें संगीत-विद्याका पूर्ण ज्ञान हुआ। चार वर्षोंतक द्वारकामें रह और संगीत-शास्त्रका अभ्यास कर नारदजी संगीत-शास्त्रके पूर्ण पारदर्शी हो सके। संगीत-शास्त्रमें पारदर्शिता प्राप्त कर चुकनेपर उनकी जिगीषावृत्ति लुप्त हो गयी। वे फिर तुम्बुरुको जीतनेकी कामनासे उसके निकट न गये; प्रत्युत वे भगवद्‌गुणानुवादमें ही निरन्तर मग्न रहने लगे। उनकी दिग्विजयकी कामना **'ज्वर इव मदो मे व्यवगतः'** के समान जाती रही। इस उपाख्यानसे यह पता भलीभाँति चल जाता है कि नारदजी संगीत-विद्याके कितने बड़े प्रेमी और कैसे पारदर्शी हैं।

नारदजीकी रचनाओंसे—उनके पुराण, संहिता, सूत्र, सिद्धान्त, पाञ्चरात्र आदि ग्रन्थसमूहके पर्यालोचनसे विदित होता है कि भक्ति-शास्त्रके कोरे ज्ञाता और संसारत्यागी वैरागी ही नहीं, किन्तु सब विषयोंके ज्ञानके अटूट भाण्डार हैं। छन्दःशास्त्र, आयुर्वेद, व्याकरण आदिका विस्तृत वर्णन तो उनकी रची पुस्तकोंमें पद-पदपर मिलता ही है; साथ ही यह भी पता चलता है कि वे अथर्ववेदीय तन्त्र-मन्त्रादिके भी प्रकाण्ड विद्वान् और प्रवर्तक हैं। श्रीमद्वाल्मीकिरामायण-जैसे आदिकाव्यके वे मूल आचार्य, श्रीमद्भागवत-जैसे महापुराणके मुख्य प्रवर्तक और न जाने कितने इहलौकिक तथा पारलौकिक शास्त्रोंके आचार्य, उपदेशक एवं जन्मदाता हैं!

सारांश यह कि देवर्षि नारदजीके नामसे चाहे कुछ ही ग्रन्थोंका परिचय मिलता हो; किन्तु उनके उपदेशों, उनके सिद्धान्तों तथा उनके रचित ग्रन्थोंके आधारपर बने हुए इतने अधिक ग्रन्थ हैं कि उनका ठीक-ठीक पता लगाना और वर्णन करना, इस समय मानवी शक्तिके परेकी बात है। अतएव इस सम्बन्धमें इतना कह देना ही पर्याप्त होगा कि देवर्षि नारदजी जैसे स्वयं सर्वव्यापी और सर्वान्तर्यामी हैं, वैसे ही उनके उपदेश और सिद्धान्त भी समस्त संस्कृतसाहित्यमें अन्तर्भूत सर्वव्यापी हैं और जहाँ देखिये वहीं देवर्षि नारदके ज्ञानका प्रकाश दिखलायी देता है।

पाँचवाँ अध्याय

आदिकवि वाल्मीकिके सोलह प्रश्न और देवर्षि नारदके उत्तर

अनादि, अकृत एवं अपौरुषेय वैदिक-साहित्यके पश्चात् सबसे प्रथम संस्कृत-साहित्य और वह संस्कृत-साहित्य, जिसमें भगवच्चरित्रवर्णनके साथ-ही-साथ प्राचीन इतिहासका भी वर्णन है, श्रीमद्वाल्मीकिरामायणके अतिरिक्त अन्य संस्कृत-ग्रन्थ कोई नहीं है। इसीलिये यह ग्रन्थ आदिकाव्य और इसके रचयिता महर्षि वाल्मीकि आदिकविकी उपाधिसे अलङ्कृत किये गये हैं। इस आदिकाव्यकी पर्यालोचना करनेसे सिद्ध होता है कि तपस्विप्रवर महर्षि वाल्मीकिजीने अपने आदिकाव्यकी रचना मूलरामायणके आधारपर की है। महर्षिप्रवरने देवर्षि नारदके प्रति कृतज्ञता प्रकट करनेके अभिप्रायसे ही मानो अपने आदिकाव्यके आरम्भमें प्रथम काण्डके प्रथम सर्गके रूपमें मूलरामायणको स्थान दिया है। मूलरामायणका विषय सौ श्लोकात्मक है। यह '**ॐ तपःस्वाध्यायनिरतम्**' से आरम्भ होता है और '**पठन् द्विजः**' आदि माहात्म्यसूचक श्लोकमें समाप्त होता है।

मूलरामायणका प्रथम श्लोक ग्रन्थ-सम्पादककी सङ्गति लगानेके लिये है। तत्पश्चात् चार श्लोकोंमें आदिकविने नारदजीसे सोलह प्रश्न किये हैं और पुनः एक श्लोक ग्रन्थ-सम्पादकने प्रश्नोत्तरके बीचमें प्रसङ्गकी सङ्गति लगानेके लिये दे दिया है। शेष चौरानबे श्लोकोंमें नारदजीने वाल्मीकिजीके प्रश्नोंके उत्तरस्वरूप संसारके हित-साधनार्थ, मूलरामायण नामक रामचरित्रका संक्षिप्त वर्णन किया है। इसीसे हमें मूलरामायणको देवर्षि नारद-कथित कहनेको बाध्य होना पड़ता है। यह मूलरामायण वास्तवमें आदिकाव्य रामायणका मूलभूत है। देवर्षि नारदजीने जिस रामचरित्रको मूलरामायणमें मूलरूपसे वर्णन किया है, उसीका ब्रह्माजीकी प्रेरणासे तथा वरदानके प्रभावसे

वाल्मीकिजीने विस्तारित वर्णन किया है। कथाका विस्तार चौबीस सहस्र श्लोकात्मक है। इस आदिकाव्यकी रचनाका इतिहास भी इसीके अन्तर्गत उपलब्ध होता है सो भी अत्यन्त स्पष्टरूपसे। इस आदिकाव्यके आरम्भमें मूलरामायणके प्रथम श्लोकसे अवगत होता है कि वाल्मीकिजीने नारदजीसे प्रश्न किया है। तदनन्तर चार श्लोकोंमें सोलह प्रश्न किये हैं, जिनके उत्तरमें, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, देवर्षिने रामचरित्र वर्णन किया है। वाल्मीकिके प्रश्न बड़े महत्त्वके हैं और उन महत्त्वपूर्ण प्रश्नोंके उत्तरमें नारदजीने जो रामचरित्र वर्णन किया है, वही इस चतुर्विंशति सहस्रात्मक आदिकाव्यका मूलाधार है। यह प्रश्नोत्तर इस प्रकार है—

को न्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः॥
चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः।
विद्वान् कः कः समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः॥
आत्मवान् को जितक्रोधो द्युतिमान् कोऽनसूयकः।
कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे॥
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे।
महर्षे त्वं समर्थोऽसि ज्ञातुमेवंविधं नरम्॥

अर्थात् वाल्मीकिजी पूछते हैं कि हे महर्षि नारद! आप बतलावें कि इस समय इस मर्त्यलोकमें प्रशस्त गुणयुक्त नर कौन है? दिव्यास्त्रादि बलसंयुक्त वीर्यवान् कौन है? श्रौत-स्मार्तके सकल धर्मोंको जाननेवाला कौन है? अनेक अपकारोंको भुलाकर एक उपकारको बहुत माननेवाला कृतज्ञ कौन है? सभी अवस्थाओंमें यथाश्रुत एवं यथादृष्ट सत्य वचन कहनेवाला सत्यवक्ता कौन है? आपत्तिकालमें भी धर्मव्रतको दृढ़ताके साथ धारण करनेवाला दृढ़व्रत कौन है? सच्चरित्र पुरुष इस समय कौन है? समस्त प्राणियोंके ऐहिक और आमुष्मिक हितसाधन करनेवाला भूतहितैषी कौन पुरुष है? आत्मा एवं अनात्मा सकल पदार्थोंके तत्त्वोंको जाननेवाला कौन पुरुष है? लौकिक व्यवहार तथा प्रजारंजनरूपी राजनीतिकी चतुराईमें समर्थ कौन है। कामसे भी अधिक सुन्दरता—नित्यसुखरूपी संसारको केवल प्रियस्वरूप दिखलानेवाला कौन पुरुष है? वशीकृत अन्तःकरणरूपी आत्मावान् कौन है? निन्दा, हिंसा आदिके उपजानेवाली चित्तवृत्तिसे रहित एवं क्रोधादि

मनोविकारोंको जीतनेवाला जितक्रोध कौन है? समस्त लोककी दर्शनाभिलाषाको बढ़ानेवाली द्युतियुक्त देहसे द्युतिमान् पुरुष कौन है? विद्या, ऐश्वर्य, तपस्या आदिके द्वारा की हुई परायी उन्नतिको न सहन करनेवाली असूयासे रहित– अनसूयक कौन पुरुष है? और ऐसा कौन पुरुष इस समय मर्त्यलोकमें है, जिसके क्रोधसे देव, असुर आदि सभी लोग सदा डरते रहते हैं? इन सभी गुणोंसे संयुक्त पुरुषको जाननेकी हम इच्छा करते हैं और आप ऐसे महापुरुषको बतलानेमें समर्थ हैं, अतएव बतलाइये कि ऐसा महापुरुष कौन है?

श्रीमद्वाल्मीकिजीने अपने प्रश्नोंमें अवश्य ही लोकहितेच्छासे भगवान् श्रीरामचन्द्रके चरित्र सुननेकी अभिलाषा प्रकट की है और उनकी इच्छाकी पूर्ति करते हुए देवर्षि नारदजीने मूलरामायणके रूपमें उत्तर देकर रामचरित्रको मर्त्यलोकमें प्रचारित किया है। नारदजीने उत्तरमें कहा—

बहवो दुर्लभाश्चैव ये त्वया कीर्तिता गुणाः।
मुने वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयतां नरः॥
इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान् धृतिमान् वशी॥
बुद्धिमान् नीतिमान् वाग्मी श्रीमाञ्छत्रुनिबर्हणः।
विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः॥
महोरस्को महेष्वासो गूढजत्रुररिन्दमः।
आजानुबाहुः सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः॥
समः समविभक्ताङ्गः स्निग्धवर्णः प्रतापवान्।
पीनवक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीवाञ्छुभलक्षणः॥
धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च प्रजानां च हिते रतः।
यशस्वी ज्ञानसम्पन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान्॥
प्रजापतिसमः श्रीमान् धाता रिपुनिषूदनः।
रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता॥
रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता।
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः॥
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः स्मृतिमान् प्रतिभानवान्।
सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः॥

सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः।
आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः॥
स च सर्वगुणोपेतः कौसल्यानन्दवर्द्धनः।
समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव॥
विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत् प्रियदर्शनः।
कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः॥
धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः।
तमेव गुणसम्पन्नं रामं सत्यपराक्रमम्॥
ज्येष्ठं ज्येष्ठगुणैर्युक्तं प्रियं दशरथः सुतम्।
प्रकृतीनां हितैर्युक्तं प्रकृतिप्रियकाम्यया॥
यौवराज्येन संयोक्तुमैच्छत्प्रीत्या महीपतिः।
..॥

अर्थात् हे मुनिवर! आपने जिन गुणोंसे संयुक्त महापुरुषको पूछा है, यद्यपि उनमें बहुत-से ऐसे गुण हैं जिनका होना मनुष्योंमें दुर्लभ है; तथापि हम उन गुणोंसे संयुक्त महापुरुषको बतलाते हैं, आप सुनें। आपके पूछे हुए गुणोंसे संयुक्त इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न श्रीराम नामक महापुरुष हैं, श्रीरामके गुणोंको वर्णन करते हुए नारदजी कहते हैं कि 'रामजी नियतात्मा हैं, महावीर्यमान् हैं, द्युतिमान् हैं, धृतिमान् हैं और वशी हैं। वे बुद्धिमान् हैं, नीतिमान् हैं, वाग्मी हैं, श्रीमान् हैं और शत्रुको पराजित करनेवाले हैं। वे विपुल स्कन्ध, महाबाहु, कम्बुग्रीव और महाहनुवाले हैं। विशाल जङ्घावाले, महाधनुर्धारी, गूढ़जत्रु (जिनकी अस्थियाँ दिखलायी नहीं देतीं) और शत्रुञ्जय हैं। वे आजानुबाहु हैं, सुन्दर सिर और सुन्दर ललाटवाले हैं तथा परम पराक्रमी हैं। उनके समस्त अङ्ग समुचित परिमाणके तथा अन्यूनाधिक अर्थात् समान हैं। वे श्यामल वर्ण हैं और परम प्रतापी हैं। वे उन्नत वक्षःस्थल, बड़े-बड़े नेत्रोंवाले तथा लक्ष्मीसदृश गृहलक्ष्मी सीतासहित अथवा शोभायुक्त हैं। वे इस प्रकारके अनेक सामुद्रिक शास्त्रोक्त शुभ लक्षणोंसे युक्त हैं। इतना ही नहीं, सामुद्रिक शास्त्रोक्त लक्षणोंके साथ-साथ उनमें अन्यान्य प्रत्यक्ष गुण भी हैं। वे धर्मके ज्ञाता और दृढ़प्रतिज्ञ हैं, प्रजापालनमें सदैव रत रहते हैं, यशस्वी हैं, ज्ञानसम्पन्न हैं, यम-नियमादिके पालनकर्ता, ब्राह्य एवं आभ्यन्तर पवित्रतायुक्त हैं। वे पिता, आचार्य, देवादिके प्रति सदैव विनीत रहते हैं

और समाधिमान् हैं। वे प्रजापतिके समान प्रजाजनोंकी रक्षा करनेवाले हैं और शत्रुओंका नाश करनेवाले हैं। वे समस्त जीवोंके रक्षक हैं, धर्मके रक्षक हैं, स्वधर्मके रक्षक हैं और स्वजनोंके परम रक्षक हैं। वे वेद-वेदाङ्गके तत्त्वके ज्ञाता हैं और धनुर्वेदमें विशेष रुचि रखते हैं। इतना ही नहीं, वे समस्त शास्त्रोंके तत्त्वोंको जाननेवाले, स्मरणशक्ति-सम्पन्न एवं प्रतिभावान् हैं। वे समस्त लोकोंमें प्यारे हैं, सरलस्वभाव हैं, अदीनात्मा हैं और उनकी बुद्धि अति विचक्षण है। वे साधु-सज्जनोंसे वैसे ही मिलते हैं, जैसे नदियाँ समुद्रसे मिलती हैं। वे सबके पूज्य हैं, फिर भी वे सबसे समताका भाव रखते हैं और सदैव शान्तिप्रिय रहते हैं। वे श्रीराम सर्वगुणसम्पन्न हैं। आपके पूछे हुए सभी गुणोंसे सम्पन्न कौसल्याके आनन्दको बढ़ानेवाले—कौसल्याके पुत्र श्रीराम हैं। वे श्रीराम गम्भीरतामें समुद्रके समान हैं, धैर्यमें हिमालयके समान हैं, बल-वीर्यमें विष्णुके समान हैं और चन्द्रमाके समान सुहावने हैं। वे क्रोधमें कालाग्नि—कृत्याके समान हैं। क्षमामें पृथिवीके समान हैं, त्यागमें धनद—कुबेरके समान हैं और सत्यमें दूसरे धर्मके अवतार ही हैं। ऐसे सर्वगुणसम्पन्न सत्यपराक्रमी श्रीरामको, जो श्रेष्ठ गुणसम्पन्न परम प्रिय जेठे पुत्र हैं और जो प्रकृतिके अनुकूल चलनेवाले हैं, उनको प्रकृतिकी हितकामनाके लिये महाराज दशरथने बड़े प्रेमसे युवराज बनानेकी इच्छा की।

श्रीरामके इतने गुणोंको कहकर नारदजीने श्रीरामचरित्र वर्णन किया है और संक्षेपतः सम्पूर्ण रामचरित्रका वर्णन किया है। नारदजीके उत्तरको सुनकर वाल्मीकिजी बड़े ही प्रसन्न हुए और अपने शिष्योंसहित उनकी यथोचित पूजा की। नारदजीने जो उत्तर दिया था, वही मूलरामायणके रूपमें माना गया है और नारदजीके चले जानेके पश्चात्, व्याधद्वारा क्रौञ्च-वध तथा **'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वम्'** इत्यादि श्लोकरूपसे वाणी निकलनेपर जब वाल्मीकिजी तमसातटपर चिन्तायुक्त बैठे हुए थे, तब ब्रह्माजीने आकर उनसे कहा है कि—

रामस्य चरितं कृत्स्नं कुरु त्वमृषिसत्तम।
धर्मात्मनो भगवतो लोके रामस्य धीमतः॥
वृत्तं कथय धीरस्य यथा ते नारदाच्छ्रुतम्।
रहस्यं च प्रकाशं च यद्वृत्तं तस्य धीमतः॥

(वा० रा० १। २। ३२-३३)

अर्थात् संसारमें उन सर्वव्यापी भगवान् श्रीरामके चरित्रको आप कहिये जो परम धर्मात्मा और परम बुद्धिमान् हैं। यदि आप इस कठिन कार्यको अपने लिये असम्भव समझें तो हम कहते हैं कि वह कठिन नहीं है। प्रकाश्य या गुप्त जो कुछ श्रीरामचन्द्रका चरित्र आपने नारदजीसे सुना है, उसीको विस्तारके साथ कहिये।

यह कहकर ब्रह्माजीके अन्तर्धान हो जानेपर वाल्मीकिजीने नारदजीके उपदेशानुसार, रामायणकी रचना की। इस कारणसे हम मूलरामायणके मूलसे उत्पन्न—श्रीमद्वाल्मीकिरामायणको देवर्षि नारदके ज्ञानभण्डारका रत्न कहें तो अनुचित न होगा।

छठवाँ अध्याय

श्रीमद्भागवत-संहिताकी परम्परा और उसमें देवर्षि नारदकी प्रधानता

'**विद्यावतां भागवते परीक्षा**' की लोकोक्ति प्रसिद्ध है और यह लोकोक्ति है भी ठीक। विद्वानोंकी परीक्षाके लिये श्रीमद्भागवत एक कठिन ग्रन्थ है। श्रीमद्भागवतके पठन-पाठनसे दार्शनिकोंका दर्शन-सम्बन्धी अभिमान, कवियोंका कविता-सम्बन्धी अभिमान, पौराणिकोंका कथानकत्वाभिमान और ज्योतिषियोंका भूगोल-खगोल-सम्बन्धी गर्व, वैसे ही दूर हो जाता है, जैसे पतित-पामर पापियोंके जन्म-जन्मान्तरके पाप उसके एक श्लोक अथवा किसी श्लोकके एक चरणहीको श्रवण करनेसे दूर हो जाते हैं। ऐसे महत्त्वपूर्ण महापुराणकी रचनाका श्रेय भगवान् कृष्णद्वैपायन वेदव्यासजीको है और इसके लिये हम सनातनधर्मी व्यासजीकी जितनी कृपा अपने ऊपर मानें उतनी थोड़ी ही है। व्यासजीने इस ग्रन्थरत्नकी रचना कर प्राणियोंका अमित उपकार किया है। इसके लिये सनातनधर्मी आचन्द्रार्क उनके कृतज्ञ बने रहेंगे। यह ग्रन्थ ही एक ऐसा है, जिसके लिये हमलोग अभिमान कर सकते हैं। इस ग्रन्थके लिये वेदव्यासजीकी जितनी प्रशंसा की जाय, वह सब थोड़ी होगी; किन्तु साथ ही हमें यह बात भी कहनी ही पड़ेगी कि श्रीमद्भागवतकी रचनाका सर्वाधिक श्रेय भागवतोत्तम देवर्षि नारदजीको प्राप्त है। उनके उपदेश और उनके द्वारा दिये गये मूल भागवतके आधारपर ही द्वादश स्कन्धयुक्त भागवतका यह कल्पवृक्षरूपी श्रीमद्भागवतमहापुराण निर्मित हुआ है।

जिस समय वेदव्यासजी पुराणोंकी रचना कर चुके थे, जिस समय वे लक्ष श्लोकात्मक महाभारतकी रचना कर चुके थे और जिस समय वे वेदोंके विभाग कर चुके थे, उस समय भी उनके मनमें वैसा उत्साह, उल्लास एवं शान्ति न थी, जैसी कि इतने विशाल कृत्य कर चुकनेपर किसी ग्रन्थकारके मनमें होनी चाहिये। प्रत्युत उनका मन उदासीन था।

एक दिन वे सरस्वती–नदीके तटपर शिष्योंके बीच बैठे हुए थे और मन–ही–मन किसी विशेष वस्तुकी न्यूनताका अनुभव कर रहे थे। वे मन–ही–मन कह रहे थे कि मैंने चारों वेदोंका मर्म, चारों वर्णोंके हितार्थ महाभारतमें रख दिया है। मैंने पुराणोंका सङ्कलन किया है। किन्तु इतनेपर भी मेरा आत्मा सन्तुष्ट क्यों नहीं है? मेरा चित्त प्रसन्न क्यों नहीं है? ऐसा क्यों है? इसका कारण क्या है? इसका कारण कहीं यह तो नहीं है कि मैं भागवतधर्मका वर्णन निज रचित ग्रन्थोंमें वैसा न कर सका होऊँ, जैसा कि मुझे करना उचित था। क्योंकि भागवतधर्म भागवतोंका सर्वस्व है, परमहंसोंको ग्राह्य है और वह साक्षात् परब्रह्म भगवान् विष्णुको भी परम प्रिय है, निश्चय ही यही बात है। इसीसे मुझे अपनेमें न्यूनता देख पड़ती है। व्यासजी इस प्रकार मन–ही–मन कह ही रहे थे कि इतनेमें वहाँ देवर्षि नारद जा पहुँचे। उन्हें देख, वेदव्यासजी उठ खड़े हुए और उनका यथोचित पूजन किया। जब नारदजी आसनपर बैठ गये तब उन्होंने मुसकराकर कहा—

पाराशर्य महाभाग भवतः कच्चिदात्मना।
परितुष्यति शारीर आत्मा मानस एव वा॥
जिज्ञासितं सुसम्पन्नमपि ते महदद्भुतम्।
कृतवान्भारतं यस्त्वं सर्वार्थपरिबृंहितम्॥
जिज्ञासितमधीतं च यत्तद्ब्रह्म सनातनम्।
अथापि शोचस्यात्मानमकृतार्थ इव प्रभो॥

(श्रीमद्भा० १। ५। २—४)

अर्थात् हे पराशरजीके पुत्र! आपका शरीराभिमानी आत्मा अपने शारीरिक पुरुषार्थसे सन्तुष्ट तो है? मानसका अभिमानी आत्मा मनसे सन्तुष्ट तो है? हे व्यास! आपकी जिज्ञासा पूर्ण हो गयी न? क्योंकि आप बड़े ही अद्भुत एवं सर्वार्थयुक्त महाभारतकी रचना कर चुके हैं और नित्य तथा सनातन परब्रह्मका आपने विचार किया है तथा उनको पाया है, किन्तु इसपर भी आप चिन्तित–से जान पड़ते हैं, इसका क्या कारण है?

नारदजीके प्रश्नको सुनकर व्यासजीने कहा—हे देवर्षि नारद! आपने जो कुछ कहा है वह सब ठीक है, फिर भी हमारा आत्मा सन्तुष्ट नहीं है। साथ ही हमें अपने असन्तोषका कारण भी जान नहीं पड़ता। आप स्वयंभू ब्रह्माके शरीरसे प्रकट हुए हैं और आपका ज्ञान अगाध है। अतः हम

आपसे अनुरोध करते हैं कि आप हमें हमारे असन्तोषका कारण बतलावें। आपने उन पुराणपुरुष परमात्माकी उपासना की है, जो अपने मनसे समस्त विश्वको उत्पन्न करते हैं। वे निर्गुण होकर भी सगुण ब्रह्मकी लीला करते हैं। इसके अतिरिक्त आप तीनों लोकोंमें घूमा-फिरा करते हैं। आप सूर्यकी तरह सर्वदर्शी हैं और योगबलसे प्राणवायुके समान समस्त प्राणियोंके अन्त:करणमें विचरण किया करते हैं। अतः आप आत्मसाक्षी हैं और बुद्धिवृत्तिके जाननेवाले हैं। आप परमात्मामें धर्म एवं योगसे चित्त लगाये हुए हैं और वेदानुकूल व्रत-स्वाध्याय आदिमें निष्णात हैं। आप बतलावें हममें किस धर्मकी न्यूनता है।

व्यासजीके वचनोंको सुनकर देवर्षि नारदजीने कहा—

भवताऽनुदितप्रायं यशो भगवतोऽमलम्।
येनैवासौ न तुष्येत मन्ये तद्दर्शनं खिलम्॥
यथा धर्मादयश्चार्था मुनिवर्यानुकीर्तिताः।
न तथा वासुदेवस्य महिमा ह्यनुवर्णितः॥

न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित्।
तद्वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा न यत्र हंसा निरमन्त्युशिक्क्षयाः॥
तद्वाग्विसर्गो जनताऽघविप्लवो यस्मिन् प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि।
नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि यच्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः॥
नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम्।
कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे न चार्पितं कर्म यदप्यकारणम्॥
अथो महाभाग भवानमोघदृक् शुचिश्रवाः सत्यरतो धृतव्रतः।
उरुक्रमस्याखिलबन्धमुक्तये समाधिनानुस्मर तद्विचेष्टितम्॥
ततोऽन्यथा किञ्चन यद्विवक्षतः पृथग्दृशस्तत्कृतरूपनामभिः।
न कुत्रचित् क्वापि च दुःस्थिता मतिर्लभेत वाताहतनौरिवास्पदम्॥
जुगुप्सितं धर्मकृतेऽनुशासतः स्वभावरक्तस्य महान्व्यतिक्रमः।
यद्वाक्यतो धर्म इतीतरः स्थितो न मन्यते तस्य निवारणं जनः॥
विचक्षणोऽस्यार्हति वेदितुं विभोरनन्तपारस्य निवृत्तितः सुखम्।
प्रवर्तमानस्य गुणैरनात्मनस्ततो भवान् दर्शय चेष्टितं विभो॥
त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणाम्बुजं हरेर्भजन्नपक्वोऽथ पतेत्ततो यदि।
यत्र क्व वाभद्रमभूदमुष्य किं को वार्थ आप्तोऽभजतां स्वधर्मतः॥

तस्यैव हेतोः प्रयतेत कोविदो न लभ्यते यद्भ्रमतामुपर्यधः।
तल्लभ्यते दुःखवदन्यतः सुखं कालेन सर्वत्र गभीररंहसा॥
न वै जनो जातु कथंचनाव्रजेन्मुकुन्दसेव्यन्यवदङ्ग संसृतिम्।
स्मरन्मुकुन्दाङ्घ्र्युपगूहनं पुनर्विहातुमिच्छेन्न रसग्रहो यतः॥
इदं हि विश्वं भगवानिवेतरो यतो जगत् स्थाननिरोधसम्भवाः।
तद्धि स्वयं वेद भवांस्तथापि वै प्रादेशमात्रं भवतः प्रदर्शितम्॥
त्वमात्मनाऽऽत्मानमवेह्यमोघदृक् परस्य पुंसः परमात्मनः कलाम्।
अजं प्रजातं जगतः शिवाय तन्महानुभावाभ्युदयोऽधिगण्यताम्॥
इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः।
अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम्॥

(श्रीमद्भा० १। ५। ८—२२)

अर्थात् आपने अपनी रचनाओंमें भगवान् वासुदेवके निर्मल यशका वर्णन नहीं किया है। इसीसे आपका चित्त प्रसन्न नहीं है और यही आपके हृदयमें न्यूनता प्रतीत होती है। हे मुनिश्रेष्ठ! आपने महाभारत आदि ग्रन्थोंमें धर्म, अर्थ, काम आदिको प्राधान्य देकर वर्णन किया है; किन्तु उसी प्रधानताके साथ आपने भगवान् वासुदेवकी महिमाका वर्णन नहीं किया है। जगत्को पवित्र करनेवाले भगवान्का यश जिन कविताओंमें नहीं है, उन चित्र-विचित्र पद एवं काव्यगुणयुक्त कविताओंको वे सतोगुणी ब्रह्मवादी, जिनके मनमें सदैव भगवान् निवास करते हैं और जो सारासारके जाननेवाले हैं, 'काकतीर्थ' नामसे पुकारते हैं तथा उस कविताको प्रेमसे कभी नहीं पढ़ते। जैसे यह प्रसिद्ध है कि मानसरोवरके कमलोंमें विचरण करनेवाले हंस जूठन फेंकनेवाली गड़हियोंमें, जहाँ काक क्रीड़ा करते हैं, कभी नहीं जाते, वैसे ही भगवान्के यश-विहीन काव्यमें सारासारके जाननेवाले भगवज्जन कभी मन नहीं लगाते। काव्यालङ्कारादिसे रहित पद-पदमें व्याकरणादिसे अशुद्ध, किन्तु भगवान्के गुणानुवादसे परिपूर्ण कविता संसारके जनसमूहके पापोंको नाश करती है। अतएव उस भगवद्गुणानुवादयुक्त कविताको साधु-ब्राह्मण—भगवज्जन सुनते हैं, सुनाते हैं और गाते हैं। जब कि भगवद्भक्तिरहित निष्काम कर्म भी ब्रह्मज्ञानके रूपमें होनेपर भी शोभायमान नहीं होते तब जो भगवद्भक्तिरहित तथा सकाम कर्म करते हैं और उन्हें ईश्वरार्पण नहीं करते, उनके कर्म कैसे शोभित तथा शुभप्रद हो सकते हैं? अतएव हे

मुनिवर! आप तो यथार्थ द्रष्टा, शुद्ध यशस्वी, सत्यवादी और सब प्रकारके व्रतोंके करनेवाले हैं। अब आप अपने चित्तको एकाग्र करके मनुष्योंको भव-बन्धनसे मुक्त करनेके लिये भगवान्‌की लीलाओंका वर्णन कीजिये। भगवान्‌के यशवर्णनके अतिरिक्त आपने जो कुछ भी पृथक् दृष्टिसे कहा है उसके द्वारा नाम, रूप आदिसे चञ्चल बुद्धि दुरवस्थाको प्राप्त होती है। जैसे वायुके वेगसे विताड़ित नौका जलमें एक स्थानपर स्थिर नहीं रह सकती, वैसे ही दुरवस्थाप्राप्त बुद्धि स्थिर नहीं रह सकती। धर्मके लिये उपदेश करनेवाले आपके नैष्कर्म्यके आदेश दुष्टस्वभावके लोगोंके लिये बड़े ही अन्यायकारी हो जायँगे। क्योंकि आपके आदेशके वास्तविक अर्थको न जानकर वे अपने स्वभावानुरूप अधर्मको भी धर्म मानने लगेंगे और आपके निषेधात्मक आदेशको वे विधानात्मक मानने लगेंगे। जो लोग चतुर एवं योग्य हैं वे निवृत्तिसे अनन्त एवं अपार भगवान्‌की शरणमें सुखका जैसा अनुभव करते हैं, वैसा अनात्मा लोग जो देहादिहीके अभिमानी हैं, सुखानुभव नहीं कर सकते। अतएव आप शुद्ध भगवद्-यशका वर्णन करें, जिससे ज्ञानी और अज्ञानी दोनों ही लाभ उठा सकें। नित्य-नैमित्तिक कर्मोंको त्यागकर भी भगवद्भक्ति करना लाभदायक है। यदि कोई यह शङ्का करे कि कर्म त्यागकर भक्ति करनेवाले पुरुषकी यदि भक्ति पूरी नहीं हुई, तो कर्म-त्यागके पापसे वह पतित हो नीच योनिमें दुःख पावेगा, सो इस बातका भय नहीं है। भक्तिके प्रभावसे उसका ऐसा होना असम्भव है। वह जहाँ जायगा वहीं आनन्दका अनुभव करेगा। किन्तु जो भगवान्‌के भक्त नहीं हैं और नित्य-नैमित्तिक कर्म करते हैं, वे क्या लाभ उठाते हैं अर्थात् कुछ भी नहीं। अतएव विवेकबुद्धिवाले लोगोंको चाहिये कि उस भगवद्भक्तिकी प्राप्तिके लिये यत्न करें, जो सुखप्रद भक्ति ऊपर ब्रह्मलोकतक और नीचे स्थावरपर्यन्त सर्वत्र भ्रमण करनेपर भी प्राप्त नहीं होती, किन्तु विषयका सुख तो पूर्वकर्मानुसार जैसे नरक आदि सभी स्थानोंमें बिना इच्छाके दुःख प्राप्त हो जाता है, वैसे ही कालचक्रके प्रभावसे बिना प्रयास ही प्राप्त होता है। अर्थात् प्रवृत्तिमार्गका विषयादि सुख सर्वत्र पूर्वकर्मानुसार प्राप्त होता है, किन्तु भगवद्भक्तिरूप निवृत्तिमार्गका परमानन्द पूर्व कर्मको मिटा देनेवाला होता है। इस कारण उसीकी प्राप्तिके लिये यत्न करना चाहिये। भगवान् मुकुन्दकी भक्ति करनेवाले

जन, उनके सेवक संसारमें पुनर्जन्म ग्रहण नहीं करते, जैसे कर्मनिष्ठ लोग नहीं आते हैं। भगवान्के चरणारविन्दको स्मरण करनेवाले उसको त्याग नहीं सकते, क्योंकि उसमें जो अपूर्व रसास्वाद है वह अन्यत्र कहीं नहीं है। अब आगे नारदजी कहते हैं कि भगवान्की जिस भक्तिका वर्णन किया गया वे भगवान् कौन हैं? कहाँ हैं? यदि आप यह पूछें तो इसका भी उत्तर हम देते हैं। यह सारा विश्व भगवान् ही हैं अर्थात् भगवान्से पृथक् संसारका प्रपञ्च नहीं है; किन्तु इस संसारसे, संसारके प्रपञ्चसे ईश्वर पृथक् है, इन सब बातोंको आप तो स्वयं भलीभाँति जानते हैं। हमने आपको अंगुली-निर्देशमात्र कर दिया है, विशेष कहनेकी आवश्यकता नहीं है। हे मुनिवर! आप तो अमोघदर्शी परमपुरुष परमात्माके कलावतार हैं। आपसे कोई बात छिपी हुई नहीं है। अब आप अपने ही मनसे विचार करें। जो परमात्मा जन्म ग्रहण नहीं करते—अजन्मा कहे जाते हैं; वे जगत्के कल्याणके लिये जन्म ग्रहण किया करते हैं। अतएव उन परम प्रतापी परमात्माके अवतारकी लीलाओंका वर्णन कीजिये। मनुष्योंके तपःश्रुत इत्यादि सभी पुरुषार्थोंका परमोत्तम फल यही है कि वे उत्तमश्लोक भगवान् वासुदेवके गुणानुवाद करें और उनकी लीलाओंका वर्णन करें। अतएव आप सब कुछ कर चुके हैं। अब आप शुद्ध भगवद्-यशका वर्णन करें। भागवतकथाकी रचना करें और अपने तपःश्रुत आदि पुरुषार्थको सफल करें।

भागवत-धर्मका महत्त्व, भगवद्-यशकी महिमा और उसके वर्णन करनेकी अनुमति देनेके पश्चात् नारदजीने अपने पूर्वजन्मके वृत्तान्तको कहकर मानो अपने कथनका उदाहरण दिखलाया है। नारदजीने अपने पूर्वजन्ममें साक्षात् विष्णुभगवान्से जो गुह्यतम ज्ञान प्राप्त किया था, उसका भी संक्षेपमें वर्णन किया है। नारदजीने कहा कि—

तस्यैवं मेऽनुरक्तस्य प्रश्रितस्य हतैनसः।
श्रद्दधानस्य बालस्य दान्तस्यानुचरस्य च॥
ज्ञानं गुह्यतमं यत्तत्साक्षाद्भगवतोदितम्।
अन्ववोचन्गमिष्यन्तः कृपया दीनवत्सलाः॥
येनैवाहं भगवतो वासुदेवस्य वेधसः।
मायानुभावमविदं येन गच्छन्ति तत्पदम्॥

एतत्संसूचितं ब्रह्मंस्तापत्रयचिकित्सितम्।
यदीश्वरे भगवति कर्म ब्रह्मणि भावितम्॥
आमयो यश्च भूतानां जायते येन सुव्रत।
तदेव ह्यामयं द्रव्यं न पुनाति चिकित्सितम्॥
एवं नृणां क्रियायोगाः सर्वे संसृतिहेतवः।
त एवात्मविनाशाय कल्पन्ते कल्पिताः परे॥
यदत्र क्रियते कर्म भगवत्परितोषणम्।
ज्ञानं यत्तदधीनं हि भक्तियोगसमन्वितम्॥
कुर्वाणा यत्र कर्माणि भगवच्छिक्षयासकृत्।
गृणन्ति गुणनामानि कृष्णस्यानुस्मरन्ति च॥
नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमहि।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः सङ्कर्षणाय च॥
इति मूर्त्यभिधानेन मन्त्रमूर्तिममूर्तिकम्।
यजते यज्ञपूरुषं स सम्यग्दर्शनः पुमान्॥
इमं स्वनिगमं ब्रह्मन्नवेत्य मदनुष्ठितम्।
अदान्मे ज्ञानमैश्वर्यं स्वस्मिन्भावं च केशवः॥
त्वमप्यदभ्रश्रुत विश्रुतं विभोः समाप्यते येन विदां बुभुत्सितम्।
आख्याहि दुःखैर्मुहुरर्दितात्मनां संक्लेशनिर्वाणमुशन्ति नान्यथा॥

(श्रीमद्भा० १। ५। २९—४०)

अर्थात् हे मुनिवर! आप मुझे (पूर्वजन्मके दासीपुत्ररूपी) अनुरागी, नम्र, श्रद्धालु, जितेन्द्रिय सेवक जान, मुझको साक्षात् भगवान् विष्णुने जो कृपा करके अपने गुह्यतम ज्ञानकी शिक्षा दी थी उसी ज्ञानके प्रभावसे मैंने वासुदेवभगवान्की मायाको जाना था और उसी ज्ञानके प्रभावसे भक्तजन भागवत-पदको प्राप्त होते हैं। बृहत्त्वादि गुणविशिष्ट चैतन्यपूर्णरूपी परब्रह्म परमात्मामें अपने समस्त शुभ कर्मोंका समर्पण कर देना ही अध्यात्मादि तापत्रयको मिटानेवाली अमोघ औषध है। हे सुव्रत! जो रोग जिस पदार्थके सेवनसे उत्पन्न होता है वह रोग उसी रोगोत्पादक पदार्थके सेवनसे कैसे मिट सकता है? अर्थात् नहीं मिट सकता। अतएव ऐसी चिकित्सा करना उचित नहीं। इसी प्रकार मनुष्योंके सब कर्मकाण्ड यदि वे अपने निमित्त सङ्कल्प करके किये जाते हैं तो वे सदैव जीवोंके आवागमनके कारण होते

हैं। उनको भोगनेके लिये बारम्बार उन्हें जन्म-मरणके दुःखादि भोगने पड़ते हैं और इस प्रकार आत्मविनाश होता है। यदि वे ही कर्मकाण्ड परमेश्वरको समर्पण कर दिये जाते हैं तो वे मोक्षदायक होते हैं। उस मोक्षप्राप्तिका क्रम इस प्रकार है। भगवदर्पण करनेसे कर्मके फलद्वारा महत् सेवा प्राप्त होती है। इससे उनकी कृपा होती है, कृपासे उनके भागवतधर्ममें श्रद्धा होती है। श्रद्धासे भगवत्कथा सुननेकी रुचि उत्पन्न होती है और भगवत्-कथा सुननेसे भगवान्में भक्ति होती है। इस भक्तिसे देहद्वयविवेकात्मक ज्ञान प्राप्त होता है। इस ज्ञानसे भगवान्में दृढ़ भक्ति होती है। दृढ़ भक्तिहीसे भगवत्-तत्त्वका ज्ञान होता है। उस तत्त्वज्ञानसे भगवान्की कृपासे सर्वज्ञत्व आदि भगवद्गुण प्राप्त होते हैं। भगवान्की आज्ञा है कि 'शुभ कर्म करो!' यह समझकर जो मनुष्य शुभ कर्म करते हैं और मुखसे उनका नामोच्चारण करते हैं तथा उनके यशको गाते हैं एवं उनका सदा स्मरण किया करते हैं, वे मोक्षपद पाते हैं। जो लोग प्रद्युम्न, वासुदेव, अनिरुद्ध और सङ्कर्षण—भगवान्की इन चार नामरूपी मन्त्रमूर्तिको नमस्कार करते हैं और उस मन्त्ररूपी मूर्तिसे उस अमूर्त परब्रह्मकी पूजा करते हैं और जो यज्ञपुरुष नारायणका यजन करते हैं, वे महात्मा दर्शनीय और परम पावन हो जाते हैं। हे ब्रह्मन्! मैंने तो इसी हृदयगत ज्ञानका अनुष्ठान किया है और इसी ज्ञानके प्रभावसे भगवान्ने मुझपर कृपाकर मुझे ज्ञानरूपी ऐश्वर्य और भागवतभाव प्रदान किया है। अतएव हे बहुश्रुत! आप भी उन्हीं मूर्तिमान् भगवान् विभुकी लीलाओंका वर्णन करें, जिससे समस्त ज्ञानियोंकी जिज्ञासा पूरी हो और संसारी जीवोंके नाना प्रकारके क्लेश शान्त हों। क्योंकि संसारसागरसे तरनेका अन्य उपाय नहीं है।

इतना कहकर देवर्षि नारद वीणा बजाकर, भगवद्गुण गाते हुए चल दिये। इधर व्यासजीने नारदजीके उपदेशानुसार उनके '**ज्ञानं परमगुह्यं मे**'— मूल भागवतके आधारपर भगवान् वासुदेवकी लीलामयी सात्वतसंहितानाम्नी श्रीमद्भागवत-संहिता निर्माण की और अपने विरक्त पुत्र शुकदेवको वह संहिता पढ़ायी। यह मूल भागवत ब्रह्माजीने तपद्वारा भगवान् विष्णुसे पायी थी और इसीको ब्रह्माजीने अपने विरक्त पुत्र देवर्षि नारदको सुनाकर उन्हें लोकहितार्थ ही इस संहिताका प्रचार करनेका आदेश दिया था।

इदं भागवतं नाम यन्मे भगवतोदितम्।
संग्रहोऽयं विभूतीनां त्वमेतद्विपुलीकुरु॥
यथा हरौ भगवति नृणां भक्तिर्भविष्यति।
शृण्वतः श्रद्धया नित्यं माययात्मा न मुह्यति॥

(श्रीमद्भा० २। ७। ५१—५३)

अर्थात् हे नारद! मैंने तुम्हें जो कथा सुनायी है, वह भागवत नामक ज्ञान है। यह ज्ञान मुझे साक्षात् भगवान्‌से प्राप्त हुआ था। इसमें विभूतियोंका संक्षिप्त संग्रह है। इस संक्षेपका तुम विस्तार करो। किन्तु विस्तार करो ऐसी रीतिसे जिससे इसे सुनकर मनुष्योंकी भगवान् वासुदेवमें भक्ति बढ़े। इसकी तुम चिन्ता मत करो कि भगवान्‌की लीलाओंका वर्णन करनेसे माया-मोह बढ़ेंगे। क्योंकि भगवान्‌की मायामयी लीलाओंका वर्णन करनेसे तथा उन्हें सुननेसे मनुष्योंका माया-मोह छूट जाता है।

इसी भागवतका उपदेश नारदजीने वेदव्यासजीको दिया और अवश्य ही ब्रह्माजीकी आज्ञाके अनुसार विस्तारके साथ उपदेश दिया था। इसीके आधारपर व्यासजीने श्रीमद्भागवतकी रचना की और इसीके प्रभावसे इस कलिकालमें भी भागवतधर्मका इतना सुकर प्रचार और विस्तार देख पड़ता है। अतएव हमें कहना पड़ता है कि भागवतमहापुराणकी रचनासे लोकोपकारका जितना श्रेय भगवान् वेदव्यासजीको है उतना ही, बल्कि उससे भी अधिक श्रेय भागवतज्ञानरूपी सात्वत-धर्मके प्रवर्तक देवर्षि नारदजीको प्राप्त है।

सातवाँ अध्याय

पाञ्चरात्र और देवर्षि नारद—पाञ्चरात्रकी सात्वतसंहिता—पाञ्चरात्रकी प्राचीन परम्परा और उसका संक्षिप्त विवरण

भागवतधर्मके उपासक सात्त्विकसमुदायमें पाञ्चरात्रागमका बड़ा आदर है। महाभारत, ब्रह्मसूत्र और श्रीभाष्यके पाञ्चरात्राधिकरण तथा पाञ्चरात्ररक्षा आदि अन्यान्य प्राचीन निबन्धोंमें पाञ्चरात्रशास्त्रके महत्त्वका भलीभाँति परिचय मिलता है।

पाञ्चरात्रशास्त्र अपनी अनेक विशेषताओंकी प्रधानताके कारण मन्त्रसिद्धान्त, आगमसिद्धान्त, तत्त्वसिद्धान्त और तन्त्रसिद्धान्तके भेदसे चार भागोंमें विभक्त है। इस प्रकार चार भागोंमें विभक्त पाञ्चरात्रशास्त्रकी पाद्म, पद्मोद्भव आदि नामोंसे प्रसिद्ध एक सौ आठ संहिताएँ हैं। इन अष्टोत्तरशत पाञ्चरात्रसंहिताओंमें भगवान्के मुखारविन्दसे प्रकाशित होनेके कारण रत्नत्रय नामसे प्रसिद्ध 'सात्वतसंहिता' 'पौष्करसंहिता' और 'जयसंहिता' की विशेष प्रधानता दी गयी है। इस रत्नत्रय संहिताओंके अन्तर्गत जो सात्वतसंहिता है, उसे भगवान् वासुदेवने भगवान् सङ्कर्षणको द्वापरके अन्त और कलियुगके आरम्भमें सुनाया था। परम्पराद्वारा प्राप्त उसी पाञ्चरात्रशास्त्रको देवर्षि नारदजीने अन्यान्य महर्षियोंको मलयाचल-पर्वतपर बैठकर सुनाया था। महाभारतमें इसी सात्वतसंहिताका उपदेश इस प्रकार पाया जाता है।

'ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्च कृतलक्षणैः।
अर्चनीयश्च सेव्यश्च कीर्तिनीयश्च सर्वदा॥

सात्वतं विधिमाश्रित्य गीतः सङ्कर्षणेन यः।
द्वापरस्य युगस्यान्ते ह्यादौ कलियुगस्य च॥'

अर्थात् भगवदायुध—शङ्खचक्रादियुक्त, शङ्खचक्राङ्कित, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रद्वारा भी भगवान् वासुदेव अर्चित, सेवित और कीर्तित किये जा सकते हैं। भगवान् वासुदेव वे ही हैं, जिनके पूजन, सेवन तथा कीर्तनका विधान सात्वतविधिसे सङ्कर्षणजीने द्वापरके अन्त और कलियुगके आरम्भमें कहा था।

यह सात्वतसंहिता नारदपाञ्चरात्रके नामसे प्रसिद्ध है। इसमें पच्चीस परिच्छेद हैं और ३४९२॥ श्लोक हैं। इसे पढ़नेपर पता चलता है कि पूर्वकालमें जिस पाञ्चरात्रसंहिताका उपदेश भगवान् वासुदेवने भगवान् सङ्कर्षणको दिया था और जिसे सङ्कर्षणने देवर्षि नारदको दिया था, उसीका उपदेश देवर्षि नारदने महर्षियोंको मलयाचल-पर्वतपर दिया। अतएव यह पाञ्चरात्रशास्त्र भगवत्प्रोक्त है और सात्वतसंहिताके नामसे प्रसिद्ध है। इस संहितामें परिच्छेदक्रमसे शास्त्रावतरण, उपासनाविधि, सुषुप्तिव्यूह-मन्त्रोद्धार, सूक्ष्मव्यूह देवताकी अन्तर्योग और बहिर्योगविधि, चतुरात्म्याराधनविधि, व्रतविधि, सांवत्सर व्रतविधि, विभव-देवताकी अन्तर्योग और बहिर्योगविधि, मण्डल-ध्यान-विधान, कुण्ड-लक्षण-वर्णन, पातालनिलय, भगवान्की विभवमूर्तिके ध्यानकी विधि, भगवान्के अस्त्रों और भूषणोंके, देवताओंके ध्यानकी विधि, पवित्र स्नान-विधान, दीक्षाङ्गभूत पापशान्ति, कल्पका वर्णन; वैभवीय नृसिंह-मन्त्रोद्धार तथा आराधनविधि, अधिवास-दीक्षाविधि, दीक्षाविधि, वर्णाध्वविज्ञानका विधान, आचार्याभिषेक-विधि, समयाचारका विधान, अधिकारिमुद्रा-भेदका वर्णन, विभव-देवताके पिण्ड मन्त्रोद्धारका वर्णन, प्रतिमाप्रासादका लक्षण और प्रतिष्ठादि विधिका विस्तृत वर्णन है।

उपर्युक्त विषयोंके विवरणसे यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि सात्वतसंहिता—नारदपाञ्चरात्रशास्त्र, जिसको आचार्योंने महोपनिषद्के नामसे पुकारा है, धार्मिक जगत्के लिये और विशेषकर सात्वतधर्मावलम्बियों अथवा भागवतोंके लिये बड़े महत्त्वका और परमोपादेय ग्रन्थ है। यद्यपि पाञ्चरात्रकी समस्त संहिताओंका विशेषण 'सात्वत' शब्द हो सकता है और प्राचीन आचार्योंने सात्वत शब्दका प्रयोग पाञ्चरात्रशास्त्रकी अन्यान्य संहिताओंके लिये भी किया है, तथापि महाभारतके उपर्युक्त प्रमाणसे स्पष्ट हो जाता

है कि महाभारतके शान्तिपर्वमें जिस पाञ्चरात्रका वर्णन है, जिस सात्वतविधिका उल्लेख है और जिस शास्त्रके अनुसार भगवदाराधनका विधान भीष्मपितामहने बतलाया है, वह यही नारदपाञ्चरात्रकी सात्वतसंहिता है। नारदपाञ्चरात्रशास्त्र, आत्मभरन्यास, प्रपत्तिमार्गका सबसे अधिक उपयोगी शास्त्र है। यह भागवतधर्मका मूल है और सांसारिक जीवोंकी भवसागरसे पार करनेकी सबसे बड़ी नौका है। यद्यपि इस शास्त्रकी परम्परापर दृष्टि डालनेसे पता चलता है कि यह शास्त्र समय-समयपर अनेक महापुरुषोंद्वारा प्रकट हुआ है और अन्तर्धान हुआ है तथा इस प्रकार इस महोपनिषद् नामक शास्त्रके अनेक प्रवर्तक और आचार्य हुए हैं, तथापि वर्तमान सृष्टिक्रममें जो पाञ्चरात्रशास्त्रका ज्ञान प्रचलित है और कम-से-कम महाभारतकालसे अबतक जो सात्वत-धर्म अविच्छिन्नरूपसे चला आ रहा है, उसके मुख्य प्रवक्ता, उसके मुख्य प्रचारक और आचार्य देवर्षि नारद हैं। अतएव परम भागवतोंमें इनका सर्वाधिक प्राधान्य है।

पाञ्चरात्रशास्त्रकी परम्पराके विषयमें महाभारतमें लिखा है कि राजा जनमेजयने श्रीवैशम्पायनजीसे पूछा—हे मुनिवर! इस लोकमें जिन लोगोंकी वासनाएँ नष्ट हो चुकी हैं और जो लोग पुण्य-पापसे रहित हैं, उनकी परम्पराप्राप्त गति अर्थात् उनके ज्ञानके विषयको आपने वर्णन किया है, वे लोग चौथी गति (अर्थात् अनिरुद्ध, प्रद्युम्न तथा सङ्कर्षणकी उपेक्षा कर वासुदेव पुरुषोत्तम) को पाते हैं। ऐकान्तिक पुरुष अर्थात् निष्काम भक्त लोग परमपद लाभ करते हैं। मुझे यह निश्चय होता है कि यह ऐकान्तिक धर्म ही सर्वश्रेष्ठ तथा नारायणको अधिक प्रिय है। जो लोग सर्वप्रिय बन और यत्नवान् हो विधिपूर्वक उपनिषदोंसहित वेदपाठ करते हैं, जो लोग यतिधर्मसे युक्त हैं, उनकी अपेक्षा ऐकान्तिक पुरुषोंकी गति उत्तम जान पड़ती है। अतएव हे विभु! आप यह बतलानेकी कृपा करें कि किस देवता तथा किस ऋषिके द्वारा यह ऐकान्तिक धर्म कहा गया है। ऐकान्तिक पुरुषोंके कैसे आचरण होते हैं? उन आचरणोंका प्रचार कबसे हुआ है?

जनमेजयके इन प्रश्नोंके उत्तरमें वैशम्पायनजीने कहा—हे राजन्!

पाञ्चरात्रशास्त्र, जिसमें यह धर्म वर्णन किया गया है—सर्वप्रथम आदियुगमें सामवेदके साथ-ही-साथ प्रकट होते देखा गया है। आरम्भमें स्वयं नारायणने इसको धारण किया है। इस धर्मकी परम्पराके सम्बन्धमें महाभारतकालमें श्रीकृष्ण भीष्मपितामह तथा ऋषियोंके सामने अर्जुनने महाभाग देवर्षि नारदसे प्रश्न किया था। उस समय देवर्षि नारदने उत्तर देते हुए कहा था—

हे पार्थ! आदियुगमें जिस समय श्रीमन्नारायणके मुखसे ब्रह्माका मानस जन्म हुआ था, उस समय स्वयं नारायणने इस सात्वतधर्मके सहारे देव और पितृकर्म किये थे। उनसे फेनप ऋषियोंने इस धर्मको पाया था। उनसे यह धर्म चन्द्रमाने पाया था। अन्तमें यह धर्म अन्तर्हित हो गया था। हे राजन्! जब ब्रह्माका दूसरा चाक्षुष जन्म हुआ, तब ब्रह्माजीने चन्द्रमासे यह धर्म सुना था। नारायणस्वरूप ब्रह्माने इस धर्मका उपदेश रुद्रको दिया था। जब सत्ययुगमें रुद्रने योगावलम्बन किया, तब इस धर्मका उपदेश उन्होंने बालखिल्योंको दिया था। तत्पश्चात् रुद्रकी मायासे यह धर्म पुनः अन्तर्हित हो गया। जब ब्रह्माजीका महद्वाचिक नामक तीसरा जन्म हुआ, तब इस धर्मका प्रचार पुनः नारायणसे स्वयं हुआ। उस समय सुपर्ण नामक ऋषिने नारायणसे यह धर्म प्राप्त किया था।

उन ऋषिप्रवरने तीन बार इस उत्तम धर्मसे युक्त पाञ्चरात्रशास्त्रकी आवृत्ति की थी! इसीसे यह धर्म त्रिसौपर्णव्रतरूपसे कहा जाता है। यह दुश्चरव्रत ऋग्वेदमें भलीभाँति कहा गया है। इस व्रतविधानको जगत्के प्राणरूप वायुने सुपर्ण ऋषिसे पाया था। वायुसे विघसाक्षी ऋषियोंको और उन ऋषियोंसे समुद्रको मिला था। अन्तमें यह सात्वत-धर्म नारायणमें समाहित होकर अन्तर्हित हो गया।

हे राजन्! जब ब्रह्माजीकी श्रवणज अर्थात् अनाहत ध्वनिरूपी चतुर्थ बार उत्पत्ति हुई; तबका इस धर्मका इतिहास बड़ा विलक्षण है। सृष्टिके आरम्भमें नारायण हरिने स्वयं जगत्को उत्पन्न करनेकी इच्छा करके, किसी पुरुषका चिन्तन किया। तब उनकी इच्छाके अनुसार उनके कर्णसे प्रजारचयिता ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। तब जगत्पति नारायणने उनसे कहा—हे पुत्र! तुम मुख और पदसे समस्त प्रजा उत्पन्न करो। मैं तुम्हें बल एवं

तेज प्रदान करूँगा और तुम्हारा जिससे कल्याण हो, वैसा विधान करूँगा। हे ब्रह्मन्! तुम मुझसे सात्वतधर्म ग्रहण करो और इसी धर्मसे उत्पन्न सत्ययुगको स्थापित करो।

यह सुन ब्रह्माजीने सर्वेश्वर परमात्माको प्रणाम किया और उनसे रहस्य और संग्रहसहित इस पाञ्चरात्रशास्त्र–जनित श्रेष्ठ धर्मको ग्रहण किया। नारायण तो, तेजस्वी ब्रह्माजीको आरण्यकों और उपनिषदोंसहित सात्वत–धर्मशास्त्रका उपदेश देकर अन्तर्धान हो गये और लोक–पितामह ब्रह्माने समस्त लोकोंको उत्पन्न किया। उस समय आदियुग सत्ययुग प्रवृत्त हुआ और संसारमें सर्वत्र सात्वत–धर्मका प्रचार हो गया। जगत्स्रष्टा ब्रह्माजीने सात्वत–धर्मकी विधिसे सर्वशक्तिमान् देवेश्वर हरिका पूजन किया। तदनन्तर समस्त लोकोंकी हितकामनासे ब्रह्माजीने इस धर्मको स्वारोचिष मनुको पढ़ाया। उन्होंने अव्यग्रभावसे इसको अपने पुत्र शङ्खपदको पढ़ाया। शङ्खपदने अपने औरस पुत्र दिक्पाल सुवर्णाभको पढ़ाया और पुनः त्रेतायुगके उपस्थित होनेपर यह धर्म अन्तर्हित हो गया।

हे राजन्! जिस समय प्रजापति ब्रह्माका नासत्य नामक पाँचवाँ जन्म हुआ, उस समय पुनः नारायणने ब्रह्माजीको इस सात्वत–धर्मका उपदेश दिया था। फिर ब्रह्माजीसे सनत्कुमारने और उनसे सत्ययुगके आरम्भमें वीरण नामक प्रजापतिने इस धर्मको पढ़ा था। वीरणने रैभ्य नामक मुनिको और रैभ्यने परम पवित्र, सुव्रत एवं मेधावी दिक्पाल कुक्षिको यह धर्म बतलाया था। तदनन्तर काल पाकर यह धर्म फिर अन्तर्हित हो गया।

फिर जब ब्रह्माजीका अण्डज नामक छठवाँ जन्म हुआ, तब यह धर्म ब्रह्माजीके अन्तःकरणमें पुनः प्रकट हुआ और उन्होंने इस धर्मका उपदेश वर्हिषद नामक ऋषियोंको दिया। उन्होंने इस धर्मको सामवेदी ज्येष्ठ नामक एक ब्राह्मणको पढ़ाया। इसीलिये तबसे इस सात्वत–धर्मका नाम ज्येष्ठसामव्रत प्रसिद्ध हुआ। ज्येष्ठसे यह धर्म अविकम्पन नामक राजाको प्राप्त हुआ। तदनन्तर भागवतोंका परमाराध्य यह सात्वत–धर्म पुनः अन्तर्धान हो गया।

हे राजन्! ब्रह्माजीका सातवाँ जन्म भगवान्‌की नाभिसे हुआ। युगारम्भके समय भगवान्‌ने फिर ब्रह्माजीको इस सात्वत–धर्मका उपदेश दिया था। ब्रह्माने दक्षप्रजापतिको, दक्षप्रजापतिने अपने ज्येष्ठ दौहित्र और सविताके अग्रज आदित्यको और आदित्यने विवस्वान्‌को पढ़ाया। त्रेतायुगके आरम्भमें विवस्वान्‌ने अपने पुत्र वैवस्वतमनुको सात्वत–धर्मका उपदेश दिया। तदनन्तर वैवस्वतमनुने अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकुको पढ़ाया। हे राजन्! इक्ष्वाकुद्वारा प्रचारित होकर यह धर्म सब लोकोंमें व्याप्त और प्रतिष्ठित हुआ। अब कल्पान्तकाल उपस्थित होनेपर यह सात्वत–धर्म पुनः श्रीमन्नारायणमें लीन हो जायगा।

इसी सात्वत–धर्मकी चर्चा करते हुए भीष्मपितामहने युधिष्ठिरसे महाभारतमें कहा था—हे नृपोत्तम! नारद मुनिने इस सात्वत–धर्मको रहस्य और संग्रहसहित साक्षात् नारायणसे प्राप्त किया था। इस प्रकार यह सात्वतधर्म नित्य माना गया है। भक्तिशून्य मनुष्योंके लिये यह धर्म दुर्विज्ञेय और दुष्कर है; किन्तु सात्वत–मतावलम्बी भगवज्जन सदा इस धर्मानुसार चला करते हैं। यदि भलीभाँति और अहिंसाव्रत धारणपूर्वक इस धर्मका पालन किया जाय और यदि इस धर्मका यथार्थ ज्ञान हो जाय तो ऐसा होनेपर जगदीश्वर भगवान् हरि प्रसन्न होते हैं। भगवान् कभी एक व्यूहमें, कभी दो व्यूहोंमें, कभी तीन व्यूहोंमें और कभी चार व्यूहोंमें विभक्त होकर दिखलायी पड़ते हैं। किन्तु वे गुणातीत होकर सब प्राणियोंमें निवास करते हैं। परब्रह्म नारायण ही पाँचों कर्मेन्द्रियों और पाँचों ज्ञानेन्द्रियोंके परिचालक मन अथवा अहङ्कारके रूपसे प्रसिद्ध हैं। वे बुद्धिमान् हरि ही सर्व लोकोंके रचनेवाले हैं और वे ही समस्त लोकोंके प्रवर्तक और अन्तर्यामी हैं। वे हरि ही कर्त्ता हैं, कार्य हैं और कारण हैं। वे अविनाशी पुरुष निज इच्छानुसार क्रीड़ा किया करते हैं। हे नृपसत्तम! गुरु–कृपाके प्रभावसे मैंने यह सनातनधर्म तुमको सुनाया है। जो अपवित्र बुद्धिवाले जन हैं, उनके लिये इस धर्मका महत्त्व दुर्विज्ञेय है, किन्तु निष्काम भगवद्भक्तोंका यह धर्म परमाराध्य और सर्वस्व है। इस असार संसारमें विशेषकर इस युगमें निष्काम भगवद्भक्त होना अत्यन्त दुर्लभ है। यदि निष्काम भगवद्भक्तोंसे

और अहिंसक-धर्मपरायण एवं समस्त प्राणियोंके हितमें निरत व्यक्तियोंसे यह जगत् परिपूर्ण हो जाता, तो यहाँ सदा ही सत्ययुग बना रहता और समस्त काम्यकर्मोंका विनाश हो जाता।

नारदजीने नारायणसे जो ज्ञान प्राप्त किया था उसका उल्लेख भी महाभारतमें पाया जाता है। उसका यहाँ उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है। (देखो शान्तिपर्व अध्याय ३३४)

बदरिकाश्रममें नारायणके निकट जा नारदजीने प्रणाम कर उनसे पूछा—हे देवेश! वेदोंमें, वेदाङ्गोंमें, उपाङ्गोंमें तथा पुराणोंमें आपकी कीर्ति गायी गयी है। आप अजन्मा, शाश्वत, धाता, जगत्के मातारूप और सर्वोत्तम अमृतरूप हैं। भूतकालका और भविष्यकालका समस्त जगत् आपमें स्थित है। हे देव! गृहस्थाश्रमादि चारों आश्रम भी आपहीमें हैं। गृहस्थाश्रमी पुरुष अनेक मूर्तियोंमें निवास करनेवाले आपका प्रतिदिन भजन करते हैं। आप जगत्के माता-पिता और सनातन गुरु हैं। तिसपर भी आप किस देवताका पूजन किया करते हैं और कौन-से पितरोंका तर्पण किया करते हैं? कृपया यह मुझे आप बतलावें। क्योंकि यह बात मुझे मालूम नहीं है।

इसके उत्तरमें नारायणने नारदजीसे कहा—मैं जो बातें तुमसे कहूँगा वे ऐसी हैं कि उन्हें किसीके आगे कहना न चाहिये। क्योंकि वे मेरी गुप्त बातें हैं और आज नयी नहीं हैं—सनातन हैं। वे बातें मैं किसीको नहीं बतलाता; किन्तु तुम मेरे भक्त हो, अतः मैं तुम्हें वे बातें बतलाता हूँ। सुनो, सूक्ष्म, अज्ञेय, अव्यक्त, अचल, ध्रुव एवं इन्द्रियातीत जो तत्त्व है, वही समस्त प्राणियोंका अन्तरात्मारूप है और वही क्षेत्रज्ञ कहलाता है। लोग उसकी 'पुरुष' नामसे कल्पना करते हैं। वह रजोगुण, सतोगुण और तमोगुणसे रहित है, किन्तु उसीसे त्रिगुणात्मक अव्यक्तकी उत्पत्ति होती है। व्यक्त-अव्यक्त भावोंवालेकी अविनाशी प्रकृति-तत्त्व कहते हैं। वह प्रकृति हम दोनोंकी योनि अर्थात् मूल है। जो देव सत् (कारण) और असत् (कार्य) रूप है, उसी देव (आत्मा) का मैं पूजन करता हूँ। क्योंकि देव और पितृकार्योंमें मैं उसीका पूजन किया करता हूँ।

हे द्विज! उससे बढ़कर परम देव और परम पिता दूसरा नहीं है। उसीसे यह लोकभाविनी मर्यादा प्रसिद्ध हुई है कि देव और पितृकर्म करने चाहिये और यही उसकी आज्ञा है। ब्रह्मा, स्थाणु, मनु, दक्ष, भृगु, धर्म, यम, मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, परमेष्ठी, विवस्वान्, सोम, कर्दम, क्रोध, अर्वाक और क्रीत—ये इक्कीस प्रजापति उससे उत्पन्न हुए हैं। ये सभी उस परम देवताकी सनातन मर्यादाका सम्मान किया करते हैं। उसीके उद्देश्यसे सदा देव और पितृकर्म करने चाहिये। यह जानकर ही द्विजोत्तम उसकी कृपासे आत्मज्ञानी हो जाते हैं। स्वर्गवासी शरीरधारी जीव भी उसको नमस्कार करते हैं और वे लोग उसकी कृपासे उसकी निर्दिष्ट की हुई गतिको पाते हैं। जो लोग पञ्चप्राण, मन, बुद्धि तथा दसों इन्द्रियाँ और सत्रह गुणों—शुभाशुभ कर्मों और पन्द्रह कलाओंसे रहित होते हैं, वे मुक्त कहलाते हैं। यह शास्त्रका मत है।

शास्त्रोंने मुक्तोंकी गतिको क्षेत्रज्ञ बतलाया है। यह क्षेत्रज्ञ सर्वगुणसम्पन्न भी है और निर्गुण भी है। ज्ञानद्वारा उसका दर्शन भी किया जा सकता है। मेरी उत्पत्ति भी उसीसे हुई है। यह जानकर ही मैं उन सनातन परमात्माकी आराधना किया करता हूँ। वेदज्ञ तथा आश्रमी भी विविध अवतार धारण करनेवाले परमात्माकी भक्तिपूर्वक पूजा करते हैं और परमात्मा उन्हें मुक्ति प्रदान करता है। इस संसारमें जो उसकी भावनावाले हो चुके हैं और जो एक परिणामवाली एकान्तत्वकी स्थितिको प्राप्त कर चुके हैं, उनको विशेष लाभ यह है कि परमात्मस्वरूपमें प्रविष्ट होते हैं।

हे विप्रर्षे! अपनेमें तुम्हारी भक्ति और तुम्हारा अनुराग देख मैंने यह गोप्य विषय तुमको बतलाया है। मेरा तुम्हारे ऊपर अनुग्रह है। इसीसे मैंने तुम्हें यह बात बतलायी है।

यह सुन नारदजीने नारायणसे कहा—हे स्वयम्भू! आपने जिस कार्यको सम्पादन करनेके लिये धर्मके घरमें चार मूर्तियोंसे जन्म लिया है, संसारकी हितकामनासे प्रेरित हो, उस कार्यको साधनेके लिये मैं आपकी आद्या प्रकृतिका दर्शन करने जाता हूँ। हे लोकनाथ! मैंने वेदोंका

स्वाध्याय किया है और तपश्चर्या की है। मैं आजतक कभी झूठ नहीं बोला। मैं गुरु-सेवा-परायण हूँ। मैंने दूसरोंकी गुप्त बातें कभी प्रकट नहीं की। शास्त्रवर्णित विधिसे मैंने हाथों, पैरों, उदर और उपस्थकी अनिष्ट कर्मोंसे रक्षा की है अर्थात् मैंने कभी कोई बुरा काम नहीं किया। मैं शत्रु-मित्रमें अभेद रखता हूँ। मैं सदा आदिदेवके शरणमें रहता हूँ और अनन्य हो उनमें भक्ति रखता हूँ। मैं शुद्ध सत्त्व हूँ, अतः मुझे ईश्वरके दर्शन होने चाहिये।

यह सुन नारायणने देवर्षि नारदको जानेकी अनुमति दी। तब देवर्षि नारद उन पुराणपुरुषका पूजन कर और उनको प्रणाम कर वहाँसे चल दिये। योगेश्वर नारद वहाँसे आकाशमार्गद्वारा चल, मेरु-पर्वतपर जा पहुँचे। उस पर्वतके एक एकान्त शिखरपर उन्होंने विश्राम किया। तदनन्तर ज्यों ही उन्होंने वायव्यकोणकी ओर दृष्टि डाली त्यों ही उन्हें एक बड़ा अद्भुत दृश्य देख पड़ा। उन्होंने देखा कि क्षीरसागरमें उत्तरकी ओर एक द्वीप है, जो श्वेतद्वीपके नामसे प्रसिद्ध है। विद्वानोंके मतानुसार यह द्वीप मेरु-पर्वतसे बत्तीस सहस्र योजनके फासलेपर है। इस द्वीपमें रहनेवालोंके शरीर स्थूल नहीं हैं। उन्हें न तो अन्न खानेकी आवश्यकता होती है और न उन्हें प्यास बुझानेको जल ही पीना पड़ता है। उनके शरीरोंसे सुगन्ध निकला करती है। वे सब श्वेत रंगके हैं। वे सब पुरुष हैं और निष्पाप हैं। उन्हें देख पापीजन चकित हो जाते हैं। उनके शरीर और शरीरकी हड्डियाँ वज्रकी तरह दृढ़ हैं। उनके निकट मानापमानमें कुछ भी भेद नहीं है, वे दिव्य अंग और दिव्यरूपधारी हैं। वे शुभ लक्षणोंसे युक्त हैं और योगबलसम्पन्न हैं। उनके सिरोंकी बनावट छत्र-जैसी है। उनका कण्ठस्वर मेघगर्जनकी तरह गम्भीर है और उनके वृषण शुष्क हैं। उनके पादतल रेखायुक्त हैं। उनके मुखोंमें साठ-साठ दाँत और आठ-आठ दाढ़ें तथा कई एक जिह्वाएँ हैं। श्वेतद्वीपवासी जन अपनी असंख्य जिह्वाओंसे सूर्यरूपी एवं विश्वमुख देवको चाटा करते हैं। समस्त वेद, धर्म, शान्तस्वभाव मुनि तथा देवगण उन्हीं सर्वेश्वरके वशीभूत हैं। उन तेजस्वी पुरुषोंको देखकर और सिर झुका देवर्षि नारदने उनका पूजन किया। फिर उन लोगोंद्वारा स्वयं

पूजित होकर, नारदजीने हाथ ऊपर कर और मनको एकाग्र कर निर्गुण और सगुण विश्वात्माकी स्तुति की।

नारदजीने कहा—हे देव-देव! आप जीवोंके अन्तर्यामी हैं। अतः आपको प्रणाम है। आप सर्वव्यापी हैं, आप निर्गुण हैं, आप लोकसाक्षी हैं, आप देहद्वय-प्रकाशक जीव हैं—अतः आप क्षेत्रज्ञ कहलाते हैं। आप पुरुषोत्तम हैं, आप अनन्त हैं। स्थूल, सूक्ष्म और कारण—इन शरीरत्रयको भस्म करनेवाले होनेके कारण, आप पुरुष और महापुरुष हैं। सत्त्व, रज, तमोगुणके रूप तथा निर्गुण तीनों गुणोंके सङ्घातरूप होनेसे आप प्रधान हैं। आप अमृत और अमृताख्य अर्थात् देवरूप हैं। आप अनन्ताख्य, व्योम, सनातन, व्यक्त, अव्यक्त, ऋतधाम, आदिदेव और नारायण कर्मफलदाता हैं।

आप वसुप्रद कहलाते हैं। हे भगवन्! आप प्रजापति, वनस्पति, महाप्रजापति, ऊर्जस्पति, वाचस्पति, जगत्पति, मनस्पति, दिवस्पति, मरुत्पति, सलिलपति और पृथिवीपति हैं।

नारदजीने इस प्रकार इन नामोंसे भगवान्‌की स्तुति करके अन्तमें कहा—'हे भक्तवत्सल! हे ब्रह्मण्यदेव! मैं आपके दर्शन करनेके लिये आया हूँ। मेरी यही अभिलाषा है। आप एकान्तदर्शन एवं मोक्ष-स्वरूप हैं। अतएव आपको बारम्बार प्रणाम है।'

इसपर भगवान्‌ने नारदजीको दर्शन दिये। तब द्विजसत्तम नारदजीने प्रसन्न हो और वाणीको अपने वशमें कर, भगवान्‌को साष्टाङ्ग प्रणाम किया। नारदजीकी विनम्रता देख, भगवान्‌ने कहा—नारद! महर्षि एकत, द्वित और त्रित मेरे दर्शनोंकी अभिलाषासे यहाँ आये थे; किन्तु उनको मेरे दर्शन नहीं हुए। क्योंकि ऐकान्तिक भगवद्भक्तोंको छोड़, दूसरे किसीको मेरे दर्शन नहीं होते। तुम योगी और ऐकान्तिक योगियोंमें श्रेष्ठ हो। इसीसे तुम्हें मेरे दर्शन हुए हैं। हे द्विज! मेरा यह उत्तम शरीर धर्मके घरमें उत्पन्न हुआ है। अतः तुम सदैव उसी धर्मका सेवन करो और जहाँसे आये हो अब वहींको लौट जाओ। हे नारद! मैं इस समय विश्वरूप धारण करके तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ। अतः तुम जो चाहो सो वर माँग लो। मैं तुम्हें सब कुछ देनेको तैयार हूँ।

भगवान्‌के इन कृपायुक्त वचनोंको सुनकर नारदजीने कहा—'हे देव! जब आपके दर्शन मिल गये, तब आज मानो मुझे मेरे तप, यम और नियम-पालनका फल प्रत्यक्ष मिल गया। हे भगवन्! आप विश्वदर्शी, सिंहस्वरूप, सर्वमूर्तिमय, महाप्रभु और सनातन हैं। जब मुझे आपके दर्शन ही मिल गये, तब और शेष ही क्या रह गया। इससे बढ़कर और क्या लाभ हो सकता है। अतः मैं आपसे अब दूसरा क्या वर माँगूँ?'

नारदजीके इस विनम्र वचनोंको सुनकर भगवान्‌ने कहा—अब तुम अपने स्थानको जाओ, विलम्ब मत करो। क्योंकि ये सब अतीन्द्रिय, अनाहारी, चन्द्रवर्चस पुरुष मेरे ऐकान्तिक भक्त हैं। ये लोग एकाग्र मनसे मेरा ध्यान करते हैं। अतएव इनके ध्यानमें विघ्न न होना चाहिये। ये सब महाभाग सिद्ध पुरुष हैं और ये ही सर्वप्रथम मोक्ष-पथावलम्बी हुए हैं। ये सब रजोगुण और तमोगुणसे रहित हैं। अतः निश्चय ही ये मुझमें प्रवेश करेंगे। जो अतीन्द्रिय हैं, जो त्रिगुणसे रहित हैं, जो सर्वगतसाक्षी हैं, जो चैतन्यरूपसे लोगोंके आत्मा कहे जाते हैं, वे सब प्राणियोंके और अपने शरीरोंके नष्ट होनेपर भी नष्ट नहीं होते। जो जन्मरहित, शाश्वत, नित्य, निर्गुण और निष्क्रिय पुरुष चौबीस तत्त्वोंसे परे पचीसवाँ तत्त्व कहलाता है, वही एकमात्र ज्ञानदृश्य है। इस संसारमें द्विजसत्तम जिसमें प्रवेश करके मुक्त हो जाते हैं, उसी सनातन वासुदेवको तुम परमात्मा जानो। हे नारद! जो शुभाशुभ कर्मोंमें कभी लिप्त नहीं होते, उन देवकी महिमा और माहात्म्यको देखो। सत्त्व, रज और तम—ये तीन गुण हैं। इनका अस्तित्व समस्त शरीरोंमें है। क्षेत्रज्ञ जीव इन तीनों गुणोंका भोक्ता है; किन्तु वे गुण उसको भोग नहीं सकते। वह निर्गुण होनेपर भी गुण-भोजी है और गुणस्रष्टा होकर भी गुणाधिक है।

हे देवर्षे! पृथिवी जलमें लीन होती है, जल अग्निमें लीन हुआ करता है; अग्नि वायुमें लीन होता है, वायु आकाशमें लय होता है, आकाश मनमें और परमभूत मन उस अव्यक्तमें लीन हो जाता है। हे ब्रह्मन्! अव्यक्त भी निष्क्रिय पुरुषमें लीन हो जाता है और अवसानकालमें उस सनातन पुरुषको छोड़ और कोई नहीं रह जाता। उस एकमात्र शाश्वत

पुरुष वासुदेवको छोड़ इस जगत्‌के स्थावर-जङ्गम कोई भी पदार्थ नित्य नहीं हैं। महाबलवान् वासुदेव सब प्राणियोंके आत्मभूत हैं। पृथिवी, वायु, आकाश, जल और अग्नि मिलकर, शरीरसंज्ञक होते हैं। जो क्षिप्रकारी अदृश्य होकर उस शरीरमें प्रवेश करता है, वह वस्तुतः उत्पन्न न होकर भी मानो उत्पन्न होकर शारीरिक चेष्टाओंका निर्वाह किया करता है। धातुसङ्घातके अतिरिक्त वास्तवमें शरीर कभी उत्पन्न नहीं होता। हे ब्रह्मन्! जीवके बिना वायु चेष्टा नहीं कर सकता। इस शरीरमें जो प्रवेश करता है, वही जीव है। व्यूहविशेष विश्व-विधायक सङ्कर्षण और शेष नामसे वही प्रभु माना जाता है। जो पुरुष शुभ कर्मोंद्वारा जिससे जीवन्मुक्ति पाते हैं और प्रलयकालमें समस्त प्राणी जिसमें लीन हो जाते हैं, वे सब भूतोंके मनरूप प्रद्युम्न नामसे प्रसिद्ध होते हैं। जो सङ्कर्षणसे उत्पन्न होता है, वही कर्त्ता, कारण और कार्यरूप है। प्रद्युम्नसे यह स्थावर-जङ्गमात्मक समस्त जगत् उत्पन्न होता है। इसीका नाम अनिरुद्ध है। यही ईश्वर है और सब कार्योंमें व्यक्तरूपसे दिखलायी पड़ता है।

हे द्विजेन्द्र! भगवान् वासुदेव, जो क्षेत्रज्ञ और निर्गुणस्वरूप कहे गये हैं, उन्हींको सङ्कर्षण अर्थात् जीव जानो। सङ्कर्षणसे प्रद्युम्न उत्पन्न होते हैं और वे ही मन कहलाते हैं। प्रद्युम्नसे उत्पन्न अनिरुद्ध ही अहङ्कार और ईश्वर हैं। हे नारद! मुझहीसे स्थावर-जङ्गमात्मक समस्त विश्व और समस्त सदसत् पदार्थ उत्पन्न हुए हैं। इस लोकमें आकर मेरे भक्त मुझमें प्रविष्ट हो मुक्ति पाते हैं। मुझे तुम निष्क्रिय पच्चीसवाँ पुरुष जानो। मैं निर्गुण, निष्कल, निर्द्वन्द्व और निष्परिग्रह हूँ। हे नारद! तुम ऐसा मत समझना कि मैं रूपवान् हूँ और दिखलायी पड़ता हूँ। मैं इच्छा करते ही क्षणमात्रमें विलीन हो सकता हूँ। क्योंकि जगत्‌का गुरु और नियन्ता मैं ही हूँ।

हे नारद! इस समय तुम मेरा जो दर्शन कर रहे हो, सो यह मेरी उत्पन्न की हुई माया है। सब प्राणियोंमें गुणोंके सहारे संयुक्त न होनेसे तुम मुझे जान नहीं सकते थे। हे ब्रह्मन्! मैंने तुम्हारे सामने चारों मूर्तियोंके विषयका वर्णन किया है। मैं ही कर्त्ता, कार्य और कारण हूँ। मैं ही

जीव-संघात अर्थात् जडवर्ग हूँ और मुझहीमें जीव स्थित होते हैं। मैंने जीवका दर्शन किया, तुम कहीं ऐसा मत समझ लेना। हे नारद! मैं समस्त प्राणियोंका अन्तरात्मा और सर्वगामी हूँ। किन्तु प्राणियोंके शरीर नष्ट होनेपर भी मैं नष्ट नहीं होता। हे मुनि! ये श्वेतद्वीपवासी, मोक्षनिष्ठ एवं महाभाग जन सिद्धपदको प्राप्त हुए हैं। ये लोग रजोगुण और तमोगुणसे छूटकर मुझमें प्रवेश करेंगे। सब लोकोंके आदिभूत अनिर्वचनीय ब्रह्मा मेरे अनेक विषयोंका मनन किया करते हैं! रुद्रदेव मेरे क्रोधवश मेरे ललाटसे उत्पन्न हुए हैं। देखो न—ये एकादश रुद्र मेरी दाहिनी ओर खड़े हैं और बायीं ओर द्वादश आदित्य हैं। मेरे सामने सुरोत्तम आठों वसु स्थित हैं और मेरे पीछे नासत्य एवं दक्ष नामक प्रजापति और सत्यात्मा सप्तर्षि हैं। हे नारद! इतना ही नहीं, तुम समस्त वेदों, सैकड़ों यज्ञों, अमृत एवं महौषधियोंको देखो। तपस्या, नियम और पृथक्-पृथक् समस्त यमोंको तथा अणिमा आदि अष्ट सिद्धियाँ मूर्तिमान् मेरे शरीरमें तुम्हें देख पड़ेंगी। श्री, लक्ष्मी, कीर्ति और ककुद्मिनी पृथिवी और वेदमाता सरस्वती, मुझहीमें निवास करती हैं। यह भी तुम भलीभाँति देख लो।

हे नारद! ज्योतिश्रेष्ठ आकाशचारी ध्रुव, अम्भोधर चारों समुद्र, नदियाँ, समस्त तालाब और मूर्तिमान् पितृगणको भी देखो। हे मुनिसत्तम! देखो, सत्त्व, रज और तम—तीनों गुण मूर्तिरहित होकर मुझमें निवास करते हैं। हे ब्रह्मन्! देवकार्योंसे पितृकार्य श्रेष्ठ है और मैं ही एकमात्र सब पितरोंका पिता हूँ। क्योंकि मैं ही पश्चिमोत्तर समुद्रमें हयशिरा होकर श्रद्धायुक्त एवं उत्तम रीतिसे हवन किये हुए हव्य और कव्यको पाता हूँ। मैंने प्रथम ब्रह्माको उत्पन्न किया और वे उत्पन्न होकर यज्ञरूपधारी हुए। उन्होंने सर्वप्रथम मेरा पूजन किया था। उनके पूजनसे प्रसन्न होकर मैंने उनको यह वरदान दिया था 'सृष्टिके आरम्भमें तुम मेरे पुत्र और सब लोकोंके अध्यक्ष होओगे। साथ ही अहङ्कारको उत्पन्न करनेके कारण तुम लोकमें विधाताके नामसे विख्यात होओगे और तुम्हारी स्थापित की हुई मर्यादाको कोई मनुष्य उल्लङ्घन न कर सकेगा। हे तपोधन ब्रह्माजी! वरप्रार्थी देवताओं, असुरों, ऋषियों और पितरोंको

तुम वर प्रदान करोगे। हे चतुरानन! मैं देवकार्यसाधन करनेके लिये सदा उत्पन्न होकर पुत्रके समान तुम्हारी आज्ञाओंका पालन करूँगा।'

हे नारद! अति तेजस्वी ब्रह्माजीको ये सब तथा अन्य अनेक प्रकारके मनोहर वर देकर, मैं सानन्द निवृत्त हुआ था। समस्त धर्मोंकी परम निर्वृत्ति ही निर्वाण कहलाता है। अतः निवृत्तिनिष्ठा और सर्वाङ्ग निर्वृत्त होकर धर्माचरण करना चाहिये। यह सांख्यशास्त्रका निश्चित सिद्धान्त है। आचार्योंने आदित्यमण्डलस्थ एवं समाधिनिष्ठ कपिलजीसे कहा था कि भगवान् हिरण्यगर्भ वेदोंमें विशेषरूपसे स्तुत्य हुए हैं। हे ब्रह्मन्! मैं उसी योगमें अनुरक्त होकर योगशास्त्रमें वर्णित हुआ ही शाश्वत होकर भी अव्यय-भावसे आकाशमें निवास करता हूँ। अन्तमें सहस्र युगोंके बाद जगत्का संहार करूँगा और महाविद्याद्वारा पुनः समस्त जगत्को उत्पन्न करूँगा।

मेरी चतुर्थ मूर्तिने अव्यय शेषको उत्पन्न किया है। उसी शेषको लोग सङ्कर्षण कहते हैं। वही सङ्कर्षण प्रद्युम्नको उत्पन्न करता है। प्रद्युम्नसे अनिरुद्धकी उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार मैं बारम्बार सृष्टिकी रचना किया करता हूँ। हे नारद! अनिरुद्धके नाभिकमलसे ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं। ब्रह्मासे समस्त स्थावरजङ्गम जीवोंकी उत्पत्ति होती है। इस लोकमें जैसे आकाशमें सूर्य उदय और अस्त होता है, वैसे ही कल्पके आदिमें बारम्बार यह सृष्टि उत्पन्न होती और नष्ट हुआ करती है। जैसे सूर्यके अदृश्य होनेपर बलवान् काल बलपूर्वक फिर उसको लाकर उपस्थित कर देता है, वैसे ही मैं सब प्राणियोंके हितके लिये वाराहमूर्ति धारण करके सागर-मेखला एवं सत्त्वगुणसे आक्रान्त नष्टप्राय पृथिवीको बलपूर्वक निज स्थानपर लाऊँगा और बलसे गर्वित हिरण्याक्ष नामक दैत्यको मारूँगा। इसके अतिरिक्त देवताओंके कार्यको सिद्ध करनेके लिये नरसिंह-रूप धारण कर, यज्ञ-नाशक दितिपुत्र हिरण्यकशिपुको मारूँगा। विरोचन दैत्यका पुत्र बलि नामक एक महाबली असुर उत्पन्न होगा। वह देवताओं, असुरों और राक्षसोंसे अवध्य होकर इन्द्रको उसके राज्यसे निकाल बाहर करेगा। उसके द्वारा जब तीनों लोक अपहृत हो जायँगे और शचीपति इन्द्र पराजित होंगे, तब मैं अदितिके गर्भसे द्वादश

आदित्यके रूपसे वामन नामसे उत्पन्न होऊँगा। अत्यन्त तेजस्वी इन्द्रको उसका राज्य देकर मैं अन्यान्य समस्त देवताओंको निज-निज स्थानमें स्थापित करूँगा। दानियोंमें श्रेष्ठ बलि सब देवताओंसे अवध्य है। अतएव उसे मैं पातालमें बसाऊँगा।

हे नारद! मैं त्रेतायुगमें भृगुके वंशमें रामरूपसे उत्पन्न होकर तत्कालीन समृद्धशाली, सेना और वाहनोंसे सम्पन्न मदान्ध क्षत्रियोंका संहार करूँगा। त्रेता और द्वापरके सन्ध्याकालमें जगत्पति दाशरथि रामरूपसे अवतार लूँगा। प्रजापतिके पुत्र एकत और द्वित ऋषि अपने भाई त्रितपर अत्याचार करनेके कारण कुरूप होकर वानरयोनिमें उत्पन्न होंगे। उनके वंशमें इन्द्रके समान पराक्रमी एवं महाबलवान् वनवासी वानर उत्पन्न होंगे। उस समय वे ही मेरे कार्यमें सहायक होंगे। उसी रामरूपसे मैं पुलस्त्य-कुलको कलङ्कित करनेवाले महाघोर रौद्रमूर्ति लोककण्टक राक्षसपति रावणको उसके अनुयायियोंसहित मारूँगा। द्वापर और कलिके सन्धिकालमें कंसका वध करनेके लिये मैं मथुरामें वसुदेवके घर कृष्णरूपसे अवतार लूँगा। उस समय मैं अनेक देवकण्टक दानवोंका संहार करके द्वारकापुरीमें निवास करता हुआ अदितिको दुःख देनेवाले नरकासुर, भौमासुर, मुर तथा पीठ नामक दानवोंका वध करूँगा। प्रागज्योतिषपुरवासी विविध धनरत्नोंसे युक्त दानवश्रेष्ठको मारकर मैं उसके समस्त धन-सम्पत्ति और स्त्रीरत्नोंको कुशलस्थली अर्थात् द्वारकापुरीमें लाऊँगा। तदनन्तर बाणासुरके प्रिय और हितैषी महेश्वर तथा महासेन नामक दो सदा उद्योगी दैत्योंको पराजित करूँगा। बलिपुत्र बाणासुरको, जिसके सहस्र भुजाएँ होंगी, जीतकर सौम-विनासी समस्त मानवोंका संहार करूँगा।

हे द्विजवर! गर्गमुनिके तेजसे परिपूरित कालयवन नामक जो पुरुष उत्पन्न होगा, मैं उसको मरवा डालनेका भी प्रयत्न करूँगा। समस्त राजाओंके शत्रु गिरिव्रज (मगध) के अत्यन्त बलवान् राजा जरासन्ध नामक असुरकी मृत्यु मेरे ही बुद्धिकौशलसे होगी। धर्मपुत्र युधिष्ठिरके यज्ञमें मैं शिशुपालका वध करूँगा। पृथिवीपर समस्त बलवान् राजाओंके

एकत्र होनेपर महाभारतके समय अकेला इन्द्रपुत्र धनञ्जय मेरा सहायक होकर भू-भार उतारेगा। मैं भाइयोंसहित युधिष्ठिरको उसका राज्य दिलाऊँगा। उस समय सब लोग कहेंगे कि ईश्वर अर्जुन और कृष्णके रूपसे भू-भार उतारनेके निमित्त उद्योगशील बन क्षत्रियकुलको भस्म कर रहा है। हे सत्तम! पृथिवीके अभिलषित भारको उतारकर, आत्मज्ञानके अनुसार मैं द्वारकाके समस्त यदुवंशियोंमें घोर प्रलय उत्पन्न करूँगा। मैं अपनी चारों मूर्तियोंको धारण करके और अपरिमेय कार्योंको पूर्ण कर एवं ब्रह्माजीद्वारा सत्कारित होकर निज लोकको जाऊँगा।

हे द्विजवर! मैं हंस, कच्छप, मत्स्य, वाराह, नृसिंह, वामन, दाशरथि राम, कृष्ण और कल्किरूपसे उत्पन्न होऊँगा। जिस समय वेद श्रुति नष्ट होंगी, उस समय मैं उनका उद्धार करूँगा। सत्ययुगमें मेरे द्वारा जो वेद श्रुति प्रकट हुई थीं, वे अब लुप्त-सी हो गयी हैं अर्थात् पुराणोंमें किसी-किसी स्थलपर ही वे पायी जाती हैं। मेरे अनेक अवतार हो चुके हैं। मैं समय-समयपर अवतारद्वारा लोककार्य पूरे कर निज प्रकृतिको प्राप्त होता रहा हूँ। हे ब्रह्मन्! तुमने मोक्षनिष्ठायुक्त बुद्धिका अवलम्बन करके इस समय जिस प्रकार मेरा दर्शन पाया है, उस प्रकार ब्रह्माको भी मेरा दर्शन नहीं मिल सकता। हे सत्तम! तुम भक्तिमान् हो, इसीलिये मैंने तुमको इन सब प्राचीन और भविष्य-रहस्योंका वर्णन सुनाया है।

इस प्रकार देवर्षि नारदको सात्वतधर्म—पाञ्चरात्रशास्त्रका उपदेश दे, भगवान् हरि वहीं अन्तर्धान हो गये।

साक्षात् भगवान्‌के मुखारविन्दसे जिस ज्ञानको देवर्षि नारदने आदियुगमें प्राप्त किया था, उनका प्रचार संसारमें कैसे हुआ? इस प्रश्नका उत्तर भी श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यासजीने महाभारतमें ही दे दिया है। उन्होंने नारदपाञ्चरात्रशास्त्रकी प्राचीन परम्परा दिखलायी है। महाभारत शान्तिपर्वके अ० ३३९ में लिखा है—

इदं महोपनिषदं चतुर्वेदसमन्वितम्॥
सांख्ययोगयुतं तेन पाञ्चरात्रानुशब्दितम्।
नारायणमुखोद्गीतं नारदोऽश्रावयत् पुनः॥

ब्रह्मणः सदने तात यथा दृष्टं यथा श्रुतम्।
ये त्वन्ये ब्रह्मसदने सिद्धसंघाः समागताः।
तेभ्यस्तच्छ्रावयामास पुराणं वेदसम्मितम्॥

तेषां सकाशात्सूर्यस्तु श्रुत्वा वै भावितात्मनाम्।
आत्मानुगामिनां राजन् श्रावयामास वै ततः॥

षट्षष्टिर्हि सहस्राणि ऋषीणां भावितात्मनाम्।
सूर्यस्य तपतो लोका निर्मिता ये पुरःसराः॥

तेषामकथयत्सूर्यः सर्वेषां भावितात्मनाम्।
सूर्यानुगामिभिस्तात ऋषिभिस्तैर्महात्मभिः॥

मेरौ समागता देवाः श्रावितश्चेदमुत्तमम्।
देवानां तु सकाशाद्वै ततः श्रुत्वासितो द्विजः॥

श्रावयामास राजेन्द्र पितॄणां मुनिसत्तमः।
मम चापि पिता तात कथयामास शान्तनुः॥

ततो मयापि श्रुत्वा च कीर्तितं तव भारत।
सुरैर्वा मुनिभिर्वापि पुराणं यैरिदं श्रुतम्॥

सर्वे वे परमात्मानं पूजयन्ते समन्ततः।
इदमाख्यानमार्ष्येयं पारम्पर्यागतं नृप॥

नावासुदेवभक्ताय त्वया देयं कथंचन।
मत्तोऽन्यानि च ते राजन्नुपाख्यानशतानि वै॥

यानि श्रुतानि सर्वाणि तेषां सारोऽयमुद्धृतः।
सुरासुरैर्यथा राजन्निर्मथ्यामृतमुद्धृतम्॥

एवमेतत्पुरा विप्रैः कथामृतमिहोद्धृतम्।
यश्चेदं पठते नित्यं यश्चेदं शृणुयान्नरः॥

एकान्तभावोपगत एकान्तेषु समाहितः।
प्राप्य श्वेतं महाद्वीपं भूत्वा चन्द्रप्रभो नरः॥

स सहस्रार्चिषं देवं प्रविशेन्नात्र संशयः।
मुच्येदार्तस्तथा रोगाच्छ्रुत्वेमामादितः कथाम्॥

जिज्ञासुर्लभते कामान्भक्तो भक्तगतिं व्रजेत्।
त्वयापि सततं राजन्नभ्यर्च्यः पुरुषोत्तमः॥
स हि माता पिता चैव कृत्स्नस्य जगतो गुरुः।
ब्रह्मण्यदेवो भगवान्प्रीयतां ते सनातनः॥
युधिष्ठिर महाबाहो महाबुद्धिर्जनार्दनः।
एतत्ते सर्वमाख्यातं नारदोक्तं मयेरितम्॥
पारम्पर्यागतं ह्येतत् पित्रा मे कथितं पुरा।
....॥

अर्थात् भीष्मपितामहने धर्मराज युधिष्ठिरसे कहा—हे तात! महर्षि नारदजीने जिस प्रकार भगवान्का दर्शन किया था और जिस प्रकार सात्वतधर्मका उपदेश सुना था, उसी प्रकार ब्रह्माजीके यहाँ देवर्षि नारदने श्रीमन्नारायणद्वारा वर्णित और चारों वेदोंसे युक्त एवं साङ्ख्ययोगसमन्वित पाञ्चरात्र नामक महोपनिषद्को सुना था। ब्रह्मलोकमें जो ऋषिगण उपस्थित थे, उन्हींको वेद-समान इस पुराण अर्थात् पाञ्चरात्रशास्त्रको नारदजीने सुनाया था। तदनन्तर उन शुद्ध चित्तवाले सिद्ध पुरुष ऋषियोंसे सूर्यदेवने इस शास्त्रको सुनकर अपने अनुगामी पवित्र बुद्धियुक्त साठ सहस्र ऋषियोंको इसे सुनाया था। जो लोग सूर्यभगवान्के समीप थे, उनको भी सूर्यदेवने यह शास्त्र सुनाया था। हे तात! सूर्यके अनुगामी ऋषियोंने सुमेरु-पर्वतपर उपस्थित समस्त ऋषियोंको यह शास्त्र सुनाया। इस प्रकार इस उत्तम उपाख्यानका प्रचार किया गया। देवताओंसे सुनकर मुनिसत्तम असितने पितरोंको सुनाया। एक बार इस पाञ्चरात्रशास्त्रकी परम्पराका उपाख्यान मेरे पिता महाराज शान्तनुने मुझे सुनाया था। हे तात! मैंने पिताजीसे जैसा सुना वैसा तुम्हें सुना दिया है। यह पाञ्चरात्रशास्त्र बड़े महत्त्वका है। इस शास्त्रको जिन देवताओं और मुनियोंने सुना है, वे सब लोग सब प्रकारसे परमात्माकी पूजा करते हैं। इस परम्परासे प्रचलित उपाख्यानको उस पुरुषको न सुनाना चाहिये जो भगवान् वासुदेवका भक्त नहीं है। हे राजन्! तुम मुझसे जो सैकड़ों उपाख्यान एवं धर्मोपाख्यान सुन चुके हो—उन सबका सार-स्वरूप यह

पाञ्चरात्र–उपाख्यान है। हे राजन्! सुरासुरोंने जिस प्रकार समुद्रको मथकर अमृत निकाला था, उसी प्रकार प्राचीन कालमें ब्राह्मणोंने वेदों, पुराणों और सांख्यादि शास्त्रोंको मथकर पाञ्चरात्रशास्त्ररूपी अमृतको निकाला है। जो मनुष्य सावधान होकर और मोक्षमार्गपर आरूढ़ होकर इस शास्त्रको सदा पढ़ता अथवा सुनता है, वह अन्तमें श्वेतद्वीपमें जाता है और वहाँ चन्द्रमा–जैसा शरीर धारणकर सहस्त्रार्चियुक्त परमपद पाता है। यदि इस कथाको कोई आर्त्तजन आद्यन्त सुने तो वह रोगसे छूट जाता है। इससे जिज्ञासुओंको मनोवाञ्छित फल प्राप्त होता है और भक्तोंको उनकी गन्तव्य गति मिलती है।

हे राजन्! तुम भी उन पुरुषोत्तमका सदा पूजन करना। क्योंकि वे ही इस समस्त जगत्के पिता–माता और वास्तविक गुरु हैं। हे युधिष्ठिर! ऐसा करनेसे भगवान् जनार्दन जो सनातन देव और ब्रह्मण्यदेव हैं, तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होंगे। हे धर्मराज! यह नारदकथित नारदीय पाञ्चरात्रशास्त्र, जो परमोत्तम उपाख्यान है, मैंने तुम्हें सुनाया है। यह परम्परासे प्रचलित है और मुझे तो यह उपाख्यान मेरे पिताजीने सुनाया था। इन समस्त प्रमाणोंसे विदित होता है कि प्रचलित पाञ्चरात्रशास्त्रके मूलाचार्य हमारे चरित्रनायक देवर्षि नारदजी हैं। पाञ्चरात्रशास्त्रकी विविध—अनेक संहिताओंमें सात्वतसंहिता मुख्य है और इसीलिये भागवतधर्मके मूलाधार सात्वतसंहिताके सर्वस्व देवर्षि नारद हैं—इसमें सन्देह नहीं।

आठवाँ अध्याय

देवर्षि नारदजीके ज्योतिष-सम्बन्धी अपूर्व विचार—त्रिष्कन्ध ज्योतिषकी प्राचीनता—समस्त आर्यज्योतिषपर देवर्षि नारदके ज्योतिर्ज्ञानकी छाया

अनेक अवान्तर-भेद होनेपर भी भारतीय ज्योतिषमें सिद्धान्त, संहिता और होराके नामसे प्रसिद्ध तीन ही विभाग मुख्य माने जाते हैं। प्राचीन ज्योतिषके आचार्योंमें—आर्य-ज्योतिष-प्रवर्तकोंमें अट्ठारह आचार्योंको प्रधानता दी गयी है। जैसा कि नारदजीने लिखा है—

ब्रह्माऽऽचार्यो वसिष्ठोऽत्रिर्मनुः पौलस्त्यरोमशौ।
मरीचिरङ्गिरा व्यासो नारदः शौनको भृगुः॥ २॥
च्यवनो यवनो गर्गः कश्यपश्च पराशरः।
अष्टादशैते गम्भीरा ज्योतिःशास्त्रप्रवर्तकाः॥ ३॥

(नारदसंहिता)

अर्थात्—ब्रह्मा, आचार्य=सूर्य, वसिष्ठ, अत्रि, मनु, पौलस्त्य=चन्द्रमा रोमश=लोमश, मरीचि, अङ्गिरा, व्यास, नारद, शौनक, भृगु, च्यवन, यवन=मयदैत्य, गर्ग, कश्यप और पराशर—ये अट्ठारह आचार्य ज्योतिष-शास्त्रके प्रवर्तक माने गये हैं। अवश्य ही इन अट्ठारह ज्योतिषाचार्योंके सिद्धान्त, संहिता और होराग्रन्थ भी प्राचीन कालमें रहे होंगे, किन्तु इस समय इन आचार्योंके तीनों स्कन्ध ज्योतिष अर्थात्—सम्पूर्ण ज्योतिष-ग्रन्थ हस्तगत नहीं हो रहे हैं। किसी आचार्यका सिद्धान्त मिलता है तो किसीकी संहिता मिलती है और यदि किसीका सिद्धान्त और संहिता दोनों मिल जायँ तो उसके होराका पता नहीं। किसी आचार्यका होरा मिलता है तो उसके सिद्धान्त और संहिताका पता नहीं चलता; इस कारण ज्योतिषके कार्योंमें बड़ी असुविधा होती है; किन्तु सौभाग्यसे हमारे चरित्रनायक देवर्षि नारदके तीनों स्कन्ध हमको मिल रहे हैं। सम्पूर्ण ज्योतिष मिल गया है, यह बड़े आनन्दका विषय है।

नारदजीके ज्योतिष-शास्त्रको यदि आलोचनात्मक दृष्टिसे देखें तो प्रतीत होता है कि आज भारतीय ज्योतिष-शास्त्रपर तीनों स्कन्धके ज्योतिषपर देवर्षि नारदके ज्योतिर्ज्ञानकी पूरी-पूरी छाया पड़ रही है। हमारे प्रसिद्ध-प्रसिद्ध ज्योतिष-सिद्धान्त नारदीय सिद्धान्तके आधारपर बने हैं, संगृहीत हुए हैं और उनमें न जाने कितने श्लोक ज्यों-के-त्यों नारदीय सिद्धान्तसे उठाकर रख दिये गये हैं और अक्षरशः ज्यों-के-त्यों रख दिये गये हैं। प्राचीन नारद-सिद्धान्तमें १८७ श्लोक पाये जाते हैं, जिनमेंसे बहुत ही कम श्लोक ऐसे मिलेंगे कि जो दूसरे सिद्धान्तोंके लिये सहायक न हुए हों। आर्ष-सिद्धान्तोंमें सबसे अधिक सूक्ष्म प्रामाणिक और सबसे अधिक सूक्ष्म गणना-युक्त सूर्य-सिद्धान्त माना जाता है, और वस्तुतः सूर्य-सिद्धान्तके ही रूपान्तरमात्र अन्यान्य आर्ष-सिद्धान्त देखे जाते हैं। वह सूर्य-सिद्धान्त १४ अधिकारों और अध्यायोंमें विभाजित है। पूर्वार्धमें उसके ११ अधिकार हैं और उत्तरार्धमें ३ अध्याय, किन्तु पूर्वार्ध तथा उत्तरार्ध दोनोंकी संयुक्त श्लोक-संख्या पूरी ५०० होती है। सूर्य-सिद्धान्तमें नारद-सिद्धान्तके अधिकांश श्लोक ज्यों-के-त्यों मिलते हैं और अक्षरशः मिलते हैं। मध्यमाधिकार, स्पष्टाधिकार—ये दोनों तो मानो उसी नारद-सिद्धान्तके श्लोकोंसे ही रचे गये हैं, केवल प्रसङ्गवश कुछ श्लोक सम्पादकीय ढंगसे बढ़ा दिये गये हैं।

सूर्य-सिद्धान्तके मध्यमाधिकारके आरम्भिक २८ श्लोक तथा बीच-बीचके ४४ से ४८ वें श्लोकके पूर्वार्धतक, ५५ से ५८ श्लोकतक, ६३ से ६५ श्लोकतक और ७० वाँ श्लोक नारदीय-सिद्धान्तमें नहीं हैं; शेष ३० श्लोक अक्षरशः नारदीय सिद्धान्तहीके सूर्य-सिद्धान्तमें मिलते हैं। इतना ही नहीं, सूर्य-सिद्धान्तके स्पष्टाधिकारमें कुल ६९ श्लोक हैं, उनमें ३२ श्लोक नारदीय सिद्धान्तके हैं, शेष ३७ स्वतन्त्र हैं। स्पष्टाधिकारके आरम्भिक चौदह श्लोक तथा १७ से २७ तक, ४४ से ४७ तक ५० वाँ श्लोक, ५५ से ६० श्लोकतक और अन्तिम दो श्लोक नारदीय सिद्धान्तके नहीं हैं। शेष सभी श्लोक नारदीय सिद्धान्तहीके सूर्य-सिद्धान्तमें आ गये हैं। इसी प्रकार त्रिप्रश्नाधिकारके १२, १४, १५, १६ तथा २० से ४० श्लोकतक नारदीय पुराणके नहीं हैं, शेष २४ श्लोक सूर्य-सिद्धान्तमें अक्षरशः नारदीय पुराणहीके दिखलायी देते हैं, और पाताधिकारमें पहिला, दूसरा तथा ६ वेंसे १६वें श्लोकतक नारदीय पुराणके हैं। शेष स्वतन्त्र सूर्य-सिद्धान्तके श्लोक हैं। जितने

श्लोक नारदीय सिद्धान्तसे सूर्य-सिद्धान्तमें लिये गये हैं, यदि उनको निकाल दिया जाय तो सूर्य-सिद्धान्तमें कुछ शेष ही नहीं रह जाता। क्योंकि सिद्धान्त-विषय, उन्हीं लगभग १०० श्लोकोंमें आ जाता है, जो नारदीय सिद्धान्तसे लिये गये हैं। सूर्य-सिद्धान्तके शेष चार सौ श्लोक उन्हीं एक सौ श्लोकोंकी या तो भूमिकारूप हैं, या विस्तृत किये हुए रूप हैं।

ज्योतिष-सिद्धान्तके आधारभूत सभी विषयोंको सूर्य-सिद्धान्तमें नारदीय सिद्धान्तके श्लोकोंहीसे पूरा किया गया है। जैसे सूर्यादि ग्रहोंके भगण तथा भौमादि पञ्चग्रहोंके शीघ्र भगण, चन्द्रमाके उच्च भगण तथा पातके भगणोंका वर्णन और भूमिसावनदिन-कुदिनके वर्णनका आधार नारदीय सिद्धान्त ही है। भूपरिधि, देशान्तर, ग्रहोंके स्पष्टीकरणकी विधि, त्रिप्रश्नाधिकारके मुख्य-मुख्य विषय और क्रान्तिसाम्य आदिके विषय भी सिद्धान्तके उपकरण होते हैं। इतना ही नहीं, सिद्धान्तोंके लिये अयनगतिका प्रतिपादन भी आवश्यक होता है और यदि इतने विषय, जिनका यहाँपर उल्लेख किया गया है विदित हो जायँ तो इन्हींके आधारपर शेष विषयोंकी रचना बड़ी सरलताके साथ की जा सकती है और ये सभी विषय सूर्य-सिद्धान्तमें नारदीय सिद्धान्तहीसे लिये गये हैं। अतएव यदि हम यह कहें कि सूर्य-सिद्धान्तका आधार नारदीय सिद्धान्त है तो अनुचित न होगा। इसीसे हम कहते हैं कि आर्ष-सिद्धान्तोंका आधारभूत सूर्य-सिद्धान्त ही जब इस प्रकार नारदीय सिद्धान्तके आधारपर अवलम्बित है तब अन्यान्य सिद्धान्तोंको नारदीय सिद्धान्तकी छाया मानना अनुचित नहीं है।

बराहमिहिरने जिस बीजसंस्कृत सूर्य-सिद्धान्तके आधारपर, अपनी पञ्चसिद्धान्तिकाके सूर्य-सिद्धान्तीय भगणादिकोंका उल्लेख किया है। साम्प्रत-सूर्य-सिद्धान्त उससे प्राचीन और उससे भिन्न है। बराहमिहिरके सूर्य-सिद्धान्तानुसार भूमिसावनदिन, महायुगमें १५७७९१७८०० होते हैं और साम्प्रत=आर्ष-सूर्य-सिद्धान्तानुसार इससे २८ दिन अधिक होते हैं अर्थात्—१५७७९१७८२८ होते हैं। एक महायुगमें २८ दिनोंके अन्तर हो जानेसे सौरवर्ष-मानमें १ विपल और २४ प्राणपलका अन्तर पड़ता है। देखनेमें यह अन्तर भले ही बहुत कम प्रतीत हो, किन्तु जहाँ करोड़ों और अरबों वर्षोंकी गणना की जाती है, वहाँ यही स्वल्पान्तर, बहुत बड़ा अनर्थकारी हो जाता है। साम्प्रत आर्ष-सूर्य-सिद्धान्तका भूमिसावनदिन, ठीक-ठीक नारदीय

सिद्धान्तका भूमिसावनदिन है। अतएव यह भी निश्चय हो जाता है कि बराहमिहिरका भूमिसावनदिन—सूर्य-सिद्धान्तीय भूमिसावनदिन, आर्ष नहीं, बीजसंस्कृत आधुनिक है। इतना ही नहीं, किन्तु सूर्य-सिद्धान्तके अयनांश साधनवाले '**त्रिंशत्कृत्यो युगेभानां चक्रं प्राक् परिलभ्यते**' इस श्लोकको जिसका भास्कराचार्यने '**कृत्वः**' पाठभेद करके ६०० के स्थानमें ३० ही भगण लिख दिया है, नारदीय सिद्धान्तके श्लोकसे अक्षरशः मिलता है। इससे भी यह सिद्ध होता है कि भास्कराचार्यके बहुत प्राचीनकाल—पौराणिक कालमें बने हुए सूर्य-सिद्धान्तके आर्ष-भगणादि मान नारदीय सिद्धान्तके आधारपर ही बने हैं और सूर्यसिद्धान्तका आधार नारदीय सिद्धान्त ही है। नारदीय सिद्धान्तमें सूर्यसिद्धान्तसे भी अधिक विलक्षणता पायी जाती है। आजकल सिद्धान्त-शिरोमणि-जैसे मानवीय सिद्धान्तोंको छोड़कर किसी आर्षसिद्धान्तमें परिकर्मादि, गणित-विषयोंका वर्णन नहीं मिलता और इसके लिये लोगोंको पृथक्हीसे पाटी-ग्रन्थोंकी सहायता लेनी पड़ती है, किन्तु नारदीय सिद्धान्तमें इस बातकी न्यूनता भी नहीं है। नारदीय सिद्धान्तमें लगभग ६० श्लोकोंमें आरम्भमें ही परिकर्मादि सभी आवश्यक पाटी-गणितका वर्णन है जो आधुनिक पाटी-गणितके ग्रन्थकारोंका मूलक प्रतीत होता है। नारदीय सिद्धान्तके पाटी-गणितके नीचे लिखे दो श्लोक अविकल भास्कराचार्यजीने अपनी लीलावती नामक पाटी-गणितकी व्यस्तविधिमें उद्धृत किये हैं। अवश्य ही जिस प्रकार भास्कराचार्यजीने अन्यान्य प्राचीन आचार्यों और ग्रन्थोंके वचनोंको बिना उनके नामोल्लेखके अपने विशाल सिद्धान्त-शिरोमणि-ग्रन्थमें स्थान-स्थानपर उद्धृत किया है, उसी प्रकार नारदीय सिद्धान्तके श्लोकोंके साथ भी नाम देना उन्होंने कदाचित् शिष्टाचार नहीं समझा। नारदीय सिद्धान्तके श्लोक जो भास्कराचार्यकी लीलावतीमें लिखे गये हैं, इस प्रकार हैं—

छेदं गुणं गुणं छेदं वर्गं मूलं पदं कृतिम्।
ऋणं स्वं स्वमृणं कुर्याद् दृश्ये राशिप्रसिद्धये॥ २८॥
अथ स्वांशाधिकोनेतु लवाढ्योनो हरो हरः।
अंशस्त्वविकृतस्तत्र विलोमे शेषमुक्तवत्॥ २९॥

यह तो हुई गणितसिद्धान्तमें नारदीय ज्योतिषके महत्त्वकी बात, किन्तु इतनेहीसे अन्त नहीं है । फलित विषयमें भी नारदीय ज्योतिष, अन्यान्य

फलित संहिताओं और होराओंका मूलाधार प्रतीत होता है। फलितसे सम्बन्ध रखनेवाला एक विषय नारदीय सिद्धान्तमें और आया है जो विद्वानोंके लिये विचारणीय है। आजकल पञ्चाङ्गोंमें जो चार स्थिर करण लिखे जाते हैं उनका क्रम इस प्रकार है कि कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके उत्तरार्धसे शुक्लपक्षकी प्रतिपदाके पूर्वार्धतक, आधी–आधी तिथियोंमें एक–एक करण क्रमशः 'शकुनि,' 'चतुष्पद,' 'नाग' और 'किंस्तुघ्न' ये चारों स्थिररूपसे होते हैं और यही क्रम, विष्णुधर्मोत्तरपुराणान्तर्गत ब्रह्मसिद्धान्तमें, लल्लाचार्यके '**शिष्यधीवृद्धिदः**' नामक तन्त्रके स्पष्टाधिकारके २५ वें श्लोकमें भास्कराचार्यजीके सिद्धान्तशिरोमणि गणिताध्यायके वरसनाभाष्यमें और गणेश दैवज्ञके ग्रहलाघवके रविचन्द्रस्पष्टाधिकारके ९ वें श्लोककी टीकामें, विश्वनाथ दैवज्ञने लिखा है। किन्तु इस क्रमसे विलक्षण क्रम नारदीय सिद्धान्तमें आया है। नारदीय सिद्धान्तमें स्थिर करणोंके लिये लिखा है—

.... कृष्णभूतापरार्धतः।
शकुनिर्नागश्च चतुष्पादं किंस्तुघ्नमेव च॥

अर्थात् कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके उत्तरार्धसे क्रमशः शकुनि, नाग चतुष्पाद और किंस्तुघ्न नामक स्थिर करण, आधी–आधी तिथियोंमें शुक्लप्रतिपदाके पूर्वार्धतक होते हैं। इसी नारदीय सिद्धान्तके अनुसार साम्प्रत सूर्यसिद्धान्तमें भी स्थिर करणोंका क्रम रखा गया है। सूर्यसिद्धान्तका वचन इस प्रकार है—

ध्रुवाणि शकुनिर्नागं तृतीये तु चतुष्पदम्।
किंस्तुघ्नं तु चतुर्दश्याः कृष्णायाश्चापरार्धतः॥

(स्पष्टाधिकार)

अर्थात्—ध्रुव—स्थिर करण शकुनि, नाग, चतुष्पद और किंस्तुघ्न नामके चार होते हैं, जो कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके अपरार्धसे आधी–आधी तिथियोंमें होते हैं। इस श्लोककी टीकामें रङ्गनाथ दैवज्ञने लिखा है कि— '**स्थिराणि करणानि चाह। शकुनिरिति, चतुरङ्घ्रिस्तृतीयमनेन शकुनिनागयोः क्रमेणाऽऽद्यद्वितीयत्वं सूचितम्। तुकारात्क्रमेण तिथ्यर्धेषु भवति किंस्तुघ्न चतुर्थमिति।**' अर्थात्—स्थिर करण अब कहते हैं। शकुनि इत्यादि श्लोक '**चतुष्पदं तृतीयम्**' जो कहा गया है इससे शकुनि और नागका पहिला और दूसरा होना प्रकट हो जाता है और क्रमानुसार अन्तमें चतुर्थ करण

'किंस्तुघ्न' माना जायगा। इस प्रकार भारतीय समस्त पञ्चाङ्गोंके उल्लेखके विपरीत तथा विष्णुधर्मोत्तरीय ब्रह्मसिद्धान्तसे लेकर ग्रहलाघवकरणतकके क्रमके विपरीत, नारदीय सिद्धान्तके करणक्रमका उल्लेख सूर्यसिद्धातमें ज्यों-का-त्यों मिलता है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि साम्प्रत सूर्यसिद्धान्तकी रचनामें नारदीय सिद्धातका कितना अधिक प्रभाव था और साम्प्रत सूर्यसिद्धान्तका प्रभाव समस्त ज्योतिषसिद्धान्तोंपर देखकर मानना ही पड़ता है कि परम्पराप्राप्त नारदीय सिद्धान्तकी छाया सभी ज्योतिषसिद्धान्तोंपर पड़ती है और सबका मूल नारदीय सिद्धान्त ही है।

फलित-ज्योतिषमें भी नारदीय ज्योतिषकी बड़ी महिमा है। नारदसंहिता नामक एक पुस्तक काशीसे प्रकाशित हुई थी, उसमें ३७ अध्यायोंमें लगभग १४ सौ श्लोकोंमें विषयोंका विस्तृत वर्णन है, किन्तु नारदीय होरा तथा नारदीय संहिता नामकी जो प्राचीन पुस्तकें मिलती हैं और जो कदाचित् अभीतक छपी नहीं हैं, उस नारदीय संहितासे भिन्न हैं। प्राचीन नारदसंहितामें ७५७ श्लोक हैं और बड़े-बड़े अपूर्व विषयोंका वर्णन है। श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणमें श्रीरामचन्द्रजीने जिस सूर्य-कलङ्कको देखकर जनसंहारकारी भय प्रदर्शित किया था, उसका बड़े विस्तारके साथ इस नारदसंहितामें वर्णन है। नारदसंहितामें लिखा है—

दण्डाकारे कबन्धे वा ध्वाङ्क्षाकारेऽथ कीलके।
दृष्टेऽर्कमण्डले व्याधिर्भीतिश्चौरार्थनाशनम्॥ २॥
छत्रध्वजपताकाद्यसन्निभैस्तिमितैर्ध्वनैः ।
रविमण्डलगैर्धूम्रैः सस्फुलिङ्गैर्जगत्क्षयः॥ ३॥
सितरक्तैः पीतकृष्णैर्वर्णैर्विप्रादिपीडनम्।
घ्नन्ति द्वित्रिचतुर्वर्णैर्भूविराजजनान्मुने॥ ४॥
ऊर्ध्वे भानुकरैस्ताम्रैर्नाशं याति चमूपतिः।
पीतैर्नृपसुतः श्वेतैः पुरोधाश्चित्रितैर्जनाः॥ ५॥
धूम्रैर्नृपः पिशङ्गैस्तु जलदोधोमुखैर्जगत्।
...॥ ६॥

अर्थात् सूर्यके मण्डलमें यदि दण्डाकार कबन्ध अथवा ध्वाङ्क्षाकार कीलक दिखलायी पड़े तो व्याधि, भय और चोरोंद्वारा धनका नाश होता है। यदि छत्र, ध्वज, पताका आदि राज-चिह्नोंके आकारका चिह्न दिखलायी

दे, तिमित-ध्वनि हो अथवा धूम्र रङ्गका स्फुलिङ्ग दिखलायी दे तो जगत्का क्षय हो। यदि सूर्य-मण्डलमें सित, रक्त, पीत अथवा कृष्ण वर्णका चिह्न दिखलायी पड़े तो विप्रादि वर्णोंको पीड़ा हो अर्थात् श्वेत-चिह्न हो तो ब्राह्मणोंको, रक्त-चिह्न हो तो क्षत्रियोंको, पीत-चिह्न हो तो वैश्योंको और काला धब्बा हो तो शूद्रादि द्विजेतर जातियोंको पीड़ा हो। यदि दो, तीन अथवा चार रङ्गके धब्बे दिखलायी दें तो भूमण्डलके राजजनोंका नाश होता है। ताम्र-वर्णकी सूर्य-किरणें यदि ऊपरकी ओर हों तो सेनापतिका नाश होता है। यदि सूर्यकी पीत रङ्गकी किरणें ऊपरकी ओर हों तो राजपुत्रका नाश होता है और यदि श्वेत रङ्गकी किरणें ऊपरकी ओर दिखलायी दें तो राजपुरोहितका नाश हो और यदि चित्र-विचित्र रङ्गकी किरणें ऊपरकी ओर दिखलायी दें तो जनसमूहका नाश होता है। यदि धूम्र रङ्गकी किरणें ऊपरको दिखलायी दें तो राजाका नाश हो, पिशङ्ग—पिङ्गल रङ्गकी किरणें ऊपरकी ओर जाती हुई दिखलायी दें तो अवर्षण हो और यदि वे ही किरणें नीचे दिखलायी दें तो सारे जगत्का नाश हो।

इसी प्रकार प्राचीन नारदसंहितामें प्रतिशुक्रके परिहारका वचन भी बड़ा विलक्षण है। उसमें लिखा है कि—

वासिष्ठकाश्यपेयात्रिभारद्वाजाः सगौतमाः।
एतेषां पञ्चगोत्राणां प्रतिशुक्रो न विद्यते॥ ६३६॥
एकाग्रामे विवाहे च दुर्भिक्षे राजविग्रहे।
द्विजक्षोभे नृपक्षोभे प्रतिशुक्रो न विद्यते॥ ६३७॥

अर्थात् वासिष्ठ, काश्यप, अत्रि, भारद्वाज और गौतम गोत्रवाले मनुष्योंके लिये प्रतिशुक्रका दोष नहीं रहता। एक ग्राममें जाना हो, विवाहहीमें विदा कराना हो, दुर्भिक्ष पड़ गया हो, राजयुद्ध होता हो, अथवा ब्राह्मण एवं राजाको क्षोभ उत्पन्न हो गया हो तो प्रतिशुक्रका दोष नहीं रहता। इसी प्रकार अनेक महत्त्वके एवं विलक्षण विषय नारदीय प्राचीन संहितामें हैं जो अन्यान्य संहिताओंके आधारभूत हैं।

संहिताके समान ही नारदीय होरा-जातक भी है। नारदीय जातकमें ३६६ श्लोक हैं, किन्तु इतने छोटे ग्रन्थमें जातक-सम्बन्धी फलादेशोंका

ऐसा सुन्दर वर्णन है, ऐसे-ऐसे विलक्षण योगों एवं राजयोगोंका वर्णन है कि जिनका अस्तित्व अन्यान्य जातक-ग्रन्थोंमें और बड़े-बड़े होरा-ग्रन्थोंमें नहीं मिलता। सारांश यह है कि नारदजीके त्रिष्कन्ध-ज्योतिष-सिद्धान्त, संहिता और होरा नामके तीनों विभाग बड़े ही महत्त्वके और अन्यान्य सिद्धान्त, संहिता एवं होराके आधारभूत हैं और सम्पूर्ण ग्रन्थकी संख्या १७१० श्लोकोंकी है। इस प्रकार नारदीय ज्योतिष नारदजीके अपूर्व विचारोंका भण्डार एवं त्रिष्कन्ध-ज्योतिषकी प्राचीनताका सबसे बड़ा और सुन्दर प्रमाण है।

नवाँ अध्याय

महाभारतकालमें देवर्षि नारदका महत्त्व—देवर्षि नारदके राजनीतिक विचार—नारदजीद्वारा धर्मराज युधिष्ठिरको प्रश्नके बहाने उपदेश।

इतिहासवेत्ताओंके मतानुसार पौराणिक युगमें महाभारतकाल भारतवर्ष-के लिये बड़े महत्त्वका माना जाता है। उस कालमें इस देशमें कैसे-कैसे राजनीति-विशारद, वीरशिरोमणि और धर्मावतार राजागण विद्यमान थे और उस समय कैसे-कैसे तपस्वी, योगेश्वर और विद्वानोंका समुदाय था—यह बात एक बार महाभारतको आद्यन्त पढ़ लेनेसे सहज ही समझमें आ सकती है। जिस समय भारतवर्ष नररत्नोंसे भरा-पूरा था, उस समय देवर्षि नारदका तत्कालीन सम्राट् एवं धर्मराज महाराज युधिष्ठिरके दरबारमें कितना महत्त्व था—इसका अनुमान तत्कालीन एक घटनासे सहजमें किया जा सकता है।

एक दिनकी बात है। महाराज युधिष्ठिरका दरबार लगा हुआ था कि इतनेमें वहाँ देवर्षि नारदजी जा पहुँचे। उस समय उनके प्रति जैसा वहाँ सम्मान प्रदर्शित किया गया था और उनके साथ महाराज युधिष्ठिरका जो संवाद हुआ था, उसका वर्णन महाभारतमें इस प्रकार पाया जाता है।

जिस समय युधिष्ठिरकी राजसभामें महाबली पाण्डव और प्रधान-प्रधान गन्धर्वगण उपस्थित थे, उसी समय सकल वेदोपनिषदोंके ज्ञाता, देवताओंके पूज्य, इतिहास तथा पुराणोंके विशेषज्ञ अतीत कल्पके वृत्तान्तोंसे अभिज्ञ, धर्मतत्त्ववेत्ता, शिक्षा, कल्प, व्याकरणादि षडङ्गके असाधारण ज्ञाता, परस्पर-विरुद्ध विधि-वाक्योंकी मीमांसा जाननेवाले, वाक्योंका पृथक्करण करनेमें पूर्ण योग्यतासम्पन्न, वाग्मी, अति प्रगल्भस्वभावयुक्त, मेधावी, स्मृतिमान्, नीतिशील, कवि, विवेकी, प्रत्यक्ष-अनुमान आदि प्रमाणोंद्वारा वस्तुका विचार करनेमें समर्थ, प्रतिज्ञा, हेतु आदि पाँच प्रकारके वाक्योंके गुणों और दोषोंको भलीभाँति जाननेवाले, बृहस्पति-जैसे विद्वानोंकी शङ्काओंका समाधान करनेवाले, धर्म, अर्थ,

काम, मोक्षके तत्त्वको जानकर योगबलसे ऊर्ध्व, अधः, तिर्यक् समस्त दिशाओंसे परिपूर्ण भूमण्डलके प्रत्यक्षदर्शी और वेदान्तविचार एवं मोक्षाधिकारके ज्ञाता, सुरों-असुरोंमें विवाद खड़ा कर देनेवाले, सन्धि, विग्रहके सिद्धान्तोंके ज्ञाता, अनुमानद्वारा कार्याकार्य-विभागके अभिज्ञ, सन्धि-विग्रह आदिके मर्मज्ञ, विधिका उपदेश देनेवाले, समस्त शास्त्रोंके पूर्ण पण्डित, युद्ध और संगीत-विद्याके बड़े प्रेमी, किसी कार्यसे मनको न हटानेवाले, अन्य समस्त गुणोंके आधार, आत्मतत्त्वके खोजनेवाले एवं अपार तेजस्वी देवर्षि नारदजीने, पारिजात, धीमान् रैवत, सुमुख और सौम्य नामक चार ऋषियोंसहित भूमण्डलका भ्रमण करते हुए पाण्डवोंकी राजसभामें जय-जयकार करते हुए प्रवेश किया।

देवर्षि नारदजीको आते देख समस्त धर्मोंके ज्ञाता, विनयशील, धर्मपुत्र युधिष्ठिर सिंहासन छोड़ उठ खड़े हुए और उन्होंने भाइयोंसहित उनको साष्टाङ्ग प्रणाम किया। फिर उन आगन्तुक महापुरुषोंको सुन्दर आसनोंपर बिठाया और अर्घ्य, पाद्यादि प्रदान कर यथाविधि उनका पूजन किया। देवर्षि नारदजी इस प्रकार पूजित हो बड़े प्रसन्न हुए। तदनन्तर धर्म, अर्थ एवं कामयुक्त राजनीति-सम्बन्धी उपदेश देनेकी इच्छासे उन्होंने महाराज युधिष्ठिरसे ये प्रश्न किये।

हे महाराज! आपके धनकोशमें धनका सञ्चय होता रहता है न? सञ्चित धन उचितरूपसे व्यय किया जाता है न? आपका मन धर्मपर सदा आरूढ़ रहता है न? आपका मन कभी उद्विग्न तो नहीं होता? आपके पूर्वज जिस प्रकार हर श्रेणीके प्रजाजनोंके साथ सच्चा व्यवहार करते थे, वैसा ही व्यवहार आप भी करते हैं न? अर्थके पीछे धर्मकी और धर्मके पीछे अर्थकी हानि तो कभी नहीं होने देते? अथवा क्षणिक सुखके लिये कहीं धर्म और अर्थका दुरुपयोग तो नहीं करते? आप अपने समयका विभाग कर उसे उपयोगी कामोंमें लगाते हैं न? हे राजन्! वक्तृता[१], प्रगल्भता आदि छः राजगुण; साम, दान आदि सात उपाय, राजाओंके नास्तिक्यादि[२] चौदह दोष तो आप भलीभाँति जानते हैं? आप अपनी और परायी परिस्थितिका

---

१. वक्ता प्रगल्भा मेधावी स्मृतिमान् नयवित्कविः।

२. नास्तिक्यमनृतं क्रोधं प्रमादं दीर्घसूत्रताम्।
अदर्शनं ज्ञानवतामालस्यं पञ्चवृत्तिताम्॥

अध्ययन करनेके बाद कार्य करते हैं न? शत्रुओंसे हिलमिलकर, वाणिज्य आदि* आठ प्रकारके निज कर्तव्योंका पालन करते हैं न?

हे भरत-कुल-प्रदीप! दुर्गाध्यक्ष, सेनाध्यक्ष, भूमि-अध्यक्ष, पुरोहित, ज्योतिषी और वैद्य, अथवा स्वामी, मन्त्री, सुहृत्, कोश, दुर्ग, राष्ट्र और सेना—ये सात राज्यके अङ्ग हैं, ये कहीं शत्रुओंके द्वारा मोहित होकर अथवा लोभमें फँसकर व्यसनमें लिप्त तो नहीं हुए हैं और ये आपके हितैषी और आपमें अनुरागवान् तो बने हुए हैं? चालाक और निडर जासूसोंद्वारा आपका तथा आपके मन्त्रियोंका गुप्त परामर्श तो कहीं प्रकट नहीं हो जाता? आपको अपने शत्रुओं, मित्रों और तटस्थजनोंके कामोंका पता यथासमयपर लगता रहता है न? आप यथासमय सन्धि और विग्रहका आयोजन करते हैं न? उदासीन तथा मध्यस्थ जनोंको ही आप मध्यस्थताका काम सौंपते हैं न? हे वीरवर! निर्दोष कार्य-अकार्यके विशेषज्ञ, हितैषी तथा अपने समान सुवंशोद्भव वृद्धजनोंको आपने अपना मन्त्री बनाया है न? क्योंकि मन्त्री ही राज्यका मूल है। आपके समस्त शास्त्रज्ञ मन्त्रीगण आपके तथा अपने मन्त्रोंको गुप्त रख राज्यकी रक्षामें संलग्न हैं न? आप नींदके अधीन तो नहीं हो जाते? यथासमय जागते हैं न? हे अर्थज्ञ! रात रहते ही आप उचित-अनुचित कर्तव्यपर विचार कर लिया करते हैं न? हे राजन्! आप अकेले अथवा बहुत जनोंके साथ किसी गुप्त विषयविशेषपर विचार तो नहीं करते? आपके राजकीय मन्त्रोंको आपके मन्त्री प्रजाजनोंमें फैला तो नहीं दिया करते? अल्प-प्रयास-साध्य अर्थको अथवा कार्योंको, जिनसे महान् लाभ हो सकता हो, उनको आप शीघ्र ही आरम्भ तो कर देते हैं न? ऐसे कार्योंमें आप किसी

एकचिन्तनमर्थानामनर्थज्ञैश्च चिन्तनम्।
निश्चितानामनारम्भं मन्त्रस्यापरिरक्षणम्॥
मङ्गलाद्यप्रयोगं च प्रत्युत्थानं च सर्वशः।
कच्चित्त्वं वर्जयस्येतान् राजदोषांश्चतुर्दश॥

* कृषिर्वणिक्पथो दुर्गं सेतुः कुञ्जरबन्धनम्।
खन्याकरं करादानं शून्यानां च निवेशनम्॥
अष्टौ सन्धानकर्माणि प्रयुक्तानि मनीषिभिः॥

कारणवश बाधा तो नहीं देते? अपने सभी कार्योंका परिणाम या फल आपकी दृष्टिके सामने रहता है न? और उनका फल निर्विघ्न प्राप्त होता है न?

हे महाराज! आपको अपने आरम्भ किये कार्योंको अधूरा तो छोड़ देना नहीं पड़ता? आपका किया हुआ प्रबन्ध बिगड़ता तो नहीं? विश्वस्त, निर्लोभ एवं पुरानी रीतियों, रश्मोंको जाननेवाले कर्मचारियोंद्वारा आपके कार्य सुचारुरूपसे सम्पादन किये जाते हैं न? हे भारत! आपके द्वारा किये गये और आरम्भिक कार्योंके अतिरिक्त होनेवाले कार्योंको किसीने अभीतक जाना तो नहीं? समस्त शास्त्रोंके ज्ञाता आचार्यगण राजकुमारों तथा युद्धके पदाधिकारियोंको धार्मिक शिक्षा दिया करते हैं न? सहस्रों मूर्खोंके बदले एक पण्डितको आप पसन्द करते हैं न? क्योंकि जो पण्डित होते हैं, वे विपद्ग्रस्त पुरुषका उद्धार कर उसकी भलाई करते हैं।

हे राजन्! आपके दुर्ग, धन, धान्य, रत्न, अस्त्र, शस्त्र, जल, यन्त्र, दल, शिल्पी और धनुर्धर योद्धाओंसे भरे-पूरे तो हैं? मेधावी, शूर, जितेन्द्रिय और चतुर एक ही मन्त्रीसे भी राजा तथा राजकुमार बड़े श्रीमान् हो सकते हैं, अतः आपकी राजसभामें ऐसा कोई मन्त्री है कि नहीं?

हे शत्रुञ्जय! प्रत्येक तीर्थमें आपकी ओरसे ऐसे तीन-तीन गुप्तचर रहते हैं कि नहीं, जो आपसमें एक-दूसरेसे अपरिचित हों और उनके द्वारा आप अपने शत्रुओंके पुरोहितादि अठारह तीर्थों* तथा अपने पक्षके पन्द्रह तीर्थोंके

---

* मन्त्रीपुरोहितश्चैव युवराजश्च भूपतिः।
पञ्चमो द्वारपालश्च षष्ठोऽन्तर्वेशिकस्तथा॥
कारागाराधिकारी च द्रव्यसञ्चयकृत्तथा।
कृत्याकृत्येषु चार्थानां नवमो विनियोजकः॥
प्रदेष्टा नगराध्यक्षः कार्यनिर्माणकृत्तथा।
धर्माध्यक्षः सभाध्यक्षो दण्डपालास्त्रिपञ्चमः॥
षोडशो दुर्गपालश्च तथा राष्ट्रान्तपालकः।
अटवीपालकान्तानि तीर्थान्यष्टादशैव तु॥
चारान्विचारयेत्तीर्थेष्वात्मनश्च परस्य च।
पाखण्डादीनविज्ञातान् अन्योऽन्यमितरेष्वपि॥
मन्त्रिणं युवराजं च हित्वा स्वेषु पुरोहितम्॥

गुप्त विषयोंको जानते रहते हैं न? शत्रुओंका वृत्तान्त गुप्तरूपसे आपको मिलता है न? विनयी, कुलीन, बड़े नामी, असूयाशून्य एवं महा-अनुभवी पुरोहितोंका आदर आपके यहाँ सदा हुआ करता है न? सरलचित्त एवं विधिदर्शी कोई कर्मकाण्डी विद्वान् अग्निहोत्र-सम्बन्धी विषय समय-समयपर बतलाया करते हैं न?

हे राजन्! आपके जो ज्योतिषी हैं, वे सामुद्रिक-शास्त्रके अनुसार अङ्ग-परीक्षामें निपुण हैं न? और दैवी-अभिप्रायोंके ज्ञाता तथा त्रिविध दैवादि उत्पातों एवं विपत्तियोंको रोकनेमें दक्ष हैं न? आपके यहाँ उत्तम, मध्यम और निकृष्ट—तीनों श्रेणियोंके नौकर हैं न? परम्परागत मन्त्रिपदपर नियुक्त, निश्छल विशुद्धहृदय उत्तम मन्त्रियोंको आपने श्रेष्ठ अधिकार प्रदान कर दिये हैं न? आपके कठिन दण्डसे अर्थात् दण्डकी कठोरतासे प्रजामें असन्तोषका वह अग्नि तो नहीं धधक रहा, जो राज्य, सेना, धनागार आदिको भस्म कर डालता है। आपके मन्त्री आपकी आज्ञाके अनुसार ही शासन-कार्य करते हैं न? जिस प्रकार पण्डितोंका याचक और क्रूरस्वभाव एवं स्वेच्छाचारी पतियोंका उनकी स्त्रियाँ अपमान करती हैं, उस प्रकार आपके मन्त्री कहीं आपका अनादर तो नहीं करते? आपका प्रधान सेनापति प्रगल्भ, शूर, बुद्धिमान्, धीर, ईमानदार, कुलीन, प्रभु-हित-तत्पर और अपने काममें सुदक्ष है न? आपकी सेनाके सैनिकोंमें जो युद्ध-विद्यामें निपुण हैं, प्रगल्भ हैं और ईमानदार हैं, उनके मनमें आपकी ओरसे दुर्भावना तो नहीं है? और जो पराक्रमी सैनिक हैं, उनका आप आदर तो करते हैं न? सेनाका पावना, रसद और वेतन यथासमय दे दिया जाता है न? समयपर न मिलनेसे और अतिकाल करके वेतन पानेके कारण उसको कष्ट तो नहीं होता? ऐसे लोग यदि असन्तुष्ट हो जाते हैं तो अपनी चालबाजीसे अपने मालिकको हानि पहुँचाते हैं। इस अनर्थको राजनीति-विशारद बड़ा भारी अनर्थ समझते हैं।

हे कुरुराज! आपके हितके लिये कुलीन एवं आपके हितैषी अन्यान्य बड़े-बड़े लोग युद्धमें प्रसन्न मनसे अपने प्राण उत्सर्ग करनेको तत्पर रहते हैं न? शासनाधीन कोई कामात्मा जन अपनी इच्छाके अनुसार युद्धमें प्रवृत्त तो नहीं होता? विद्या-विनय-सम्पन्न ज्ञान-निष्ठजनोंको आप उनके गुणानुसार पुरस्कृत करते रहते हैं न? हे भरतश्रेष्ठ! जो लोग आपके पीछे

अपने प्राणतक दे देते हैं, उनके विपत्तिमें पड़े परिवारका आप पालन तो करते हैं न? भयभीत, शक्तिहीन, युद्धमें हारे हुए और शरणागत शत्रुओंको आप निज पुत्रवत् पालते हैं न? हे पृथिवीपति! पृथिवीभरके लोग आपको पक्षपातरहित और माता-पिताके समान तथा निर्भीक तो जानते हैं? शत्रुको विपत्तिमें फँसा सुन और अपने सलाहकारों धनागार और उत्साहपर निर्भर हो आप उसपर तुरन्त आक्रमण कर देते हैं कि नहीं?

हे महाराज! दुर्भिक्ष पड़नेपर आप शत्रुओंपर आक्रमण कर उनका संहार करते हैं न? ऐसे अवसरको आप हाथसे निकाल तो नहीं देते। अपने और पराये राज्यमें आपके बहुत-से नौकर भिन्न-भिन्न कार्योंपर नियुक्त हो अपने-अपने कामोंको करते और आपसमें एक-दूसरेकी रक्षा करनेमें आनाकानी तो नहीं करते? आपके रसोइया, आपके तोषेखानेके कर्मचारी भोज्य-सामग्री, वस्त्र, चन्दनादिका सञ्चय रखते हैं न? धनागार, अन्नागार, अस्त्रागार, वाहनालय, सिंहद्वार और अन्तःपुरकी रक्षाके लिये विश्वस्त, हितैषी और स्वामिभक्त नौकर नियत हैं न? रसोइया आदि घरके नौकरों और सेनापति आदि बाहरी जनोंसे अपनी और पुत्रादि आत्मजनोंसे उन सबकी आप रक्षा करते हैं न? नौकरोंकी नौकरोंसे आप रक्षा करते हैं न? दिनके पूर्वार्द्ध भागमें अथवा सबेरे तो आप मद्यपान, सुकरीसेवन और चौपड़ तो नहीं खेलते? राज्यकी आमदनीके आधे, तीसरे अथवा चौथे भागसे आपके निज व्ययकी पूर पड़ जाती है न? अर्थात् कुछ धन एकत्र करते जाते हैं न?

आप धन-धान्य देकर अपने गुरुजन, वृद्धजन, वणिक, शिल्पी, शरणागत और दुर्दशाग्रस्त जनोंपर कृपा कर, उनकी रक्षा करते हैं न? आपका हिसाब-किताब रखनेवाला लेखक और गणक अर्थात् एकाउण्टेण्ट नित्य-के-नित्य हिसाब लिखकर रोकड़ सम्हाल तो लेते हैं न? जो कर्मचारी मन लगाकर अपना काम करते हैं, आपका हित चाहते हैं और आपके कृपापात्र हैं, वे निरपराध अपने पदसे पृथक् तो नहीं किये जाते? हे भरत-नन्दन! उत्तम, मध्यम और निकृष्ट श्रेणीके नौकर जाँच करनेके बाद नियुक्त किये जाते हैं न? हे प्रजापति! आपकी अमलदारीमें कहींपर शासन-सम्बन्धी किसी पदपर कोई ऐसे व्यक्ति तो नहीं हैं, जो चोर हो, लालची हो, आपसे शत्रुभाव रखते हों और जो बालक अर्थात् अनुभवशून्य हो। चोर, लोभी, लड़के और स्त्रियाँ आपकी अमलदारीमें कोई बखेड़ा तो खड़ा नहीं किया करते?

आपकी अमलदारीमें किसान लोग आपसे सन्तुष्ट तो रहते हैं? खेतीके काममें सहायता पहुँचाने और पशुओंके जलपानके लिये पर्याप्त जलाशय तो आपके राज्यमें हैं न? आपके राज्यकी खेती कहीं केवल वर्षाके जलपर तो निर्भर नहीं है? राज्यकी ओरसे किसानोंको उनसे सवाई उपज लेकर रुपये या बीजके लिये अनाज दिया जाता है न? राज्यकी ओरसे किसानोंके लिये की गयी सुविधाओंकी, व्यवसायकी, वृद्धिकी, पशु–पालन–सम्बन्धी सुविधाओंकी और प्रजाजनोंको ऋण देनेकी व्यवस्थाकी सज्जन लोग सराहना करते हैं न? अर्थात् इन विषयोंसे सम्बन्ध रखनेवाली कोई शिकायत तो किसीको नहीं है? क्योंकि जब प्रजाजनोंको किसी बातकी शिकायत नहीं होती, तभी प्रजाजन प्रसन्न रहते हैं और शासन भी सुचारुरूपसे होता है।

हे राजन्! पुरवासियोंका पालन, दुर्ग–रक्षा, खेतीका प्रबन्ध, वाणिज्य–रक्षा और दुष्ट–दमनके कार्य, शूर और पढ़े–लिखे लोगोंहीके हाथोंमें हैं न? ये लोग जनपदवासियोंके मङ्गलके लिये सदा प्रयत्नशील बने तो रहते हैं न? रक्षाकी दृष्टिसे आपके राज्यके अन्तर्गत जो ग्राम हैं, वे नगरके समान और प्रान्तभाग ग्रामके समान बनाये गये हैं न? जनपदोंमें उत्पात कर भागनेवाले चोरोंके पकड़नेका समुचित प्रबन्ध है न? आप अपनी अधीना महिलाओंको ढाँढ़स बँधा उनके धन और सतीत्व–धर्मकी रक्षा तो करते हैं न? स्त्रियोंकी बातोंपर विश्वास तो नहीं करते? उनसे अपनी कोई गुप्त बात तो नहीं कह देते? किसी आनेवाली विपत्तिका वृत्तान्त सुन और उसकी चिन्तामें लीन होकर आप कहीं चन्दन लगा और फूल–माला पहन महलमें जाकर सो तो नहीं रहते? रात्रिके दूसरे और तीसरे भागको निद्रामें बिता चौथे भागमें आप जागकर धर्मार्थके विषयमें चिन्तन तो करते हैं न? समुचित पोशाक पहन और मन्त्रियोंके बीच बैठ आप मिलनेके लिये आये हुए लोगोंसे यथारीति मिलते तो हैं न? आपके दर्शनोंके अभिलाषियोंको आपके दर्शन मिल जाते हैं न? लालवर्दी पहने और अस्त्र–शस्त्र लिये हुए आपके अंगरक्षक आपकी रक्षाके लिये, आपके अगल–बगल खड़े तो रहते हैं न? दण्डनीय, पूजनीय, प्रियजन तथा अप्रिय लोगोंकी भलीभाँति परीक्षा लेकर जो दण्डनीय सिद्ध होते हैं, उनको यमराजकी तरह आप दण्ड तो देते हैं न? पथ्याशनादिके नियमोंका पालन कर तथा औषधादिका सेवन कर, आप अपनी शारीरिक पीड़ाको तथा वृद्धजनोंकी सेवा कर और उनसे उपदेश ग्रहण कर अपनी

मानसिक पीड़ाको आप शान्त तो करते हैं न? अष्टाङ्ग चिकित्सामें दक्ष और निदानमें प्रवीण आपके हितैषी चिकित्सक आपके शरीरकी रक्षा करनेमें सदा तत्पर तो रहते हैं न?

हे प्रजापालक! अभिमान, लोभ अथवा मोहवश आप वादी-प्रतिवादियोंके आनेपर उनकी प्रार्थनाओंपर उचित ध्यान देते हैं न? आपपर विश्वास कर अथवा आपकी प्रीतिकी प्रेरणासे जो लोग आपके शरण आते हैं, उनकी वृत्तिको आप लोभवश हड़प तो नहीं जाते। आपके पुरवासी अथवा जनपद-वासी जन आपके शत्रुओंद्वारा लालचमें फँसाये जाकर कहीं आपके विरुद्ध षड्यन्त्र तो नहीं रचा करते? आपके दुर्बल शत्रु आपके सैनिकबलसे अथवा मन्त्र-तन्त्रके प्रभावसे आपसे सदा दबे तो रहते हैं न? बड़े-बड़े भूपालोंसे आपकी मैत्री तो है? आपके आदर-सत्कारसे सन्तुष्ट हो वे आपकी भलाईके लिये अपने प्राणतक देनेको तैयार रहते हैं न? आप योग्यतानुसार ब्राह्मणों और साधुओंका आदर करते हैं न? क्योंकि ऐसे लोगोंका सम्मान आपके लिये कल्याणप्रद है। अपने पूर्वजोंद्वारा अनुष्ठित और स्वीकृत धर्म-कर्ममें आपकी श्रद्धा एवं भक्ति तो है न? आपके पूर्वज जिस प्रकार धर्मानुष्ठान करते थे आप भी उसी प्रकार करते हैं न? गुणी ब्राह्मण नित्य आपके सामने स्वादिष्ट और गुणकारी भोज्यपदार्थोंको खाकर दक्षिणा पाते हैं न? जितेन्द्रिय बन और मनको एकाग्र कर आप वाजपेय, पुण्डरीक आदि यज्ञोंको पूर्ण करनेका प्रयत्न तो करते हैं न? बूढ़े लोगों, बिरादरीके पूज्यजनों, देवताओं, तपस्वियों तथा कल्याण करनेवाले चैत्यवृक्ष एवं ब्राह्मणोंको प्रणाम तो करते हैं न? आप अपनी ओरसे किसीको शोकान्वित अथवा क्रुद्ध तो नहीं करते? पुरोहितादि मङ्गलकामी पुरुष आपके निकट रहकर स्वस्त्ययन तो करते हैं न? आयुप्रद और यश-वर्द्धक तथा धर्मार्थ कामका मार्ग बतलानेवाली जो बातें बतलायी गयी हैं, वे आपकी समझमें आयीं और आपको अच्छी लगीं, आप तदनुसार कार्य करते हैं? क्योंकि जो तदनुसार बर्ताव करते हैं, उनका राज्यरूपी कल्पवृक्ष कभी मुरझाता नहीं। ऐसे राजा समस्त पृथिवीको विजयकर बड़े सुखी होते हैं।

हे नरश्रेष्ठ! मूर्ख जनोंसे हेलमेल बढ़ाकर अज्ञान मन्त्रीगण जब लोभमें फँस जाते हैं, तब वे विशुद्धचरित्र मनुष्योंपर चोरी आदिका कलङ्क लगा उनका धनधान्य अपहृत कर लेते हैं। ऐसा काम तो आपके शासनमें नहीं

होता? कहीं किसी चोरको चोरीके मालसहित पकड़कर तथा लालचमें पड़ आपके कर्मचारी छोड़ तो नहीं देते? घूसखोर न्यायकर्ता कहीं धनी और निर्धनके मुकदमोंके फैसलेमें अन्याय तो नहीं करते? नास्तिकता, असत्य, क्रोध, अनवधानता, दीर्घसूत्रता, ज्ञानियोंसे न मिलना, आलस्य, चित्तचाञ्चल्य, एकके साथ किसी विषयपर मन्त्रणा, अर्थ न जाननेवाले लोगोंसे परामर्श (सलाह-मशविरा) लेना, बेसमझे-बूझे किसी कार्यमें हाथ डालना, किसी कार्यको करनेके पूर्व मन्त्रियोंसे परामर्श न लेना, अच्छे कामोंमें हाथ न डालना, आगा-पीछा सोचे बिना ही कमर कस किसी कामको पूरा करनेके लिये उठ खड़े होना—ये चौदह दोष राजाओंमें हुआ करते हैं। आप इन दोषोंसे अपनेको बचाये रखते हैं न? क्योंकि राज्यकी जड़ अत्यन्त सुदृढ़ होनेपर भी उपर्युक्त दोषोंके कारण अनेक राजा बहुधा बिगड़ जाते हैं। हे राजन्! वेदाध्ययन, धन, स्त्रीलाभ और शास्त्रज्ञान—ये चार लाभ आपको यथेष्टरूपसे प्राप्त हुए हैं न?

हे महाराज! धन कमानेको बाहरसे आनेवाले व्यवसायियोंसे आपके कर उगाहनेवाले कर्मचारी ठीक-ठीक कर वसूल करते हैं न? विदेशी व्यापारियोंका आपके राज्यमें यथेष्ट सम्मान तो होता है? दूरसे माल लानेमें उन्हें ठग, धूर्त तो नहीं ठगते? धर्मार्थके ज्ञाता वृद्धजनोंके धर्मार्थयुक्त वाक्योंको आप सदा सुना तो करते हैं न? फसल कटनेपर नवान्नेष्टिके लिये, पुत्रोंके संस्कारोंके लिये, भिन्न-भिन्न धर्मानुष्ठानोंके लिये और पितृ-कार्यके लिये आपके यहाँसे ब्राह्मणोंको घी, शहद आदि आवश्यक सामान दिया जाता है न? आप शिल्पियोंको चार महीनेके अनधिक कालका ठहराया हुआ वेतन और आवश्यक अन्य सामान तो देते हैं न? शिल्पियोंके कामकी जाँच-पड़ताल भी आप करवा लिया करते हैं न? आप संक्षेपमें सब प्रकारसे हाथी, घोड़े और रथ आदिकी परीक्षा लेनेका प्रबन्ध किया करते हैं न? धनुर्वेद, सूत्र, ग्रन्थ और नगरहितकारी यन्त्रोंके ज्ञानसे पूर्ण ग्रन्थोंका आपके यहाँ पठन-पाठन हुआ करता है न? हे अनघ! मन्त्रोंसहित सब प्रकारके शास्त्र ब्रह्मदण्ड अर्थात् आभिचारिक विद्या और विष-प्रयोगके समस्त उपाय तथा शत्रु-नाशक अन्य समस्त उपायोंको आप जानते हैं न? अग्नि, सर्पादि हिंसक जन्तुओं और रोगादिजनित भयसे आप अपनी प्रजाकी रक्षा करते हैं न? अन्धे, गूँगें, लूले, कोढ़ी, पलित, अनाथ और संन्यासियोंका उनके पिताकी भाँति आप पालन तो करते हैं न?

निद्रा, आलस्य, भय, क्रोध, ढिलाई और दीर्घसूत्रता—इन छः दोषोंको आप त्याग चुके हैं न?

देवर्षि नारदके उपदेशपूर्ण इन प्रश्नोंको सुन, युधिष्ठिरने प्रसन्न हो , उनको प्रणाम किया और उनके चरणोंमें शीश रख निवेदन किया—'भगवन्! आपने प्रश्नोंके व्याजसे मुझे जो राजनीतिका उपदेश दिया है, उसके अनुसार मैं भविष्यमें काम किया करूँगा। क्योंकि आपके उपदेशको सुनकर आपके अनुग्रहसे मेरी बुद्धि बहुत कुछ परिष्कृत हो गयी है। हे ब्रह्मर्षिसत्तम! आपने जिस योग्यताके साथ राजनीतिक सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया है, वह आपके अनुरूप ही है। मैं यथाशक्ति और उचित रीतिसे उस विधिको काममें लाता हूँ। इसमें सन्देह नहीं कि पूर्वकालमें हम लोगोंके पूर्वज राजाओंने जो-जो कार्य योग्यतासे किये हैं, वे सब अनुकरणीय एवं अर्थयुक्त हैं। प्रभो! मैं उनके उस सुपथपर चलना तो चाहता हूँ किन्तु वे जितेन्द्रिय पुरुष जैसे चलते थे, वैसे चलना मुझसे नहीं बन पड़ता।'

देवर्षि नारदजीके उपदेशानुसार ही उस समयसे महाराजा युधिष्ठिरने कार्य किया और इसके फलसे वे आसमुद्रान्त समस्त भूमण्डलको जीतकर, साम्राज्य-सुखका अनुभव करने लगे थे।

इस वृत्तान्तसे सर्व-विद्या-विशारद देवर्षि नारदकी राजनीतिज्ञताका भलीभाँति परिचय मिल जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि इस कथासे यह बात सिद्ध हो जाती है कि महाभारतकालमें नारदजीकी अद्‌भुत विद्वत्ता, अपूर्व ज्ञान-कौशल और सर्वमान्य सिद्धान्तज्ञताकी छाप समस्त विद्वानोंके मनपर लगी हुई थी।

इस प्रकार आत्मभरन्यास अर्थात् प्रपति-धर्मके परमाचार्य देवर्षि नारद कुटिल राजनीतिक युगमें अर्थात् महाभारतकालमें एक प्रकाण्ड राजनीतिज्ञ भी प्रमाणित होते हैं। निश्चय ही देवर्षि नारदकी राजनीति धर्मप्राण भारतवासियोंकी उदार राजनीति थी और जबतक उनकी इस राजनीतिसे काम लिया गया तबतक देश सुख-शान्तिमय था। किन्तु जब इस नीतिके विपरीत कणिककी कुटिल नीतिसे धृतराष्ट्रने काम लिया, तबहीसे देशकी गति अधोगामिनी हो गयी।

दसवाँ अध्याय

देवर्षि नारदके आध्यात्मिक विचार—शुकदेवजीको ज्ञानोपदेश

यद्यपि परम तपस्वी एवं त्यागी मुनिप्रवर शुकदेवजी स्वयं परम ज्ञानी एवं बड़े तपस्वी थे और उनकी भागवत-वृत्ति जगत्भरमें प्रसिद्ध थी, तथापि उनकी ज्ञानगरिमाको बढ़ानेवाली, भगवद्भक्तिको पल्लवित करनेवाली, शान्तिमय, अहिंसामय तथा सनातनधर्मके अनुसार गीताके महामन्त्रका उपदेश देकर, पाञ्चभौतिक शरीरसे मुक्त कर उनको दिव्य शरीरधारी बनानेवाले थे उनके गुरुवर—देवर्षि नारद। जिस समय शुकदेवजी अपने पूज्यपाद पिता कृष्णद्वैपायन वेदव्यासको पुत्रवात्सल्यरसमें निमग्न कर तपोवनको चले गये, उस समय भगवदिच्छास्वरूप देवर्षि नारदजी उनके निकट जा पहुँचे। देवर्षि नारदको सामने देख शुकदेवजी उनका सम्मान करनेके लिये उठ खड़े हुए और यथाविधि पूजन किया। देवर्षि नारदजी जब आसनपर आसीन हो गये तब प्रसन्न हो उन्होंने शुकदेवजीसे कहा—वत्स! तुम्हारी क्या इच्छा है? मैं तुम्हें क्या उपदेश दूँ, जिससे तुम्हारी इच्छाके अनुसार तुम्हारा कल्याण हो। नारदजीके इन अनुग्रहपूर्ण वचनोंको सुनकर शुकदेवजीने अति विनीत भावसे कहा—भगवन्! इस मर्त्यलोकमें मानव-जीवनके लिये सर्वोपरि, सर्वश्रेष्ठ और परम हितकर उपदेश कौन-सा है? जो सर्वश्रेष्ठ उपदेश हो वही आप मुझे दीजिये।

इसके उत्तरमें देवर्षि नारदने कहा—तुमने इस समय जो प्रश्न किया है, यही प्रश्न प्राचीनकालमें ब्रह्मर्षि, देवर्षि, राजर्षि तथा अन्यान्य महापुरुषोंकी एक महती सभामें किया गया था। उस समय इस प्रश्नका उत्तर उस सभाके प्रधान व्याख्याता एवं परममान्य ब्रह्मर्षि सनत्कुमारने जो दिया था और जिसको सभामें उपस्थित जनताने बड़ी श्रद्धा एवं भक्तिके साथ सुना था वही हम तुमसे कहते हैं। ब्रह्मर्षि सनत्कुमारने कहा था—विद्याके समान संसारमें कोई

नेत्र नहीं है। सूर्यका प्रकाश भी इस विद्याचक्षुके प्रकाशसे कम है। सत्य-पालनके समान कोई तप नहीं है। रागके समान संसारमें दुःखका अन्य कोई कारण नहीं है। राग ही सबसे बढ़कर दुःख देनेवाला है और त्यागके समान सुखदाता कोई नहीं है, अर्थात् त्याग ही सबसे बढ़कर सुखप्रद है। वत्स! हिंसा, असत्य, छल, कपट, चोरी, व्यभिचार आदि दुःखदायी पाप-कर्मोंसे बचना, निरन्तर पुण्यप्रद कर्मोंमें निरत रहना, अपने-अपने वर्ण और आश्रमके धर्मानुकूल सदाचारका पालन करना ही अति श्रेष्ठ कल्याणका मार्ग है। मानव-शरीरको पाकर काम, क्रोध, लोभ आदि दुःखदायी विषयोंमें आसक्त होकर जो प्राणी धर्मके मार्गसे च्युत हो जाता है, उसकी बुद्धि मोह-जालमें फँसकर नष्ट हो जाती है। अतः वह दुःख पाता है और उन दुःखोंसे अपना पिण्ड नहीं छुड़ा सकता। क्योंकि विषयोंका सङ्ग ही तो दुःखका लक्षण है।

जो पुरुष स्त्री, पुत्र, धनादिमें आसक्त है, उसकी बुद्धि मोह-जालमें फँस-कर, धर्म-पथसे डिग जाती है। अपना कल्याण चाहनेवाले मनुष्यको उचित है कि वह हर तरहसे सर्वप्रथम काम और क्रोधके महाप्रबल वेगको रोके। क्योंकि ये काम, क्रोधादि कल्याण-मार्गके सबसे बड़े लुटेरे अथवा डाकू हैं। इन दोनोंको अथवा इनमेंसे एक कामहीको अपने वशमें कर लेनेसे कामके साथी-संगी अन्याय क्रोध, लोभ आदि शत्रु अपने-आप नष्ट हो जाते हैं। योगाभ्यास, वैराग्य और ईश्वर-प्रणिधानद्वारा काम, क्रोधादि मनोविकारोंकी वासनाओंको नष्ट कर डालना, सर्वोत्तम उपाय है। तपका नाश करनेवाला क्रोध है। अतः क्रोधसे तपकी रक्षा करे। अर्थात् क्रोधको जीतकर तपकी रक्षा करे। मत्सरता लक्ष्मीको नाश करती है। अतएव मत्सरताको त्यागकर लक्ष्मीकी रक्षा करे। मानापमानको त्यागकर विद्याकी रक्षा करे और प्रमादको त्यागकर अपने शरीरकी रक्षा करे। अर्थात् क्रोध, मत्सरता, दम्भ और प्रमादको त्यागनेसे तप, लक्ष्मी, विद्या और शरीरकी रक्षा होती है।

मनुष्यमात्रको दुःख न देनेकी चेष्टा करना ही सर्वोत्तम धर्म है। अतएव जो मनुष्यादि किसी भी प्राणीको सताते हैं, उनके समस्त धर्मानुष्ठान सर्वथा व्यर्थ हैं। क्षमा-धर्म ही सबसे बड़ा बल है। आत्माको जीत लेना ही सबसे बड़ा ज्ञान है। किन्तु सत्यसे बढ़कर अन्य कोई धर्म नहीं है। क्योंकि परमात्मा स्वयं सत्यस्वरूप हैं। सत्य वचन बोलना कल्याणकारी है। किन्तु जिस

वचनसे प्राणियोंका वास्तविक हित होता हो, वह वचन सत्यसे भी बढ़कर है। अतएव हमारी समझमें जो किसी प्राणीके लिये अत्यन्त हितकर वचन है, वही सत्य है और जो वचनमें प्रत्यक्ष सत्य प्रतीत होता हो, किन्तु जो वास्तवमें प्राणियोंके लिये हितकर नहीं, वह सत्याभास अर्थात् असत्य वचन है। परमार्थी पुरुषोंको उचित है कि वे समस्त कर्मोंके आरम्भको त्याग दें, समस्त आशाओंको त्यागें और सांसारिक भोगोंका उपार्जन एवं उनका संरक्षण करना भी त्याग दें। वस्तुतः जिसने सब कुछ त्याग दिया है, वही विद्वान् और वही पण्डित है। उसके सामने सांसारिक भोगोंमें आसक्त एवं रागी पुरुष मूर्ख है। जो मनुष्य अपने वशमें किये हुए आत्मस्वरूप, इन्द्रियोंके विषयोंका सेवन करता है और सावधान, निर्विकार तथा शान्तस्वरूप रहता हुआ विषयासक्त नहीं होता अर्थात् किसी सुन्दरी स्त्रीको देखकर जिसका मन चञ्चल नहीं होता और अन्यान्य विषयोंके सामने आनेपर भी जो अपने मनको अपने वशसे निकलने नहीं देता, वह पुरुष संसारके बन्धनोंसे छूटकर बहुत ही थोड़े कालमें परम कल्याणको प्राप्त करता है।

हे मुनिवर शुकदेव! इस मार्गके अतिरिक्त परमार्थियोंके लिये एक मार्ग और भी है। वह यह कि जो मनुष्य अन्य मनुष्योंसे किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं रखता, वह भी अविलम्ब परम कल्याण प्राप्त करनेका पात्र हो जाता है। कल्याण-मार्गके पथिकको उचित है कि वह किसी प्राणीको भी मनसा, वाचा, कर्मणा न सतावे। समस्त लोगोंके साथ मित्रता रखे। पापीजनोंके प्रति उदासीन-भाव रखे। मानव-शरीर पाकर किसीसे वैर न करे। परमार्थी, आत्मज्ञानी और जितेन्द्रिय पुरुषको धनका त्याग करना चाहिये। उसे तो पूर्णरूपसे सन्तोषी बन आशा और चपलताको सर्वथा त्याग देना चाहिये। हे वत्स! यदि तुम सर्वोपरि कल्याण चाहते हो तो उपार्जन और संचयको त्यागकर जितेन्द्रिय बनो और जन्म-जन्मान्तरोंमें निर्भय कर देनेवाले शोक-नाशक ज्ञान-मार्गपर आरूढ़ हो जाओ। जो मनुष्य अहङ्कार एवं ममताकी सूक्ष्म वासनाओंसहित भोग-रागको त्याग देते हैं, वे फिर किसीका सोच नहीं करते। अतः कल्याण-मार्गके पथिकको चाहिये कि वह भोगोंको त्याग दे। हे सौम्य शुकदेव! तुम भोगोंका त्याग करके ही सांसारिक दुःखों और तापोंसे छूट सकते हो। जिस प्रकार एकात्मदर्शी पुरुषके शोक और मोह निवृत्त हो जाते हैं, उसी प्रकार वैराग्य उत्पन्न होनेपर भी शोक और मोहकी निवृत्ति हो

जाती है, यही उत्तम सुख है और यही कल्याणका मार्ग है।

परमार्थी मनुष्यको अथवा कल्याण-मार्गके बटोहीको अपने शरीर और अपनी इन्द्रियोंको वशमें कर लेना चाहिये। उसे मौन रहना चाहिये और मनको अपने काबूमें कर लेना चाहिये। उसे नित्य तप करना चाहिये। मनकी चञ्चलताको दबाकर जिस इन्द्रियको न जीत पाया हो, उसे जीतनेकी इच्छा और उद्योग करना चाहिये, किसीमें किसी प्रकारकी आसक्ति न रखनी चाहिये। ज्ञानी, महात्मा आदि प्रतिष्ठित व्यक्ति कहलानेमें हर्ष मानकर आसक्त न होना चाहिये। एकमात्र परमात्मविचारमें सदा तत्पर रहते हुए ब्राह्मणको अविलम्ब अत्युत्तम सुख मिलता है। सुख-दुःख, हानि-लाभ आदि द्वन्द्वोंमें रमण करनेवाले प्राणियोंमें जो मनुष्य मुनिरूपसे हर्ष-शोक-रहित होकर विचरण करता है, उसको तुम तृप्त हुआ जानो। ज्ञान-तृप्तका लक्षण यही है कि पुरुष कभी शोक नहीं करता। शुभ पुण्यप्रद कर्मोंके करनेसे और ऐसे कर्मोंकी अधिकतासे देवयोनि प्राप्त होती है। जब पाप और पुण्य समान होते हैं, तब प्राणीको मानव-शरीर मिलता है। अशुभ अथवा पाप-कर्मोंके बढ़ जानेसे पशु आदि नारकीय योनियोंमें जन्म लेना पड़ता है। इस प्रकार अपने शुभाशुभ कर्मोंके प्रभावसे मृत्यु, वृद्धावस्था और रोगादिजन्य सैकड़ों उपद्रवोंसे व्याकुल प्राणी, संसाररूपी कड़ाहमें डालकर उबाला जाता है। संसारकी ऐसी भयङ्कर दशाको देखकर भी, हे शुक! तुम सचेत क्यों नहीं हो जाते? जब सहस्रों दुःख-सुख चारों ओरसे घेरते चले आते हैं, तब भी तुम इस सांसारिक मायारूपी भूलमें क्यों पड़े हो?

हे शुकदेव! तुम अहितको हित, अनित्य सांसारिक विषयोंको स्थायी और अनर्थकारी धनादिको अर्थसिद्ध मानते हो! किन्तु सचेत नहीं होते। तुम ऐसी भूलमें क्यों पड़े हो? जैसे रेशमका कीड़ा अपने ही किये कार्यसे आप ही रेशमके गट्ठेमें बँधकर मर जाता है, वैसे ही मनुष्य अपने कर्मोंसे अपनेको बन्धनमें डालता है, किन्तु सचेत नहीं होता। सांसारिक भोगोंके संग्रह करने और उसकी रक्षा करनेमें, एक, दो नहीं—अनेक दोष हैं। अतएव इस अर्जन-रक्षण-रूप परिग्रहसे परमार्थी मनुष्यको अवश्य ही हाथ खींच लेना चाहिये। क्योंकि जैसे रेशमका कीड़ा अपने-आप परिग्रहसे मारा जाता है, वैसे ही मनुष्य भी परिग्रहसे मारा जाता है। जैसे जलाशयके गहरे कीचड़में अथवा दलदलमें फँसकर जंगली बूढ़ा हाथी

घबड़ा–घबड़ाकर वहीं मर जाता है और उसके बाहर नहीं निकल सकता, वैसे ही मनुष्य भी रागरूपी दलदलसे बाहर निकल ज्ञान–वैराग्यके शुद्ध मार्गपर नहीं आ पाता। जैसे महाजालमें फँसी हुई और जलके बाहर खींची हुई मछलियाँ तड़फड़ा–तड़फड़ाकर मर जाती हैं, वैसे ही स्नेहरूपी बन्धनमें बँधे हुए इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग आदिके दुःखोंसे तड़फड़ाते और विलखते हुए मनुष्योंको तुम देखो। उनकी दशाको देखकर हे शुक! तुम सांसारिक स्नेह एवं रागके जालमें मत फँसो।

स्त्री, पुत्र,कुटुम्बी, निज शरीर और सञ्चित किये हुए धनादि समस्त पदार्थ अपने नहीं, पराये हैं। क्योंकि वे सब अपने साथ नहीं जाते। अपने साथ जानेवाले तो अच्छे–बुरे कर्म हैं। स्त्री–पुत्रादि तो अपने तब कहे जा सकते थे यदि वे अपने साथ जाते। किन्तु जब स्त्री–पुत्रादि समस्त स्वजनोंको छोड़कर एक दिन तुमको अकेले ही जाना है, तब तुम अनर्थकारी कामादिके बन्धनमें क्यों फँसते हो? अभीष्ट सुखके लिये तुम अपने परमार्थको क्यों नहीं सँभालते? मरनेपर जिस मार्गसे तुमको जाना पड़ेगा, उस मार्गपर न तो एक भी विश्रामस्थल है और न कोई वस्तु खानेहीको मिलती है। उस मार्गसे जानेपर दिशाओंका भी बोध नहीं होता। उस मार्गपर तो निविड़ अन्धकार छाया रहता है। हे शुकदेव! ऐसे भयङ्कर मार्गपर मरनेके बाद तुम अकेले कैसे जाओगे? अपने इस प्रिय शरीरको छोड़, कूच करते समय, तुम्हारे पीछे–पीछे स्त्री–पुत्रादि कोई भी स्वजन न जावेगा। तुम्हारे सच्चे साथी केवल तुम्हारे पाप और पुण्य तुम्हारे साथ जावेंगे। विद्या, कर्म, धर्म, शौच और विस्तृत ज्ञानको तो लोग प्रायः धनोपार्जनके काममें लगाते हैं। इनके द्वारा कल्याण प्राप्त करना नहीं जानते। यदि कोई मनुष्य विद्यादि अपने सत्कर्मोंसे अपना परमार्थ–साधन करता है तो कृतार्थ होकर वह संसारके सभी दुःखजनक बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है।

अधिक जन–समुदायमें बसनेकी जो रुचि है वही बाँधनेवाली रस्सी है। पुण्यात्मा लोग इस रस्सीको तोड़कर एकान्तमें तप करते हैं; किन्तु पापीजन इसी रस्सीमें दिनोंदिन दृढ़ताके साथ बँधते जाते हैं। कल्याणमार्गके पथिकको उचित है कि वह ऐसी नदीको अपने पुरुषार्थसे तैरकर पार जावे, जिसके रूप तो तट हैं, मन उसके प्रवाहका वेग है, स्पर्श द्वीप है, रस—विषयरूपी तृण उसमें बह रहे हैं, गन्धरूपी पङ्क और शब्दरूपी जल उसमें भरे हैं। स्वर्गके मार्गमे यह नदी पड़ती है और यह बड़ी वेगवती है। इसका कर्णधार क्षमा

है। धर्म ही किनारेपर रोकनेवाली रस्सी है और त्यागरूपी मार्गपर चलनेवाली सत्यरूपी नौका इस नदीके पार उतारती है। धर्म-अधर्म, सत्य-मिथ्या आदि द्वन्द्वोंका त्याग करके जिसने तुमको त्याग दिया है, उसे तुमको भी त्याग देना चाहिये। अर्थात् स्वर्गादि उत्तम सुखोंकी प्राप्तिकी कामनासे किया गया धर्म-कर्म भी बन्धनका हेतु है। अतएव उसको त्यागना कहा गया है। सत्य-मिथ्या त्यागनेका अभिप्राय मौन-व्रत धारण करना है। विषयभोग-बन्धनादि मनुष्योंको त्याग देते हैं, अर्थात् मनुष्य जैसे-जैसे भोगोंकी इच्छा करता है, वैसे-ही-वैसे वे भोग उसके इच्छानुसार उसे नहीं मिलते। अतः अपनेको त्यागनेवाले उन भोगोंको मनुष्य स्वयं ही त्याग दे। सङ्कल्पके त्यागसे काम्य धर्मको छोड़ना चाहिये और तृष्णाको त्यागकर अधर्मको त्यागना चाहिये। बुद्धिपुरस्सर भलीभाँति निश्चय कर सत्य-मिथ्याको त्यागकर तुम सच्चे मुनि बन जाओ और परम निश्चयद्वारा अपनी बुद्धिको स्थिर करो।

इस मानव-शरीररूपी घरमें हड्डियोंकी धन्ने, नसोंके बन्धन और रुधिर-मांसरूपी पलस्तर है। चामसे मढ़े हुए इस घरमें मल-मूत्रका महादुर्गन्ध ठसाठस भरा है। बुढ़ापा और शोकसे युक्त रोगोंके इस घरके प्रत्येक छेदसे मल-मूत्रकी दुर्गन्ध सदा निकला करती है और यह घर भूतोंका बसेरा है। अतएव ऐसे अनित्य एवं घृणित शरीरको त्यागनेकी तुम इच्छा करो। जो मनुष्य अपने पूर्वकर्मानुसार सदा दुःखी रहता है और दुःख-निवृत्तिके लिये अनेक प्राणियोंको मारा करता है अथवा सताया करता है, वह मानो इन कर्मोंसे और नये पापोंको सञ्चित करता है और इससे उसका दुःख उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। क्योंकि कुपथ्यके परिणामस्वरूप रोगसे ग्रसित प्राणी कुपथ्यके द्वारा रोगसे छुटकारा नहीं पा सकता। प्रत्युत उसका रोग और बढ़ जाता है। बुद्धिके मोहान्धकारसे आच्छादित हो जानेसे मनुष्य दुःखोंहीमें सदा सुखोंका अनुभव किया करता है। अपने उन्हीं कर्मोंसे मथानीकी तरह सदा मथा जाता है। अतः इस संसारमें दुःख-ही-दुःख है। यह विचारकर मुमुक्षुजनको सदैव उदासीनभावसे रहना चाहिये।

जो मनुष्य उदासीनभावसे नहीं रहता, वह कर्म-बन्धनोंसे जकड़ा हुआ, अनेक दुःखोंको भोगता हुआ नये-नये कर्मफलोंके उदय होनेसे रथचक्रके समान संसारमें भ्रमण किया करता है। इससे वह घबड़ाता तो

है, किन्तु जालमें फँसी मछली अथवा पक्षीकी तरह वह छूट नहीं सकता। अतएव हे शुकदेव! तुम उन बन्धनोंको काटकर और कर्मोंसे निवृत्ति होकर, सङ्कल्प एवं मनोरथोंको त्यागकर, समस्त इन्द्रियजित् और सत्-असत्के ज्ञाता, ज्ञानी हो जाओ। अबतक अनेक ऋषि-महर्षि धारणा, ध्यान, समाधि आदिके संयमसे नवीन बन्धनोंसे छूटकर सुखप्रद और सर्वबाधारहित सिद्धि अपने तपोबलसे पा चुके हैं। अतएव तुम भी इसी प्रकार तपोबलसे सिद्धि प्राप्त करो।

सांख्य, योग, वेदान्तादि कल्याणकारी शास्त्रोंके पढ़ने और मनन करनेसे शोक नष्ट हो जाता है। अतः इन शास्त्रोंको सुननेसे अथवा अध्ययन करनेसे मनुष्यकी बुद्धि उत्तम हो जाती है और उत्तम बुद्धि होनेसे वह सुखपूर्वक उन्नत मार्गपर अग्रसर होता है। संसारमें मूर्खजनोंको नित्य ही अनेक दुःखों और भयोंका सामना करना पड़ता है; विद्वान् पण्डितोंके सामने वे दुःख और भय कभी नहीं आते। इसे हम ऐसे भी कह सकते हैं कि जिनको दुःख, भय आदि नहीं दबाते वे ही पण्डित हैं, अन्य लोग मूर्ख हैं।

हे शुकदेव! यदि तुम्हारा मन अपने वशमें है तो मेरा उपदेश तुम ध्यानसे सुनो। क्योंकि ऐसे ज्ञानपदेशहीसे दुःख दूर होते हैं और कल्याणका मार्ग देख पड़ता है। निर्बुद्धि और अल्पमति मनुष्योंकी पहचान यही है कि वे अपने ऊपर किसी अनिष्टके आने या विपत्तिके पड़नेपर अथवा अपने स्त्री-पुत्रादि किसी प्रिय स्वजनका वियोग होनेपर अपार दुःखसागरमें डूब जाते हैं। जो पदार्थ नष्ट हो चुके, उनके गुणों या भलाइयोंका स्मरण न करना चाहिये। क्योंकि उनका स्मरण करनेसे वे उनके स्नेह या प्रेमके बन्धनसे छुटकारा नहीं पा सकते। अतएव सुख-भोगसे उदासीन रहना ही कल्याणकारी है।

विरक्त ज्ञानी पुरुषोंको उचित है कि वे उन पदार्थोंमें दोषदृष्टिसे काम लें, जिनमें उनका अनुराग या वासना हो। क्योंकि यदि वह अनुराग या वासना अनिष्टको बढ़ानेवाली मानी जाय, तो शीघ्र ही मनमें उन पदार्थोंकी ओरसे वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। बीती हुई बातोंके लिये शोक करनेसे धर्म, अर्थ अथवा यश—कुछ भी तो नहीं मिलता। प्रत्युत शोक करनेसे धर्मादिका नाश होता है। साथ ही वह शोक नष्ट न होकर उत्तरोत्तर बढ़ता है। प्राणियोंको अच्छे पदार्थ मिलते भी हैं और उनका वियोग भी होता है।

यह सबके लिये एक समान नियम है। इष्ट वस्तुका वियोग ही दुःख या शोकका कारण है। यदि कोई अपना मेली प्रिय मनुष्य मर गया, अथवा खो गया तो उसके लिये जो शोक करता है वह मानो दुःखसे दुःखको उत्पन्न करता है। इस प्रकार अनिष्ट-प्राप्तिमें शोक करनेसे दो अनर्थ होते हैं अर्थात् दोहरा दुःख होता है, किन्तु शोक न करनेसे दोनों दुःख मिट जाते हैं। संसारमें इष्ट-अनिष्ट, सुख-दुःखके क्रमको धीरे-धीरे विचारके साथ जो देखते हैं, वे मनुष्य प्रिय-वियोगसे न तो दुःखी होते हैं और न रोते हैं। समस्त संसारको भलीभाँति यथार्थ दृष्टिसे देखनेवाले कभी नहीं रोते।

शारीरिक दुःखके नष्ट हो जानेपर यदि मानसिक दुःख उत्पन्न हो जाय और यदि उसे दूर करनेका कोई उपाय न देख पड़े तो उसके लिये न तो चिन्ता करनी चाहिये और न दुःखी ही होना चाहिये। दुःखको हटानेका सबसे अच्छा उपाय यही है कि उसके लिये चिन्तित न हो। क्योंकि चिन्ता करनेसे दुःख नष्ट नहीं होता प्रत्युत बढ़ता है अतएव उसकी ओरसे उदासीनता ही श्रेयस्करी है। बुद्धिके उत्तम-उत्तम विचारोंसे मानसिक दुःखको तथा ओषधिका सेवनकर शारीरिक असुखको दूर करे—यही बुद्धिमानोंका कर्तव्य है। दुःखके समय अज्ञानियोंकी तरह घबड़ाना नहीं चाहिये। यौवन, सौन्दर्य, दीर्घ जीवन, धनका सञ्चय, आरोग्यता और प्रिय वस्तुका संयोग, ये सब अनित्य हैं—अर्थात् सदा टिकाऊ नहीं हैं। अतएव बुद्धिमान् विद्वान् यौवनादिमें लिप्त एवं आसक्त न हों। देशव्यापी विपत्तिको व्यक्तिगत मानकर शोक न करना चाहिये, किन्तु शोकातुर न होकर उस विपत्तिकी निवृत्तिके लिये उद्योग करना चाहिये। यदि उद्योग करनेपर भी वह न हटे तो न तो दुःखी हो और न घबड़ावे।

विद्वान् और विचारशील लोगोंने अच्छी तरह छान-बीन करके और संसारके गतागत वृत्तान्तोंको पढ़ एवं सुनकर यह निर्णय कर दिया है कि मानव-जीवनमें सुखकी अपेक्षा दुःख ही अधिक है। सो उनका यह निर्णय निस्सन्देह ठीक है। इन्द्रियोंके विषयमें प्रेम होनेके कारण और मोहवश अप्रिय मृत्यु प्राणियोंको आकर घेर लेती है। जो मनुष्य सांसारिक सुख-दुःखकी ओर ध्यान नहीं देता, वह जीवन्मुक्त हो जाता है। ऐसे मनुष्यको विद्वान् लोग शोकसागरसे पार हुआ मानते हैं। धनादि ऐश्वर्यका त्याग करनेमें मनुष्यको बड़ा दुःख होता है। धनकी रक्षा करनेमें भी सुख नहीं मिलता और

धनकी प्राप्तिमें भी बड़े-बड़े कष्ट भोगने पड़ते हैं। अतएव ऐसे धनकी यदि हानि हो तो उसके लिये शोक न करना चाहिये। क्योंकि जो वस्तु सब समय दु:खदायिनी है उसका नाश होनेपर तज्जन्य दु:खका नाश हुआ भी मानना चाहिये। धन-प्राप्तिकी भिन्न-भिन्न दशाओं और न्यूनाधिक विशेष अवस्थाओंमें साधारण मनुष्य निज आर्थिक अवस्थासे कभी सन्तुष्ट नहीं होते और अन्तमें स्वयं नष्ट हो जाते हैं। किन्तु पण्डितजन सदा अपनी आर्थिक परिस्थितिसे सन्तुष्ट रहते हैं। समस्त सञ्चयोंका अन्तमें नाश होता है, समस्त उन्नतियाँ अन्तमें अवनतिको प्राप्त होती हैं; सब प्रकारके संयोगोंका अन्तिम परिणाम वियोग होता है और सभी जीवन अन्तमें मृत्युको प्राप्त हो जाते हैं। अतएव सञ्चय, उन्नति, संयोग और जीवनको तुम सुखका हेतु मत मानो।

ज्ञानीजनोंने ठीक ही जान लिया है कि तृष्णाका कभी अन्त नहीं होता। अतएव सन्तोषहीमें बड़ा सुख है। इसीलिये विद्वज्जन सन्तोषको बड़ा धन मानते हैं। एक क्षणके लिये भी आयुका ह्रास होना बन्द नहीं होता। क्योंकि यह शरीर अनित्य है। अतएव ज्ञानियोंको विचारना चाहिये कि नित्य वस्तु कौन-सी है? उस नित्य वस्तुको जान लेना ही सबसे बड़ा ज्ञान है। प्राणियोंमें मुख्य सत्ताका चिन्तन करके जो लोग चेतनात्माको जान लेते हैं, वे परमपदको देखते हुए संसार-सागरके पार हो जाते हैं और उन्हें किसी प्रकारका शोक नहीं व्यापता। अर्थात् वस्तुस्थितिका यथार्थ ज्ञान होते ही शोक और मोह नष्ट हो जाते हैं। तृप्त न होकर कामनाओंके वशवर्ती पुरुषको मृत्यु वैसे ही उठा ले जाती है, जैसे बाघ बकरी आदि हीन बलवाले पशुओंको उठा ले जाता है। यद्यपि मृत्युरूपी बाघ मुख खोले खड़ा है, तथापि दु:खोंसे बचनेके लिये एवं उससे छुटकारा पानेके लिये ज्ञानदृष्टिसे काम लेना चाहिये। शोकको त्यागकर परमार्थका चिन्तन करना चाहिये। परमार्थका तत्त्वज्ञान होनेपर पहाड़ों-जैसे बड़े-बड़े दु:ख भी नष्ट हो जाते हैं।

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—इन्द्रियोंके इन पाँच विषयोंको, चाहे धनी हो या निर्धन—सब लोग समानरूपसे उपभोग कर सकते हैं, किन्तु इन विषयोंके उपयोगके अतिरिक्त अन्य लाभ नहीं है।

जिस वस्तुके नाशसे बड़ा दु:ख होता है, उसके प्राप्त होनेके पूर्व सुख अथवा दु:ख कुछ भी नहीं होता। अतएव उसकी प्राप्तिके पूर्वकी दशाको ध्यानमें रखकर कभी मनको दु:खी न करना चाहिये। उपस्थ और उदरकी

रक्षा और उदरके भरण-पोषणके लिये धैर्यसे काम ले। अर्थात् अनुचित काम-वासनासे और अभोज्य भोजनसे बचे। आँखोंद्वारा हाथ और पाँवकी रक्षा करे, मनसे आँखों और कानोंकी रक्षा करे और विद्याद्वारा मन एवं वाणीकी रक्षा करे। अर्थात् मन एवं वाणीको विद्याभ्यासमें लगाकर, इन दोनोंको अनुचित कार्योंकी ओरसे रोके। भलाई-बुराईसे मन हटाकर जो शान्तिशील पुरुष उदासीन-भावसे यात्रा कर संसारसे पार होता है, वही सुखी रहता है और वही पण्डित कहलाता है। जो मनुष्य अध्यात्म अर्थात् आन्तरिक विचारोंमें मनको लगा, अनुकूल-प्रतिकूल विषयोंमें हर्ष और विषादको कुछ भी नहीं गिनता, केवल परमात्माकी सहायताहीसे संसारमें विचरता है उसीको तुम सुखी जानो।

जब सुखके समय विपत्तिरूप दुःख आ उपस्थित होता है, अर्थात् सुखके बदले दुःख आ जाता है, तब उस दुःखको कोई भी नीतिज्ञ बुद्धिमान् नहीं हटा सकता। रोगादि दुःखोंमें फँसनेके पूर्व ही प्रतिकूलात्मक दुःख-निवृत्तिके लिये यत्न करता रहे। जो पुरुष सदा यत्न किया करता है वह कभी दुःख नहीं पाता। मनुष्यको उचित है कि मोक्ष-प्राप्तिके सदैव यत्नवान् रहकर जरा, मृत्यु और रोगादिके चक्रसे अपने प्रिय आत्माकी रक्षा करे। जैसे किसी बलवान् धनुर्धरके छोड़े हुए बाण प्रतिपक्षीके शरीरमें बिंधकर शरीरको पीड़ित करते हैं, वैसे ही मानसिक और शारीरिक व्यथाएँ प्राणियोंको पीड़ित किया करती हैं। नित्य नयी-नयी कामनाओंसे व्यथित, ग्लानियुक्त जीवनके अभिलाषी एवं विवश प्राणीके विनाशके लिये शरीर खींचा जाता है। अर्थात् जीवकी अधोगतिके निमित्त शरीर सताया जाता है। जैसे घास-फूसके साथ जो जलकी धार आगे बहकर निकल जाती है, वह लौटकर पीछे नहीं आती; वैसे ही शरीरधारियोंके आयुको लेकर दिन-रात-रूपी कालके जो प्रवाह प्रतिक्षण बहे चले जाते हैं, वे फिर लौटकर नहीं आते।

शुक्लपक्षके पीछे कृष्णपक्ष और कृष्णपक्षके पश्चात् शुक्लपक्ष आया-जाया करते हैं और इनका आना-जाना उत्पन्न हुए मनुष्योंके आयुको क्षण-क्षणमें कम करता हुआ एक क्षणके लिये भी नहीं रुकता। बारम्बार सूर्योदय और सूर्यास्त होनेसे बने हुए दिन और रात आदि कालोंका प्रवाह स्वयं अजर-अमर बन प्राणियोंको सुख-दुःख देता है, उनको मारता है और उत्पन्न किया करता है। कालके प्रभावसे ऐसे-ऐसे कार्य प्रत्यक्ष होते देखे

जाते हैं, जिनके होनेकी सम्भावनाकी कल्पनातक कभी नहीं की गयी थी। जो प्राणी अथवा धनादि पदार्थ कल हमारी आँखोंके सामने विद्यमान थे, वे आज नहीं रहे। मानो कलका दिन उन सबको अपने साथ लेता गया। यदि कर्म-फल-विधान ईश्वर अथवा दैवके अधीन न होता तो प्रत्येक मनुष्य जो चाहता वही कर सकता था। संयमी, चतुर एवं बुद्धिमान् जन भी कर्महीन, विफलजीवन अर्थात् दुःखी और दरिद्र देखे जाते हैं और महामूर्ख, निर्बुद्धि, सर्वगुणहीन तथा नीचातिनीच पुरुष सब प्रकारसे भरे-पूरे और सुखी देख पड़ते हैं। उनको कोई सज्जन और धर्मात्मा जन अच्छा नहीं समझते। इसी प्रकार न मालूम कितने लोग, जो सदैव पश्वादिकी हिंसा किया करते हैं, (क्योंकि उनकी हिंसामयी प्रवृत्ति है) और जो रात-दिन दूसरे लोगोंको धोखा दे ठगा करते हैं वे पतित पामर जन भी जन्मभर सुख-चैनसे अपना जीवन बिता देते हैं। देखो, ऐसे भी लोग हैं, जो धनोपार्जनके लिये हाथ-पाँव नहीं हिलाते, किन्तु चुपचाप बैठे रहते हैं, पर तो भी उनके पास धन अपने-आप चला आता है और ऐसे भी अनेक लोग हैं जो धनोपार्जनके लिये निरन्तर घोर परिश्रम किया करते हैं, किन्तु उनको धन नहीं मिलता। कोई-कोई चाहते हैं कि हमारे मरनेके बाद हमारे सन्तान हमारे उत्तराधिकारी हों और इसलिये वे श्रीमान् पुरुष सन्तानोत्पत्तिके लिये बड़े-बड़े प्रयत्न किया करते हैं, किन्तु उनका मनोरथ सफल नहीं होता। उनकी स्त्रियोंके गर्भस्थापन ही नहीं होता। किन्तु न मालूम कितने व्यभिचारी व्यभिचार करते और चाहते हैं कि कहीं उनकी प्रेयसी गर्भवती न हो जाय। वे गर्भसे वैसे ही डरते हैं, जैसे साँपसे मनुष्य। किन्तु ऐसोंके हृष्ट-पुष्ट चिरायु पुत्र माता-पिताकी इच्छाके विरुद्ध उत्पन्न होते हैं।

हे शुकदेव! कहीं ऐसा भी देखनेमें आता है कि सुसन्तान-प्राप्तिके लिये बड़े-बड़े व्रतोपवास और कठोर तप किया जाता है और जब उनके प्रभावसे गर्भ स्थापित हो जाता है और दस मास बाद सन्तान उत्पन्न होता है, तब वह महा-कुल-कलङ्की कुपूत निकलता है। महाभयङ्कर रोगोंसे पीड़ित अनेक धनी बहुत-सा धन व्यय कर बड़े-बड़े पीयूषपाणि और प्रसिद्ध चिकित्सकोंसे चिकित्सा कराते हैं, किन्तु उनका रोग नहीं छूटता। कहीं-कहीं बड़े नामी-गिरामी चिकित्सक, जिनके पास महामूल्यवान् ओषधियाँ हैं, स्वयं रोगाक्रान्त हो जाते हैं और रोगोंसे वे वैसे ही सन्तप्त होते हैं, जैसे बहेलियेसे मृग। वे

अनेक ओषधियोंके योगसे बनाये गये घृतोंका सेवन करते हैं, कषायोंको पीते हैं और च्यवनप्राशादि पौष्टिक ओषधियोंको खाते हैं; किन्तु बुढ़ापा उनको वैसे ही नष्ट कर देता है, जैसे बलवान् हाथी पहाड़ीके टुकड़े-टुकड़े कर उसे नष्ट कर डालता है। साथ-ही-साथ यह भी सोचनेकी बात है कि इस भूमण्डलपर रहनेवाले तरह-तरहके पक्षियों और अन्य जीव-जन्तुओंकी चिकित्सा कौन करता है? वनमें रहनेवाले पशु-पक्षी आदि अनेक जीव तथा दीन-दरिद्र मनुष्योंको कोई रोग प्रायः होता ही नहीं। परन्तु बड़े-बड़े प्रतापी, किसीसे न दबनेवाले शूरवीर, बड़े-बड़े सिंहोंको पकड़ने अथवा मार डालनेवाले राजों और महाराजोंपर रोगादि आक्रमण कर उनको वैसे ही दबा लेते हैं, जैसे कोई सिंह किसी सियारको दबा लेता है। संसारकी ऐसी विलक्षणताओंको देखकर, मनुष्यको उचित है कि वह अपने मनको शान्त रखे। क्योंकि अति बलवान् कालका प्रवाह दुःखादिसे घिरे हुए लोगोंको ऊँची-नीची दशाओंमें पटका करता है। जो प्राणी अपने प्रबल स्वभावके बन्धनमें बँधे हुए हैं, उनकी वह काम-क्रोधादिके गर्तमें गिरानेवाले स्वभावकी वासना धनसे, राज्यसे अथवा घोर तपसे भी दूर नहीं होती। यदि मनुष्योंकी सभी कामनाएँ पूरी होने लगें तो न तो कोई मनुष्य कभी मरे, न कोई बूढ़ा ही हो और न किसी प्रकारका वह अप्रिय अनिष्ट ही देखे। संसारमें सभी प्राणी स्वभावतः उच्चातिउच्च दशाको प्राप्त करनेकी यथाशक्ति चेष्टा किया करते हैं; किन्तु न तो कभी ऐसा हुआ और न कभी हो ही सकता है।

संसारमें यह भी देखनेमें आता है कि जो धनके मदमें चूर हैं अथवा जो राजा-रईस मदिराके नशेमें चूर रहते हैं, उनकी सेवा मादक वस्तुओंको सेवन न करनेवाले बड़े-बड़े पराक्रमी शूरवीर किन्तु मूर्ख—प्रमाद छोड़ सहर्ष किया करते हैं। कितने ही लोगोंके दुःख बिना प्रयत्न किये ही अपने-आप नष्ट हो जाते हैं। कुछ लोगोंको ऐसे दुःख आकर घेर लेते हैं, जिनके कारणोंका पता खोजनेपर भी नहीं लगता। कहीं-कहीं तो ऐसी विषमता देख पड़ती है कि पालकीमें बैठकर चलनेवाले तो दुःखी हैं और उनकी पालकी उठानेवाले सुखी हैं। कतिपय राजे और रईस ऐसे भी हैं जिनकी रथादि सवारियोंके आगे-पीछे अनेक नौकर-चाकर दौड़ा करते हैं, किसीके घरमें सैकड़ों स्त्रियाँ हैं, जो बिना काम-भोगके तड़पा

करती हैं और अन्यत्र सैकड़ों पुरुष ऐसे हैं जो स्त्रियोंके लिये तरसा करते हैं। हर्ष-शोक, हानि-लाभ, सुख-दुःखादिमें रमनेवाले प्राणी प्रायः इसी प्रकार दुःखित दिखलायी पड़ते हैं। इस संसारमें नाना प्रकारके दुःख हैं। अतएव हे शुकदेव! मैंने जो अभी तुमसे कहा है, उसपर तुम विचार करो और तदनुसार ही संसारको देखो। ऐसा करनेसे तुम्हें फिर मोह न होगा।

तुम धर्म-अधर्म दोनोंके फलोंका त्याग करो और सत्य-असत्यके झंझटमें न पड़ो। जैसे प्रकाश-अन्धकारका अविच्छिन्न सम्बन्ध है, वैसे ही धर्म-अधर्म और सत्य-असत्यका सम्बन्ध समझ उन्हें त्यागो। हे शुकदेव! हे ऋषिप्रवर! यह परम गुह्य रहस्य-विचार मैंने तुमसे कहा है, इसी ज्ञानके प्रभावसे देवता लोग मर्त्यलोकको छोड़ स्वर्ग पा सके हैं। यह कल्याणका परम सुन्दर मार्ग है।

देवर्षि नारदके इस उपदेशानुसार शुकदेवजी चले और अन्तमें इस स्थूल पाञ्चभौतिक शरीरको त्याग, मुक्तिको प्राप्त हुए।

इसमें सन्देह नहीं कि उपर्युक्त नारदीय अध्यात्मविचार, बड़े ही महत्त्वका, शान्तिप्रद, अहिंसात्मक और परम कल्याणके मार्गके पथिकोंके लिये सर्वोत्तम उपदेश है। जिस उपदेशामृतको पानकर शुकदेवजी-जैसे बालज्ञानी, परमत्यागी और संसार प्रसिद्ध योगी मोक्ष पा चुके हैं और जीवन्मुक्त हो चुके हैं, उसके विषयमें कुछ लिखनेकी आवश्यकता नहीं है; किन्तु इतना तो कहना ही पड़ता है कि नारदीय अध्यात्मज्ञान सब प्रकारके, सब श्रेणीके और सभी विचारके लोगोंके लिये हितोपदेश हैं, हितकी दृष्टिसे एक चेतावनी है और केवल प्रसङ्गवश किसी कार्यविशेषके लिये नहीं, प्रत्युत कल्याणमार्ग पथिकोंके लिये सर्वोत्तम पथ-प्रदर्शक ज्ञानका वर्णन है।

ग्यारहवाँ अध्याय

भक्तिका नारदजीद्वारा संसार-व्यापी प्रचार, तुलसीकृत रामायण और भक्तिसूत्र—भिन्न-भिन्न भक्तिसूत्रोंमें भक्तिके भिन्न-भिन्न लक्षण

यदि तात्त्विक दृष्टिसे विचार किया जाय तो नारदीय भक्ति-मार्गका प्रचार सारे संसारमें पाया जायगा। संसारके उन समस्त धर्मोंमें जिनका धार्मिक दृष्टिसे आदर किया जा सकता है, नारदीय भक्ति-मार्गकी छाया दिखलायी पड़ती है। यद्यपि नारदीय भक्ति-मार्गके औपनिषदिक सिद्धान्त, वैदिक आचार एवं वास्तविक ज्ञानका भक्तिप्रधान ईसाई-पन्थमें पूर्ण समावेश नहीं हो सकता, तथापि इस पथपर भी नारदीय भक्ति-मार्गकी किरणें छिटकी हुई देख पड़ती हैं। भारतीय धार्मिक समुदायमें, चाहे वह किसी भी सम्प्रदाय अथवा पन्थका क्यों न हो, पद-पदपर नारदीय भक्ति-मार्गके उपदेशामृतकी बूँदें उनके जीवनकी आधार हो रही हैं। प्राचीन पुराणों एवं आचार्योंने भक्ति-मार्गका कितना आदर किया है और कितना विस्तार किया है इन बातोंको बतलानेकी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि इन्हें तो इस देशका इतिहास जाननेवाले और पुराणोंके पढ़नेवाले समस्त जन भलीभाँति जानते हैं।

भारतवर्षमें ज्ञान और कर्मकाण्डोंके रहते, यहाँ भक्ति-मार्गका सबसे अधिक प्रचार क्योंकर हुआ और कबसे हुआ? इन प्रश्नोंके उत्तर विचारणीय हैं।

श्रीमद्वाल्मीकि-रामायण, श्रीवेदव्यास-रचित श्रीमद्भागवतपुराण और योगिराज शुकदेवजीद्वारा किया गया भक्तिका प्रचार नारदीय भक्ति-मार्गके ऊपर अवलम्बित हैं। परम्परागतप्राप्त नारायणीय धर्म, पाञ्चरात्रशास्त्र, सात्वतधर्म, भागवत-धर्म, आत्मभरन्यास, ऐकान्ति भक्ति और प्रपत्तिके नामसे प्रसिद्ध सुन्दर, सरल एवं परम कल्याणप्रद मार्ग नारदीय भक्ति-मार्गहीके संसारव्यापी प्रचार हैं। जिस सात्वतज्ञानका, जिस भक्ति-मार्ग-प्रतिपादक भागवत-धर्मका अनादित्व, अविच्छिन्नत्व तथा अपौरुषेयत्व

उपनिषदों, महाभारतादि प्रामाणिक आधारोंसे सिद्ध होता है, उसके आविर्भावके समयका निरूपण करना अथवा उसकी चेष्टा करना केवल कठिन ही नहीं, प्रत्युत असम्भव, अनर्गल और सर्वथा अज्ञानतापूर्ण व्यर्थका परिश्रममात्र है।

स्वर्गवासी लोकमान्य पं० बालगङ्गाधर तिलकने स्वरचित गीता-रहस्यमें इस सम्बन्धमें बहुत विचार किया है और उनके विचारमें भक्ति-मार्ग अथवा भागवत-धर्मका प्रचार ईसवी सन्के आरम्भसे पूर्व लगभग १४००में हुआ है और कर्म-मार्ग, कर्म-संन्यास-मार्ग, यज्ञ-मार्ग आदि प्राचीन धर्ममार्गोंके पीछे हुआ है। जब लोकमान्य तिलकके मतानुसार अनादि एवं अपौरुषेय वेदोंका रचना-काल केवल ईसवी सन्से ४५०० वर्षों पूर्व माना गया है, तब भागवत-धर्मका प्रचार-काल ईसवी सन्से पूर्व १४०० वर्षोंका निश्चित किया जाय तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। ऐसे विचारोंकी खण्डन-मण्डनात्मक मीमांसामें समय लगाना आस्तिक भारतवासियोंकी दृष्टिमें यद्यपि परमावश्यक है, तथापि इस विषयपर मौन रहता और कुछ न कहना सामान्य जनोंकी दृष्टिमें '**मौनं सम्मतिलक्षणम्**' लोकोक्तिके अनुसार मानो उक्त सिद्धान्तको स्वीकार कर लेना है। अतः प्रसङ्गवश इस विषयपर आलोचनात्मक दृष्टिसे यहाँ कुछ विचार करना कदाचित् अनुचित न समझा जायगा। लोकमान्य तिलक महोदयने वेदाङ्ग-ज्योतिष, मैत्र्युपनिषद्के धनिष्ठा-नक्षत्रके अर्धभाग व्यतीत होने तथा धनिष्ठाके आरम्भसे उत्तरायणकी चर्चा चला, वेदोंका समय निकाला है। समय निकालनेमें अयनगतिको आधार मानकर ही आपने सब कुछ लिख डाला है। अयनगतिके आधारपर ही आपने ऋग्वेदादिका समय निकाला है। किन्तु इस प्रकार वे जिस सिद्धान्तपर उपनीत हुए हैं, वह अभ्रान्त नहीं माना जा सकता। अयनगतिके सम्बन्धमें अभी बड़ा मतभेद है। हमारे भारतीय आर्यज्योतिषके आधारभूत 'नारदीय सिद्धान्त', सोमसिद्धान्तादि सिद्धान्तोंके अनुसार अयनगतिका मान प्रतिवर्ष चौवन विकला होता है और वह २७ अंशतक धनात्मक रहता है। फिर वह लौटता है और २७ अंशतक ऋणात्मक रहता है। अर्थात् ५४ अंशोंको दो लग्न मान भचक्रमें होता है। ऐसी दशामें लोकमान्य तिलककी गणना सर्वथा व्यर्थ हो जाती है। अतः इस गणितके आधारपर निकाला हुआ भक्ति-मार्गके प्रचारका काल ठीक नहीं है। भारतीय मानव-ज्योतिष-सिद्धान्तमें इस विषयमें भगणात्मक

अयनगतिका वर्णन भी आया है; किन्तु उसमें गतिमानकी विलक्षणता भी है। इसीसे लोकमान्यका गणित शुद्ध सिद्ध नहीं होता। आर्यभट्टीय सिद्धान्तके अनुसार अयनगति अधिक-से-अधिक ७० विकला वार्षिक होती है और कम-से-कम उसका मान शून्यपर आ टिकता है। अतएव लोकमान्यका गणित, जो अंग्रेजोंके तात्कालिक अयनगतिके मान, अर्थात् ५० विकला समानरूपसे प्रतिवर्षके आधारपर निकाला गया है, अशुद्ध हो जाता है। यदि अंग्रेजोंका गणित ठीक भी मान लिया जाय और भारतीय सिद्धान्तोंकी बातें न मानी जायँ तो भी लोकमान्यका गणित शुद्ध नहीं ठहरता। क्योंकि अंग्रेज ज्योतिषियोंके मतानुसार भी अयनगतिमें विलक्षणता है। वह सदैव समान नहीं रहती। इस समय उनके मतसे जो लगभग ५० विकला वार्षिक अयनगति होती है, वह प्रतिवर्ष घट रही है। और सम्भवतः नारदीय सिद्धान्तके समय उसका मान लगभग ५४ विकला रहा होगा। इस प्रकार जब अयनगति दिनोंदिन घट रही है और यह कहा नहीं जा सकता कि कबसे घट रही है और इस घटतीमें न मालूम कब कैसा अन्तर होता रहा है, तब उसको स्थिर मानकर उसके आधारपर सहस्रों वर्षों पूर्वका गणित करना और उस गणितके आधारपर किसी अनादि अपौरुषेय वैदिक धर्म-मार्गके अथवा भागवत-धर्म-जैसे सर्वमान्य धर्मके प्रचारका समय निकालना मानो उसके महत्त्वको घटानेका प्रयत्न करना है। यही नहीं, ऐसी अभिनव-भ्रान्ति-पूर्ण कल्पनाओंसे भागवत-धर्मके अनुयायियोंके चित्त भी दुखाना है।

जिस सात्वत-धर्मकी परम्परा, जैसा कि पिछले अध्यायोंमें दिखलाया जा चुका है, अनादि है, जिसका आविर्भाव एवं तिरोभाव कल्प-कल्पान्तरसे होता चला जाता है और जिस धर्म-मार्गको नारदजीने गर्भस्थ भक्त प्रह्लादको सुनाया था। प्रह्लादने जिसे दैत्यबालकोंको सुनाया था और न मालूम कितने दिनोंपूर्व सुनाया था, उस भक्ति-मार्गके प्रादुर्भावका समय निकालना—सो भी अशुद्ध गणितद्वारा, मानव-सिद्धान्तके विरुद्ध कार्य है। अतः पाञ्चरात्र-प्रतिपादित इस भागवत-धर्मरूपी भक्ति-मार्गके प्रचारका आरम्भिक काल निर्णय करना भारी भ्रम है। महाभारतमें इस धर्मकी आनुपूर्वी परम्परा दी हुई है कि वही परम्परा हम पीछे उदधृत कर चुके हैं। महाभारतके शान्तिपर्वान्तर्गत ३३९ वें अध्यायके ११२ वें श्लोकमें लिखा है कि चारों वेद, सांख्ययोग अर्थात् इन पाँचोंका

भागवतधर्ममें समावेश हो जाता है। अतः उसका नाम पाञ्चरात्र-धर्म पड़ा है।

'सांख्ययोगकृतं तेन पाञ्चरात्रानुशब्दितम्'

जिस धर्मका मूलस्थान चारों वेद तथा सांख्ययोग है उसके अनादित्व, अपौरुषेयत्वके सम्बन्धमें हम धार्मिक भारतवासियोंका मत उतना ही दृढ़ और निश्चित है जितना अपने वेदोंके अनादित्व और अपौरुषेयत्वके सम्बन्धमें है। सारांश यह है कि भक्ति-मार्गरूपी भागवत-धर्म अनादि है, अपौरुषेय है। इसका प्रचार समय-समयपर होता रहा है और किसी समय वह परब्रह्ममें लीन होकर तिरोहित हो लुप्त होता रहा है।

लोकमान्य तिलकने इस धर्मके सात्वतनामपर भी विचार किया है और यदुवंशका सात्वतनाम मानकर उन्हींके नामपर इसका नाम सात्वत माना है और इसे यादव-धर्म बतलाया है। इसमें सन्देह नहीं कि महाभारतमें बारम्बार सात्वत शब्द पाया जाता है और यह भागवत-धर्मके लिये आया है; किन्तु यदुवंशके सात्वत नामके साथ इस धर्मका उल्लेख कहीं भी नहीं पाया जाता। यदि सात्वत शब्दसे कोई यादवोंको माने तो भी भागवत-धर्म यादवोंका धर्म नहीं है; प्रत्युत इस सात्वत-धर्मका प्रचार श्रीकृष्णके आदेशानुसार यादवोंमें हुआ हो यह अवश्य अनुमान किया जा सकता है। साथ ही यह भी अनुमान किया जा सकता है कि इसीसे यादवगण सात्वतधर्मी कहलाये होंगे। अर्थात् यदुवंशी भले ही इस नामके जोड़नेसे सात्वतधर्मी कहलाये हों, न कि अनादि सात्वत-धर्म यदुवंशियोंके नामसे प्रसिद्ध हुआ है।

इसमें सन्देह नहीं कि भक्ति-मार्गका संसार-व्यापी प्रचार होनेका मुख्य कारण भक्ति-मार्गकी सरलता और परोपकारिता ही है। उन समस्त धर्मोंमें जिनमें अव्यक्त परमात्माका प्रतिपादन है, ईश्वराराधनमें बड़ी कठिनाई उपस्थित होती है। इस अभिप्रायको प्रकट करते हुए भगवान्ने श्रीमुखसे भगवद्गीताके द्वादश अध्यायमें कहा है—

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते॥

अर्थात् अव्यक्त ईश्वरमें मनकी एकाग्रता करनेवाले देहधारी मनुष्यको बड़ा कष्ट होता है। क्योंकि अव्यक्त गतिका पाना देहेन्द्रियधारी मनुष्यके लिये स्वभावतः कष्टदायक है। इतना नहीं; बल्कि अव्यक्त-धर्मकी कठिनाईके

साथ-ही-साथ व्यक्तोपासनारूपी भक्ति-मार्गकी श्रेष्ठता तथा सुलभताको भी भगवान्ने श्रीमद्भगवद्गीताके नवें अध्यायमें स्पष्ट कर दिया है।

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्॥

अर्थात् यह भक्ति-मार्ग अथवा भागवत-धर्म समस्त विद्याओं तथा गुप्त-से-गुप्त ज्ञानोंमें श्रेष्ठ अर्थात् राजा है। यह मार्ग उत्तम है, पवित्र है, प्रत्यक्ष देख पड़नेवाला है, धर्मानुकूल—वेदों और सांख्ययोगका सारभूत है, सुखपूर्वक पालन करने योग्य है और अक्षय्य है। जब भक्ति-मार्ग—भागवत-धर्म सभी विद्याओं, सभी धर्मोंका राजा है, गुह्य-से-गुह्य ज्ञानका राजा है अर्थात् सभी धर्मों अथवा समस्त गोप्य ज्ञानोंमें श्रेष्ठ है, सहजमें पालन किया जा सकता है, प्रत्यक्ष भगवान्का दर्शन करानेवाला है और वेदादि धर्मानुकूल अक्षय्य फल-प्रदाता है अथवा स्वयं भी अक्षय्य है, तब उसका यदि संसार-व्यापी अधिक-से-अधिक प्रचार हो तो आश्चर्य ही क्या है? क्योंकि संसार तो सुलभ एवं अधिक लाभदायी मार्गका ही अनुसरण करता है। इतना ही नहीं, इस भक्ति-मार्गमें अन्य वैदिक धर्म-मार्गोंकी अपेक्षा संसारको अपनी ओर बलपूर्वक आकर्षण करनेवाली एक और शक्ति है। उस शक्तिका नाम है उदारता। इस शक्ति-मार्गकी उपासनाका अधिकार मानव-जातिके समस्त लोगोंको प्राप्त है। इस भागवत-धर्ममें प्रवेश करनेका राजद्वार सभी लोगोंके लिये खुला हुआ है और इस बातका ढिंढोरा स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने कुरुक्षेत्रके समराङ्गणमें इस प्रकार पीटा था—

क्या द्विजाति, क्या शूद्र ईश को वेश्या भी भज सकती है!
श्वपचों को भी भक्ति-भावमें शुचिता कब तज सकती है?
अनुभवसे कहता हूँ मैंने उसे कर लिया है बस में।
जो चाहे सो पिये प्रेम से अमृत भरा है इस रस में॥

इस प्रकार उदारतापूर्वक मानव-जातिमात्रके लिये मोक्ष-प्राप्तिके मार्गका द्वार खोल देनेके कारण ही इस परम श्रेयस्कर भागवत-धर्मका संसारव्यापी प्रचार हो रहा है। सभी पन्थोंके अनुयायी जन अन्ततोगत्वा किस-न-किसी रूपमें इसी सात्वत-मार्गका आश्रय लेते हुए देखे जाते हैं। भागवत-धर्ममें एक और भी वशीकरण मन्त्र है, जिससे यह सर्वप्रिय बन रहा है और वह है सभी देवताओंके उपासकोंको, सभी मत-मतान्तरों

एवं सभी धर्मके अनुयायिओंको आकर्षित करनेवाला, भगवद्गीतामें कहा हुआ तथा श्रीमुखसे निकला हुआ यह वचन—

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्॥

श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं, 'हे कुन्तीनन्दन! भले ही विधि-विपरीत ही क्यों न हो अथवा भले ही सोपचार या साधनके अनुसार, पाञ्चरात्र आदि शास्त्रोंके अनुसार न हो, तो भी श्रद्धापूर्वक अन्यान्य देवताओंका भजन करनेवाले मेरा ही भजन-पूजन करते हैं।'

क्या इतनी उदार घोषणा कर देनेके बाद, फिर भी किसी भी धर्मका यह साहस हो सकता है कि सभी धर्मोंके राजा भागवत-धर्मके संसारव्यापी प्रचारमें किसी प्रकारकी बाधा डालनेके विचारसे सामने आवे। यदि नहीं तो इन्हीं अपूर्व सच्चे गुणोंके कारण भक्ति-मार्गका—नारदीय भक्ति-मार्गका, इतना प्रभावशाली एवं संसारव्यापी प्रचार है।

जिस धर्ममें मानव-जातिके सभी नीच-ऊँच लोग अधिकारी बनकर परमगति पा सकते हैं, किसी भी देवको अपना इष्टदेव मान, शुद्ध ईश्वरभावसे भक्ति करनेवाले प्राणी भी जिस धर्मके अन्तर्गत माने गये हैं, और जो प्रत्यक्ष एवं सबसे सरल मार्ग है और जिसके प्रचारका कार्य देवर्षि नारदजी-जैसे सर्वगामी अन्तर्यामीके हाथमें दिया गया हो, उसका संसार-व्यापी प्रचार क्यों न हो?

भक्ति-मार्गकी परम्परा तथा उसके आचार्योंका कुछ वर्णन पाञ्चरात्रशास्त्रकी परम्पराके वर्णनके साथ किया जा चुका है, किन्तु भक्ति-शास्त्रपर अपने-अपने ग्रन्थ जिन आचार्योंने लिखे हैं, उनमेंसे कुछके नाम देवर्षि नारदने दिये हैं। उन्होंने अपने भक्ति-सूत्रके उपान्त्य-सूत्रमें कुमार, व्यास, शुक, शाण्डिल्य, गर्ग, विष्णु, कौण्डिन्य, शेष, उद्धव, आरुणि, बलि, हनुमान् और विभीषण—इन तेरह आचार्योंके नाम भक्त्याचार्यके नामसे दिये हैं। इन नामोंके अन्तमें नारदजीने आदि शब्द भी जोड़ दिया है, जिससे ज्ञात होता है कि इनके अतिरिक्त उस समयतक और भी भक्त्याचार्य हो चुके थे। इनमेंसे भक्तिके सामान्य लक्षणके सम्बन्धमें जिनका कुछ मतभेद है, उनका उल्लेख भी नारदजीने किया है। नारदभक्तिसूत्रमें लिखा है—

तल्लक्षणानि वाच्यन्ते नानामतभेदात्॥ १५॥ पूजादिष्वनुराग इति पाराशर्यः॥ १६॥ कथाधिष्यति गर्गः॥ १७॥ आत्मरत्यविरोधेनेति शाण्डिल्यः ॥ १८॥ नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारिता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति॥ १९॥ अस्त्येवमेवम्॥ २०॥

अर्थात् हम भक्तिके लक्षण विविध प्रकारके मतभेदोंसहित कहते हैं। व्यासजीका मत है कि भगवान्के पूजनादिमें प्रीति करना ही भक्ति है। गर्गाचार्यका मत है—भगवान्के यश-कीर्तन, उनका भजन-पूजन तथा पुराणादिमें प्रीति करना ही भक्ति है। आत्मचिन्तनमें लीन रहना ही भक्ति है, यह शाण्डिल्य ऋषिका मत है, किन्तु मेरा अर्थात् नारदका यह मत है कि सम्पूर्ण कर्मोंको भगवान्के अर्पण कर देना तथा क्षणमात्रके लिये भी भगवान्का विस्मरण होनेपर पश्चात्ताप करना ही भक्ति है और वास्तवमें भक्तिका स्वरूप है भी ऐसा ही। नारदजीके मतानुसार ही शाण्डिल्य ऋषिने अपने बनाये भक्तिदर्शनमें भक्तिका लक्षण लिखा है।

'सा परानुरक्तिरीश्वरे'॥ २॥

अर्थात् ईश्वरके प्रति सम्पूर्ण अनुरागका नाम भक्ति है। इसी प्रकार भक्तिके स्वरूपपर विचार करते हुए लोकमान्य तिलकने गीतारहस्यमें लिखा है 'ब्राह्मी स्थिति या सिद्धावस्थाकी प्राप्ति कर लेना ही इस संसारमें मनुष्यका परम साध्य अथवा अन्तिम ध्येय है। इसके लिये कोरा यह ज्ञान कि 'ब्रह्म निर्गुण' है—किसी कामका नहीं है। दीर्घकालीन नित्य अभ्याससे इस ज्ञानका प्रवेश हृदयमें तथा देहेन्द्रियोंमें भलीभाँति हो जाना चाहिये। साथ ही आचरणद्वारा ब्रह्मात्मैक्य-बुद्धि ही हमारी देहका स्वभाव हो जाना चाहिये। ऐसा होनेके लिये परमेश्वरके स्वरूपका प्रीतिपूर्वक चिन्तन कर मनको तदाकार बना लेना ही एक सुलभ उपाय है। यह मार्ग हमारे देशमें बहुत प्राचीन कालसे प्रचलित है। इसीको उपासना या भक्ति कहते हैं।

भक्ति-सूत्रमें देवर्षि नारदने भक्तिके विषयमें संक्षेपतः सब ही कुछ तो कह डाला है। साथ ही अन्य भक्त्याचार्योंकी अपेक्षा देवर्षि नारदके कथनमें विशेषता भी है। जैसे आरम्भहीमें निज विशेषताका प्रेम-स्रोत प्रवाहित किया है—

'अथातो भक्तिं व्याख्यास्यामः। सा त्वस्मिन् प्रेमरूपा, अमृतस्वरूपा च, यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवत्यमृतो भवति, तृप्तो भवति, यत्प्राप्य न

किञ्चिद्वाञ्छति, न शोचति, न द्वेष्टि, न रमते, नोत्साही भवति, यज्ज्ञात्वा मत्तो भवति, स्तब्धो भवत्यात्मारामो भवति। सा न कामयमाना निरोधरूपत्वात्, निरोधस्तु लोक-वेदव्यापारन्यासः, तस्मिन्ननन्यताद्विरोधिषूदासीनता च, अन्याश्रयाणां त्यागोऽनन्यता, लोकोऽपि तावदेव किन्तु भोजनादिव्यापारस्त्वाशरीरधारणावधि॥'

अर्थात् अब हम साङ्गोपाङ्ग भक्तिका वर्णन करते हैं। परमेश्वरमें परम प्रीति करना ही भक्तिका स्वरूप है और वह भक्ति अमृतस्वरूपिणी है। अर्थात् उसे पाकर मनुष्यका मृत्यु-भय छूट जाता है। इस भक्तिको पाकर और उसके तत्त्वको जानकर पुरुष उन्मत्त हो जाता है, स्तब्ध हो जाता है और आत्माके चिन्तनहीमें निमग्न रहता है। यह भक्ति मनमें किसी प्रकारकी कामना रखनेसे उत्पन्न नहीं होती। क्योंकि यह तो समस्त कामनाओंको रोकनेवाली है। शास्त्र और वेदमें प्रतिपादन कर्मोंके त्यागको निरोध कहते हैं। भगवान्के विषयमें एकनिष्ठ होना और भगवत्-विरोधी जनोंके प्रति उदासीन रहना भी निरोध है। अन्यान्य समस्त आश्रयोंको त्यागकर एकमात्र भगवदाश्रयहीमें रहना, अनन्यता अथवा एकनिष्ठा है। वेदादि शास्त्रोंमें परस्पर विरोध न हो, ऐसे ढंगसे व्यवहार करना तथा वेदादि शास्त्रविरुद्ध विषयोंमें तटस्थ रहना भी अनन्यताका लक्षण है। यह अनन्यता शास्त्र-मर्यादाके अनुसार व्यवहारमें लाने तथा शास्त्रोक्त कर्मोंपर दृढ़ विश्वास रखनेहीसे प्राप्त हो सकती है। शास्त्रोंपर विश्वास न रखकर, शास्त्र-विरुद्ध आचरण करनेसे—मैं कहीं पतित न हो जाऊँ—मनमें ऐसी शङ्का रखकर शास्त्र-विरुद्ध आचरण न करनेहीसे शास्त्राज्ञाका पालन हो सकता है। लौकिक व्यवहार भी तभीतक (अर्थात् जबतक दृढ़ निश्चय न हो) होना चाहिये। किन्तु भोजन, शयन आदि व्यवहार तो देहधारणपर्यन्त करने ही पड़ेंगे।

इसके आगे भक्तिका लक्षण बतलाते हुए देवर्षि नारद कहते हैं, मेरे मतानुसार भक्ति वही है जिसमें सम्पूर्ण कर्मोंको भगवान्के समर्पण कर दिया जाय और भगवान्का एक क्षण-मात्र भी विस्मरण होनेपर पश्चात्ताप हो। जैसे व्रज-गोपिकाओंके प्रेम-भक्तिमें भगवान्के माहात्म्यका विस्मरण हो जानेका अपवाद कभी नहीं आया। क्योंकि माहात्म्य-ज्ञानको भुलाकर, केवल प्रेम करना, जार पुरुषोंके प्रेमके समान कुछ ही काल बाद नष्ट हो जाता है। ऐसे जार-प्रेममें निज प्रियतमके सुखसे स्वयं प्रसन्न होना नहीं है, किन्तु अपने प्रेमका सुख स्वयं ही अनुभव करना है। और—

'सा तु कर्मज्ञानयोगेभ्योऽधिकतरा, फलरूपत्वात्, ईश्वरस्याप्यभिमानि-द्वेषत्वाद्दैन्यप्रियत्वाच्च, तस्य ज्ञानमेव साधनमित्येके, अन्योन्याश्रयत्वमित्यन्ये, स्वयंफलरूपतेति ब्रह्मकुमारः, राजगृहे भोजनादिषु तथैव दृष्टित्वात्, न तेन राजा परितोषः क्षुच्छान्तिर्वा, तस्मात्सैव ग्राह्या मुमुक्षुभिः॥'

अर्थात् वह प्रेमपूर्ण भक्ति ज्ञान, कर्म और योगसे बहुत श्रेष्ठ है, क्योंकि कर्म, ज्ञान और योग साधन हैं और भक्ति इनका फलस्वरूप है। ईश्वरका भी अभिमानी पुरुषोंसे, उनपर अनुग्रह करनेके लिये द्वेष करना और दीन पुरुषोंका हितसाधन करना अर्थात् उनके प्रिय कार्य करना, स्वाभाविक है। किन्हीं आचार्योंका मत है कि भक्ति और ज्ञानका परस्पर अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। अर्थात् भक्तिसे ज्ञान और ज्ञानसे भक्तिकी उत्पत्ति होती है। किन्तु मुझ ब्रह्मकुमार नारदका मत तो यह है कि भक्ति तो स्वयं ही स्वतन्त्र फलस्वरूप है। राजगृहमें भोजनादिके व्यवहारमें ऐसा ही देखनेमें आता है। अतएव भक्ति स्वतन्त्र फलस्वरूप है। क्योंकि 'राजा परम श्रेष्ठ हैं' ऐसे ज्ञानमात्रहीसे राजा प्रसन्न नहीं होता। इसी प्रकार भोज्य पदार्थोंके केवल ज्ञानमात्रसे क्षुधाकी निवृत्ति नहीं होती, किन्तु जैसे राजा सेवा करनेसे प्रसन्न होता है वैसे ही भूख भोज्य पदार्थोंके खानेसे शान्त होती है। अतएव मुक्तिकी कामना रखनेवालोंको उस फलस्वरूप एकमात्र भक्तिहीको ग्रहण करना चाहिये।

भक्ति पाने और उसके साधनकी विवेचना करते हुए देवर्षि नारद कहते हैं—

'तस्याः साधनानि गायन्त्याचार्याः, तत्तु विषमत्यागात्सङ्गत्यागाच्च, अव्यावृतभजनात्, लोकेऽपि भगवद्गुणश्रवणकीर्तनात्, मुख्यतस्तु महत्कृपयैव भगवत्कृपालेशाद् वा, महत्सङ्गस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च, लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव, तस्मिंस्तज्जने भेदाभावत्, तदेव साध्यतां तदेव साध्यताम्॥'

अर्थात् आचार्यलोग, उस भक्तिके प्राप्त करनेके लिये अनेक प्रकारकी साधनाएँ बतलाते हैं; किन्तु वह भक्तिरूप फल विषयोंके परित्यागसे तथा सङ्गतिके त्यागसे अर्थात् एकान्तमें चित्तको स्थिर करनेसे प्राप्त होता है। निरन्तर भगवद्भजन करनेसे भी भक्तिरूप अमृत फल मिल जाता है। इतना ही नहीं, लोकसमूहमें भी भगवद्गुणोंके सुननेसे और उसका वर्णन करनेसे

भी फलस्वरूप भक्तिकी प्राप्ति होती है। किन्तु मुख्य साधन तो यह है कि महापुरुषोंकी कृपाहीसे अथवा भगवान्‌की कृपासे लेशमात्रहीसे वह भक्तिरूप फल प्राप्त हो सकता है। महात्माओंका सत्सङ्ग मिलना तो दुर्लभ है। क्योंकि प्रथम तो सत्सङ्ग जबतक बड़ा भारी पुण्य-फल उदय नहीं होता तबतक नहीं मिलता। यदि सौभाग्यसे महात्माओंका सत्सङ्ग मिल भी जाय तो वह निष्फल भी नहीं जाता अर्थात् सत्समागमका फलस्वरूप भगवद्भक्तिरूपी फलकी प्राप्ति भी अवश्य हो जाती है। अवश्य ही वह सत्समागम भी परमेश्वरकी कृपासे ही प्राप्त होता है। क्योंकि भगवान् और उनके जनोंमें कुछ भी भेद नहीं है। अतएव नारदजी कहते हैं—उसी सत्समागमको प्राप्त करो। उसी सत्समाजरूपी भक्तिके परम साधनको प्राप्त करो।

भक्तिके साधनोंमें सबसे अधिक महत्त्वके साधन अर्थात् सत्समागमका प्रतिपादन करनेके पश्चात् नारदजी भक्तिके बाधक विषयोंका वर्णन इस प्रकार करते हैं—

'दुस्संगः सर्वथैव त्याज्यः, कामक्रोधमोहस्मृतिभ्रंशबुद्धिनाश-सर्वनाशकारणत्वात्, तरङ्गायिता संगात्समुद्रायन्ति, कस्तरति कस्तरति मायां यः संगास्त्यजति यो महानुभावं सेवते निर्ममो भवति, यो विविक्तस्थानं सेवते यो लोकसम्बन्धमुन्मूलयति, निस्त्रैगुण्यो भवति, यो योगक्षेमं त्यजति, यः कर्मफलं त्यजति, कर्माणि संन्यसति, ततो निर्द्वन्द्वो भवति, वेदानपि संन्यसति केवलमविच्छिन्नानुरागं लभते, स तरति स तरति स लोकांस्तारयति॥'

अर्थात् कल्याणमार्गके पथिकको अथवा भक्ति-मार्गके पथिकको दुर्जनोंका समागम सर्वथा त्याग देना चाहिये। क्योंकि दुर्जनोंका समागम क्रमशः काम, क्रोध, मोह, स्मृतिनाश, बुद्धिनाश और अपना सर्वस्व नाश उत्पन्न करनेवाला है अथवा सर्वनाशका कारण है। यद्यपि काम, क्रोधादि दुर्गुण तरङ्गोंकी तरह बहुत थोड़े कालहीमें उठकर विलीन हो जाते हैं तथापि दुर्जनोंकी सङ्गतिके बुरे प्रभावसे ये दुर्गुण समुद्रकी तरह दुस्तर अर्थात् अपार हो जाते हैं। इस प्रश्नका उत्तर कि मायाके पार कौन जाता है? नारदजी इस प्रकार देते हैं—जो सम्पूर्ण सङ्गों अथवा आसक्तियोंको त्याग देता है, जो महाप्रभावशाली परम प्रभुकी उपासना करता है, जो महात्माओंकी सेवा करता है, जो मोहको त्यागकर एकान्त स्थानमें रहता है, जो सांसारिक बन्धनोंको काट डालता है,

जो सत्त्व, रज एवं तम—इन तीनों गुणोंसे मुक्त होता है, जो मनुष्य योगक्षेम*-की प्राप्तिके उपायको त्याग देता है, जो कर्म और कर्मके फलोंको त्याग देता है और जो शत्रु एवं मित्रके प्रति समान व्यवहार करनेवाला समस्वभाव बन जाता है और जो त्रैगुण्यविषयक वेदोंको भी त्याग देता है, वही मनुष्य केवल शुद्ध एवं पूर्ण प्रभुकी भक्ति पाता है और वही तरता भी है। वह स्वयं तर जाता है और अन्य लोगोंको भी संसारसागरसे तारता है।

देवर्षि नारदजी आगे कहते हैं कि उस प्रेमका, उस विशुद्ध भक्तिका स्वरूप यद्यपि लोगोंने वर्णन किया है, तथापि वह अनिर्वचनीय है अर्थात् कहनेमें नहीं आ सकता। जिस प्रकार गूँगा मनुष्य किसी मधुर पदार्थको खाकर उसके मिठासका वर्णन नहीं कर सकता, उसी प्रकार भगवद्भक्तजन, भक्तिके स्वरूपका वर्णन नहीं कर सकते। भक्तिका स्वरूप कभी-कभी भक्तिप्रिय महात्माओंहीमें प्रकट भी होता है। यह भक्तिरूपी प्रेम सत्त्व, रज और तमसे रहित है और कामनाओंसे रहित है। यह प्रतिक्षण बढ़नेवाला, परिपूर्ण, अत्यन्त सूक्ष्म और केवल अनुभवगम्य है। उस परम प्रेमरूपी भक्तिको प्राप्त कर भक्तलोग उसी प्रेमको देखते हैं, उसी प्रेमको सुनते हैं और उसी प्रेमका निरन्तर चिन्तन किया करते हैं। दूसरी गौणी भक्ति भी है, जो सात्त्विकी, राजसी और तामसीगुण-भेदोंसे तथा आर्त, जिज्ञासु और अर्थार्थी तीन प्रकारके भक्त-भेदसे, तीन प्रकारकी है। इस तीन प्रकारकी भक्तियोंमें एक दूसरी भक्तिकी अपेक्षा पूर्व-पूर्व क्रमसे अधिकाधिक कल्याणकारिणी होती है अर्थात् तामसी भक्तिकी अपेक्षा राजसी और राजसीकी अपेक्षा सात्त्विकी भक्ति श्रेष्ठ मानी गयी है। इसी तरह अर्थार्थी भक्तकी अपेक्षा जिज्ञासु और जिज्ञासु भक्तकी अपेक्षा आर्त भक्त श्रेष्ठ माना गया है।

नारदजी कहते हैं कि ईश्वर-प्राप्तिके लिये अन्य साधनोंकी अपेक्षा भक्ति सुलभतर है। क्योंकि भक्ति क्या वस्तु है और वह किस प्रकार की जाती है, इसमें किसी अन्य प्रमाणकी कुछ भी अपेछा नहीं है। क्योंकि भक्ति तो स्वयं प्रमाणस्वरूप है।

इस प्रकार अनेक विषयोंका वर्णन करते हुए भक्तोंके भेद तथा

---

* अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिका नाम योग है और प्राप्त वस्तुकी रक्षाका नाम क्षेम है।

महत्त्वको दिखलाते हुए नारदजीने उपान्तमें जाकर कहा है—

'त्रिसत्यस्य भक्तिरेव गरीयसी भक्तिरेव गरीयसी'॥ ८१॥

अर्थात् भूत, भविष्यत् एवं वर्तमान-कालोंमें अविच्छिन्न, परिपूर्ण यथास्थित रहनेवाले सच्चिदानन्दरूप भगवान्की भक्ति ही सबसे श्रेष्ठ और अन्तमें श्रीमद्भागवतके सप्तम स्कन्धके पाँचवें अध्यायमें वर्णित—

'श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥'

नवधा भक्तिसे अधिक पूर्ण एकादशधा भक्तिका वर्णन किया है। नारदजीने लिखा है।

'गुणमाहात्म्यासक्ति।(१) रूपासक्ति।(२) पूजासक्ति। (३) स्मरणासक्ति)। (४) दासासक्ति। (५) सखासक्ति। (६) वात्सल्यासक्ति। (७) कान्तासक्त्यात्मनिवेदनासक्ति।(८-९) तन्मयासक्ति।(१०) परमविरहासक्ति। (११) रूपैकधाप्येकादशधा भवति' ॥८२॥ (नारदभक्तिसूत्र)

अर्थात् यद्यपि पूर्वोक्त भक्ति एक ही प्रकारकी है, तथापि भगवान्के गुण-चरित्र-वर्णन-श्रवण एवं माहात्म्य-वर्णन-श्रवणमें अनुराग करना, भगवान्के स्वरूप-दर्शनमें अनुराग करना, भगवान्के पूजनमें अनुराग करना, भगवान्के स्मरणमें अनुराग रखना, भगवान्की सेवामें अनुराग रखना, भगवान्में सख्यभावसे अनुराग करना, भगवान्के वात्सल्यभावमें अनुराग रखना, भगवान्में स्वामित्व—पतित्व भावसे अनुराग करना, निज सर्वस्व भगवान्को समर्पण कर उनमें अनुराग करना, भगवत्-स्वरूपमें लीन होनेका अनुराग करना और भगवद्वियोग होनेपर भगवान्को पानेके लिये परमोत्कण्ठारूपी अनुराग करना। इन एकादश अनुरागोंको ही ग्यारह प्रकारकी भक्ति कहते हैं। अवश्य ही सारे संसारके जीव उपर्युक्त लक्षणयुक्त भक्तिके उपासक हो सकते हैं और पूर्वोक्त चार प्रकारकी भक्तिके साथ, यदि इन ग्यारह प्रकारकी भक्तियोंका प्रस्तारभेद करें और फिर कायिक, वाचिक तथा मानसिक भक्तिके भेदोंके साथ उनको गिनें तो भक्तिके बहुसंख्यक भेद हो जाते हैं। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि मानव-जातिके लिये सबसे अधिक कल्याणप्रद और सरल मार्ग देवर्षि नारदप्रतिपादित और संसार-व्यापी भक्ति-मार्ग ही दिखलायी पड़ता है।

बारहवाँ अध्याय

देवर्षि नारद और सामान्य मानव-धर्म—सनातन-धर्मके तीस लक्षण—गार्हस्थ्य-जीवनमें परम-धर्म-पालनपर नारदीय उपदेश

श्रीमद्भागवतके सप्तम स्कन्धमें प्रह्लाद-चरित्र श्रवण करनेके पीछे महाराज युधिष्ठिरने देवर्षि नारदजीसे कहा था कि हे भगवन्! आप तो साक्षात् ब्रह्माजीके पुत्र हैं, योग-समाधि आदि तपस्यामें निरत रहते हैं, आपके समान परम गोपनीय धर्मको जाननेवाला, शान्त, कारुणिक, साधु तथा नारायणपरायण विद्वान् ब्राह्मण, संसारभरमें मुझे कोई नहीं देख पड़ता। अतएव मैं आपसे वर्णाश्रमाचारसहित, मनुष्योपयोगी सनातन-धर्मका वर्णन सुनना चाहता हूँ।

महाराज युधिष्ठिरके इस प्रश्नको सुनकर, देवर्षि नारदजी बोले—

नत्वा भगवतेऽजाय लोकानां धर्महेतवे।
वक्ष्ये सनातनं धर्मं नारायणमुखाच्छ्रुतम्॥
धर्ममूलं हि भगवान् सर्ववेदमयो हरिः।
स्मृतं च तद्विदां राजन् येन चात्मा प्रसीदति॥

अर्थात् भगवान् वासुदेवको प्रणाम करके सांसारिक प्राणियोंको धर्मकी शिक्षा देनेके लिये मैं उस सनातन-धर्मका वर्णन करता हूँ, जो मैंने साक्षात् नारायणके मुखारविन्दसे सुना है। धर्मको हम चार प्रकारसे जान सकते हैं। एक तो वेदसे, दूसरे वेदोंके अविरुद्ध महर्षिरचित स्मृतियोंसे, तीसरे सदाचारसे और चौथे अन्तःकरणकी साक्षीसे। अर्थात् वह भी धर्म है जो न तो वेदोंमें, न स्मृतियोंमें और न सदाचारहीमें पाया जाता है; किन्तु जो वेदों, स्मृतियों और सदाचारके विरुद्ध नहीं है और जिसके अनुष्ठानसे अपना अन्तःकरण प्रसन्न होता है तथा जिसके सम्बन्धमें—

'प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः'

—कविवाक्यके अनुसार अपना अन्तःकरण साक्षी देता है। इस प्रकार

धर्मके साधारण लक्षणोंको बतला, नारदजीने सर्वसाधारणोपयोगी तीस लक्षणोंसे युक्त सनातन-धर्मकी व्याख्या की है। यथा—

सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमो दमः।
अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम्॥
सन्तोषः समदृक् सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः।
नृणां विपर्ययेहेच्छा मौनमात्मविमर्शनम्॥
अन्नद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः।
तेष्वात्मदेवताबुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव॥
श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः।
सेवेज्याऽवनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम्॥
नृणामयं परो धर्मस्सर्वेषां समुदाहृतः।
त्रिंशल्लक्षणवान् राजन् सर्वात्मा येन तुष्यति॥

अर्थात् प्राणियोंका परम कल्याणकारक सत्य वचन बोलना, दया करना, एकादशी, जयन्ती आदि व्रतोपवास तथा स्वधर्मपालनमें कष्टसहनरूपी तप, कायिक, वाचिक एवं मानस शुद्धता, सहिष्णुता, विवेक, मनःसंयम, इन्द्रियोंका संयम, अहिंसा-व्रतपरायणता, ब्रह्मचर्यव्रतपालन, स्वत्वपरित्यागपूर्वक दानशीलता, स्वाधिकारानुकूल जपादि, स्वाध्याय, सरलता, यथाप्राप्त वस्तुओंहीसे सन्तोष, समदर्शी भगवज्जनोंकी सेवा, प्रवृत्त ग्राम्यधर्मसे क्रमशः विरति, निष्काम-भावसे कर्म-फल-त्याग, व्यर्थकी बकवादका त्याग अर्थात् यथासम्भव कम बोलना, अपने शरीरके अतिरिक्त अन्य प्राणियोंमें भी आत्मवत् विचार रखना। अपने अधीनस्थ अन्नादि पदार्थोंको प्राणियोंके हितार्थ यथायोग्य विभाग कर उनमें आत्मबुद्धि तथा परमात्माकी व्याप्तिकी बुद्धि रखना, भगवान्‌की नवधा भक्ति करनेके लिये भगवत्-कथा सुनना, भगवत्-गुणानुवाद-कीर्तन, हरिकी लीलाओंका स्मरण, भगवान्‌की सेवा करना, भगवन्मूर्तियोंका पूजन, भगवान्‌की मूर्तियों तथा भगवज्जनोंमें भगवान्‌की भावनासे साष्टाङ्ग दण्डवत् करना, सदैव विनम्र भावसे रहना, भगवान्‌के प्रति तथा भगवज्जनोंके प्रति दास्यभाव रखना, परमात्माके प्रति सख्यभाव रखना, अपना तन, मन और धन भगवच्चरणारविन्दमें अर्पण करना—ये तीस धर्म मनुष्योंके लिये परम धर्म हैं और इन धर्मोंका यथावत् पालन करनेसे सर्वान्तर्यामी भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं।

निस्सन्देह नारदोक्त तीस लक्षणाक्रान्त सनातन-धर्मका पालन मनुष्यमात्र अपने-अपने अधिकारानुसार करके इस संसारमें परम कल्याण पा सकते हैं और अपना मानव-जीवन सफल कर सकते हैं। भगवान्‌की नवधा भक्तिके सम्बन्धमें अन्यान्य देवोपासकोंका कोई विरोध हो ही नहीं सकता। क्योंकि भगवान् तो स्वयं कहते हैं कि अन्यान्य देवताओंका श्रद्धापूर्वक यजन मेरा ही यजन है—किन्तु मेरा यजन होनेपर भी वह है अविधिपूर्वक किया हुआ। अतएव अन्य समस्त देवोपासकोंके लिये भी सनातन-धर्मका पालन करना सरल है और उनके लिये परम कल्याणप्रद भी है। इस प्रकार सामान्यरूपसे सनातन-धर्मका उपदेश देनेके बाद, नारदजीने चारों वर्णोंका धर्म कहा है और तत्पश्चात् उन्होंने स्त्रियोपयोगी धर्मका बखान किया है। देखिये, देवर्षि नारदजी स्त्रियोंके लिये सनातन-धर्मकी कैसी सुन्दर व्यवस्था देते हैं।

स्त्रीणां च पतिदेवानां तच्छुश्रुषाऽनुकूलता।
तद्बन्धुष्वनुवृत्तिश्च नित्यं तद्व्रतधारणम्॥
सम्मार्जनोपलेपाभ्यां गृहमण्डलवर्तनैः।
स्वयं च मण्डिता नित्यं परिमृष्टपरिच्छदा॥
कामैरुच्चावचैः साध्वी प्रश्रयेण दमेन च।
वाक्यैः सत्यैः प्रियैः प्रेम्णा काले काले भजेत्पतिम्॥
सन्तुष्टाऽलोलुपा दक्षा धर्मज्ञा प्रियसत्यवाक्।
अप्रमत्ता शुचिः स्निग्धा पतिं त्वपतितं भजेत्॥
या पतिं हरिभावेन भजेच्छ्रीरिव तत्परा।
हर्यात्मना हरेर्लोके पत्या श्रीरिव मोदते॥

अर्थात्—पति ही जिनके देवता हैं, उनका सबसे प्रथम धर्म है, पतिकी शुश्रुषा करना और सदैव उनकी आज्ञानुवर्तिनी बनी रहना। पतिके आत्मीय जनोंके प्रति भी सम्मानकी दृष्टि रखना और पातिव्रतको सदैव धारण करना, झाड़बुहार, लीप-पोतकर अपने रहनेके स्थानको साफ-सुथरा और सुसज्जित रखना। अपने शरीरको भी स्वच्छ और कमनीय बनाये रखना और पतिके मनोनुकूल वस्त्राभूषणसे उसे सुसज्जित रखना स्त्रियोंका धर्म है। साध्वी स्त्रियोंको उचित है कि वे अपने मन एवं इन्द्रियोंको संयममें रखकर प्रणयके साथ सत्य एवं मधुर वाणीसे प्रीतिपूर्वक बोलें, अपने पतिके तथा अपने शरीरमें अभेद-

भाव रखे, निषिद्ध दिनोंको छोड़ अन्य दिनोंमें ऋतुस्नानानन्तर समय-समयपर पतिकी सेवा करें। साध्वी स्त्रियोंको चाहिये कि वे यथोपलब्ध पदार्थोंसे सन्तुष्ट रहें, लोलुपतासे बचें और सब कामोंमें अपनी चतुराईसे चढ़ी-बढ़ी रहें। सनातन-धर्मको जानें—विशेषकर, अपना धर्म जानें, सभी प्राणियोंसे सत्य एवं मधुर भाषण करें। आलस्य कभी न करें। कायिकी, वाचिकी एवं मानसी पवित्रता रखें, कोमल स्वभाव रखें, एवं महापातकादिसे दूर रहकर, अपने पतिकी सेवा करें। इस प्रकार जो स्त्री अपने प्यारे पतिको हरिभावसे स्वयं श्रीरूप हो भजती है, वह वैकुण्ठमें हरिरूप अपने पतिके साथ लक्ष्मीके समान आनन्द पाती है।

अवश्य ही देवर्षि नारदजीने स्त्री-जातिके लिये जो धर्म या कर्त्तव्य बतलाये हैं, उनमें बड़े ही उत्तम और शिक्षाप्रद उपदेश हैं। बालब्रह्मचारी, परम त्यागी एवं भगवद्भक्त देवर्षि नारदके लिये इस प्रकारके उत्तम उपदेश देना, जिनमें गार्हस्थ्य दूषणोंसे बचानेके लिये उत्तम शिक्षाएँ दी गयी हैं, देवर्षि नारदके उपदेशानुसार यदि कलिकालकी स्त्रियाँ चलें तो वे सचमुच गृहलक्ष्मियाँ बन सकती हैं और दुःखमय गार्हस्थ्य जीवनको आनन्दमय बना सकती हैं तथा अन्तमें परम श्रेय प्राप्त कर सकती हैं। स्त्री-जातिका धर्म निरूपण कर, देवर्षि नारदने सङ्कर-जातियोंके लिये भी धर्मोपदेश दिया है। नारदजीने कहा है—अपने-अपने कुलके सदाचारके अनुसार चोरी-चमारी आदि पाप-वृत्तियोंको त्यागकर, आचरण करनेसे और सनातन-धर्मका पालन करनेसे, उन सङ्कर-जातियों तथा नीचातिनीच जातियोंका भी परम कल्याण होता है। अपने धर्मको बुरा समझ, दूसरे धर्मको ग्रहण करना शास्त्रने वर्जित किया है। नारदजीने इसके सम्बन्धमें लिखा है—

प्रायः स्वभावविहितो नृणां धर्मो युगे युगे।
वेददृग्भिः स्मृतो राजन् प्रेत्य चेह च शर्मकृत्॥

अर्थात् हे राजन्! प्रायः ऐसे धर्म युग-युगमें स्वभावानुसार लोगोंके लिये बतलाये जाते हैं, फिर भी मनुष्य चाहे कुलीन हो अथवा अकुलीन, वे तो धर्मशास्त्र-प्रतिपादित निज धर्म-वृत्तियोंके अनुसार आचरण करनेहीसे उभय लोकोंमें कल्याणपात्र बनते हैं। अर्थात् अपना धर्म ही सबके लिये कल्याणप्रद होता है। दूसरोंके धर्म भले ही देखनेमें अच्छे जान पड़ें, किन्तु वे कल्याणप्रद नहीं हैं।

नारदजी कहते हैं अपनी स्वाभाविक धर्मवृत्तियोंसे युक्त कर्म करते-करते मनुष्य उस वृत्तिसे धीरे-धीरे मुक्त हो जाता है और उस अपनी वृत्तिको

त्यागकर अन्तमें वह निर्गुणताको अर्थात् अविकारताको प्राप्त हो जाता है। जिस प्रकार बारम्बार किसी खेतमें बीज बोनेसे वह खेत कुछ दिनों बाद उर्वराशक्तिसे वञ्चित हो जाता है और फिर उस खेतमें कोई चीज पैदा नहीं होती, उसी प्रकार स्व-कर्म-निरत पुरुष स्व-कर्म-फलको नष्टकर अन्तमें निर्गुण हो जाता है। अतएव प्रत्येक मनुष्यको अपनी धर्मवृत्तियोंका पालन करना चाहिये और अपने शास्त्रप्रतिपादित कर्मोंको करते रहना चाहिये।

वर्णधर्म, स्त्रीधर्म तथा अन्य जातियोंके धर्मोंका बखान कर नारदजीने आश्रमधर्मोंका वर्णन किया है। तदनन्तर आपने पाञ्चरात्रशास्त्रमें वर्णित भागवत-धर्म अथवा प्रपत्तिमार्गका परमहंसधर्मके नामसे उल्लेख किया है। परमहंसधर्मको सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरने कहा था—हे देवर्षे! आपने जिस परम कल्याणकारी परमहंसधर्मका वर्णन किया है और जिस परमहंसपदका लक्षण बतलाया है, उस परमहंसपदको हम लोगों-जैसे गृहस्थ, जिनकी बुद्धि घरेलू कामोंमें फँसी रहनेके कारण मलिन हो रही है, किस उत्तम उपायसे तथा किस विधिसे पा सकते हैं?

महाराज युधिष्ठिरके इस प्रश्नको सुनकर परमकृपालु देवर्षि नारदजीने गृहस्थोंके लिये परम कल्याणप्रद भागवत-धर्मका सारांश इस प्रकार कहा है—

गृहेष्ववस्थितो राजन् क्रियाः कुर्वन् गृहोचिताः।
वासुदेवार्पणं साक्षादुपासीत महामुनीन्॥
शृण्वन् भगवतोऽभीक्ष्णमवतारकथाऽमृतम्।
श्रद्दधानो यथाकालमुपशान्तजनावृतः॥
सत्सङ्गाच्छनकैः सङ्गमात्मजायात्मजादिषु।
विमुच्येन्मुच्यमानेषु स्वयं स्वप्नवदुत्थितः॥
यावदर्थमुपासीनो देहे गेहे च पण्डितः।
विरक्तो रक्तवत्तत्र नृलोके नरतां न्यसेत्॥
ज्ञातयः पितरौ पुत्रा भ्रातरः सुहृदोऽपरे।
यद्वदन्ति यदिच्छन्ति चानुमोदेत निर्ममः॥
दिव्यं भौमं चान्तरिक्षं वित्तमच्युतनिर्मितम्।
तत्सर्वमुपभुञ्जान एतत्कुर्यात्स्वतो बुधः॥
यावद्भ्रियेत जठरं तावत्स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥

मृगोष्ट्रखरमर्काखुसरीसृप्खगमक्षिकाः ।
आत्मनः पुत्रवत्पश्येत्तैरेषामन्तरं कियत्॥
त्रिवर्गं नातिकृच्छ्रेण भजेत गृहमेध्यपि।
यथादेशं यथाकालं यावद्दैवोपपादितम्॥

अर्थात् हे राजन्! आप इस बातका भय न करें कि गृहस्थोंके लिये मोक्ष-जैसा कष्टसाध्य फल प्राप्त होना कठिन है। गृहस्थको भी सहजमें मोक्षफल मिल जाता है। उपाय यह है कि गृहस्थ पुरुष गृहस्थाश्रममें रहकर भी शास्त्रविहित निज कर्त्तव्योंका पालन करे और जो कुछ सत्कर्म करे, उन सबका फल वासुदेवभगवान्‌को अर्पित कर दे। वह महात्माओं और महामुनियोंकी सेवा करे। भगवत्-अवतार-सम्बन्धी कथामृतको श्रद्धासहित बारम्बार सुने तथा शान्त जनोंके साथ कथामृत पान करे। यही नहीं, बल्कि सत्सङ्गके प्रभावसे अपनी स्त्री और पुत्रादिके सङ्गसे छूट जाय। स्त्री-पुत्रादि आत्मीय जनोंसे छूट जाना उसको उचित है, क्योंकि वे लोग तो उसे स्वयं छोड़नेहीवाले हैं। जिस प्रकार जागनेपर स्वप्नावस्थाके कौटुम्बिक प्रेमको मनुष्य त्याग देता है। उसी प्रकार अपने आत्मीय जनोंसे उसे छुटकारा पाना चाहिये। विज्ञ मनुष्योंको उचित है कि अपना देह और अपने गेहसे उतना ही प्रयोजन रखें, जितना कि लोकयात्राके लिये नितान्त आवश्यक है। मनुष्यको अधिक ममता न रखनी चाहिये। अर्थात् गृहस्थको उचित है कि वह पूर्ण विरक्त होकर भी अपनी स्त्री और अपने पुत्रादिमें अनुरक्तके समान व्यवहार रखता हुआ भी इस मर्त्यलोकमें निज मानवजीवन सफल करे। जातिके लोग, भाई-बन्धु, पुत्र, मित्रादि आत्मीय जन जो कुछ कहें या इच्छा करें, ममतारहित हो उन सबके सन्तोषार्थ उसका अनुमोदन करे। बड़े कड़े परिश्रमसे उत्पन्न दिव्य धन—अन्नादि यथाविधि प्राप्त भौमधन—रत्न-धातु आदि तथा अकस्मात् प्राप्त जो आन्तरिक्ष सम्पत्ति—फल आदि हैं और ईश्वरेच्छासे प्राप्त जो धन-धान्यादि सम्पत्ति है— इन सबको भगवत्-प्रदत्त मानकर उपभोग करे; किन्तु जितने अन्नादिसे निज उदरकी पूर्ति हो जाती है, उतनेहीको अपना समझे। क्योंकि उतना ही अन्नादि मनुष्यका होता है। इससे अधिक अन्न-धनादि जो मनुष्य अपनाता है या उसमें अपनेपनका अभिमान करता है वह चोर है और दण्डनीय है। मृग, वानर, सर्प, मक्खियाँ आदि जीव तथा अपने पुत्र-कलत्रादिके बीच भेदभाव न रखे; अर्थात् प्राणिमात्रको अपने पुत्र-कलत्रादिके समान समझे—किसी प्रकारका अन्तर न माने। गृहस्थाश्रमी

भी काम, अर्थ तथा धर्मको अधिकताके साथ सेवन न करे, प्रत्युत जैसा देश, काल हो और जितना भगवान्‌ने दे रखा हो, तदनुसार उतनेहीसे सन्तोष करे और अपना कालक्षेप करे।

जह्याद्यदर्थे स्वप्राणान् हन्याद्वा पितरं गुरुम्।
तस्यां स्वत्वं स्त्रियां जह्याद्यस्तेन ह्यजितो जितः॥
कृमिविड्भस्मनिष्ठान्तं क्वेदं तुच्छं कलेवरम्।
क्व तदीयरतिर्भार्या क्वायमात्मा नभश्छदिः॥
सिद्धैर्यज्ञावशिष्टार्थैः कल्पयेद्वृत्तिमात्मनः।
शेषे स्वत्वं त्यजन् प्राज्ञः पदवीं महतामियात्॥

अर्थात् जिस तृष्णारूपिणी स्त्रीके लिये लोग अपने प्राण दे देते हैं, कट मरते हैं और अपने पिता एवं अन्यान्य गुरुजनोंको भी मार डालते हैं, उस स्त्रीसे अथवा तृष्णासे जिसने ममतापूर्ण स्नेहको ज्ञानदृष्टिसे छोड़ दिया है, उस अजित पुरुषके लिये भगवान् वासुदेवका अपने वशमें कर लेना कौन बड़ी बात है? कहाँ तो कृमि, भस्म और विष्ठाके रूपमें परिणत होनेवाला नाशवान् यह शरीर और वह स्त्री, जिसकी प्रीति-रीति इसी शरीरके लिये होती है और कहाँ वह आदि, आविनाशी और सर्वव्यापक परमात्मा और उसका सर्व-कल्याणकारी स्वरूप? अर्थात् दोनोंमें बहुत बड़ा अन्तर है। अतएव मनुष्यको गार्हस्थ्य जीवनमें रहकर भी चाहिये कि दिखावटी अनुराग रखते हुए भी स्त्रीसे तथा तृष्णारूपी स्त्रीसे सच्चा अनुराग न करे—बल्कि सच्चा अनुराग परमात्मामें करे। अपने पुरुषार्थसे जो कुछ अन्न-फलादि प्राप्त हो, उससे शास्त्रविहित पञ्चमहायज्ञादि कर, यज्ञावशिष्ट अन्नादिसे अपना निर्वाह करे और आहार-वस्त्रादि जो कुछ बचे, उसे अपना न समझे अर्थात् उससे आतिथ्य या साधु-सेवा करे। ऐसा करनेसे गृहस्थ भी परमहंसपदके समान महत्त्वके पदको पाता है और जीवन्मुक्त कल्याणमार्गका पथिक हो सर्वसुखसम्पन्न हो जाता है।

इसके पश्चात् नारदजीने ब्राह्मणों तथा पुण्यकाल, तीर्थ-स्थानादिद्वारा देश, काल, पात्रके अनुसार देव, पितृकार्यरूपसे धर्मका वर्णन किया है और पात्रका उल्लेख करते हुए अन्तमें यह उपदेश दिया है—

पात्रं त्वत्र निरुक्तं वै कविभिः पात्रवित्तमैः।
हरिरेवैक उर्वीश यन्मयं वै चराचरम्॥

देवर्ष्यर्हत्सु वै सत्सु तत्र ब्रह्मात्मजादिषु।
राजन् यदग्रपूजायां मतः पात्रतयाऽच्युतः॥
जीवराशिभिराकीर्ण आण्डकोशाङ्घ्रिपो महान्।
तन्मूलत्वादच्युतेज्या सर्वजीवात्मतर्पणम्॥
पुराण्यनेन सृष्टानि नृतिर्यगृषिदेवताः।
शेते जीवेन रूपेण पुरेषु पुरुषो ह्यसौ॥
तेष्वेषु भगवान् राजंस्तारतम्येन वर्तते।
तस्मात्पात्रं हि पुरुषो यावानात्मा यथेयते॥

अर्थात् हे राजन्! यद्यपि पात्रवेत्ता लोगोंने पात्रके सम्बन्धमें बहुत कुछ कहा है, तथापि सबसे बढ़कर पात्र तो श्रीमन्नारायण हैं। क्योंकि यह सूचना चराचरात्मक संसार नारायणमय है। इसीलिये आपके राजसूय-यज्ञमें अग्रपूजाके समय अनेक पूज्यपाद देवताओं, ऋषियों, महात्माओं एवं ब्रह्मपुत्रादिके उपस्थित होते हुए भी भीष्मपितामहने अग्रपूजा सर्वाग्रपूज्य श्रीकृष्णभगवान्‌की करवायी थी। समस्त जीवराशियोंसे परिपूर्ण यह ब्रह्माण्ड एक विशाल वृक्षके समान है। इस वृक्षकी जड़ भगवान् वासुदेव हैं। अतएव भगवान्‌का पूजन करनेसे समस्त जीवोंकी तृप्ति हो जाती है। समस्त पुर अर्थात् शरीररूपी पुरोंमें शयन करते हैं। अतएव इनका नाम पुरुष रखा गया है। हे राजन्! उन समस्त मनुष्यादिके शरीरमें जन्म, संस्कार, तप, विद्या, आचार आदिके तारतम्यभेदसे भगवान् सदैव वर्तमान रहते हैं। इसीसे मनुष्योंकी पात्रताका विचार करना चाहिये।

आगे चलकर नारदजीने सनातन-धर्मके पालनका उपाय बड़ा ही सुन्दर बतलाया है। नारदजी कहते हैं—

सन्तुष्टस्य निरीहस्य स्वात्मारामस्य यत्सुखम्।
कुतस्तत्कामलोभेन धावतोऽर्थेहया दिशः॥
सदा सन्तुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः।
शर्कराकण्टकादिभ्यो यथोपानत्पदः शिवम्॥
सन्तुष्टः केन वा राजन्न वर्तेतापि वारिणा।
औपस्थ्यजैह्व्यकार्पण्याद्गृहं पालायते जनः॥
कामस्यान्तं च क्षुत्तृड्भ्यां क्रोधस्यैतत्फलोदयात्।
जनो याति न लोभस्य जित्वा भुक्त्वा दिशो भुवः॥

पण्डिता बहवो राजन् बहुज्ञाः संशयच्छिदः।
सदसस्पतयोऽप्येके असन्तोषात्पतन्त्यधः॥
असंकल्पाज्जयेत्कामं क्रोधं कामविवर्जनात्।
अर्थानर्थेक्षया लोभं भयं तत्त्वावमर्शनात्॥
आन्वीक्षिक्या शोकमोहौ दम्भं महदुपासया।
योगान्तरायान्मौनेन हिंसां कायाद्यनीहया॥
कृपया भूतजं दुःखं दैवं जह्यात्समाधिना।
आत्मजं योगवीर्येण निद्रां सत्त्वनिषेवया॥
रजस्तमश्च सत्त्वेन सत्त्वं चोपशमेन च।
एतत्सर्वं गुरौ भक्त्या पुरुषो ह्यंजसा जयेत्॥
यस्य साक्षाद्भगवति ज्ञानदीपप्रदे गुरौ।
मर्त्यासद्धीः श्रुतं तस्य सर्वं कुञ्जरशौचवत्॥
एष वै भगवान्साक्षात्प्रधानपुरुषेश्वरः।
योगेश्वरैर्विमृग्याङ्घ्रिर्लोको यं मन्यते नरम्॥

अर्थात् हे राजन्! जो आनन्द सन्तोषी, निरीह और आत्माराम पुरुषको प्राप्त होता है, वह उनको प्राप्त नहीं होता जो कामनाओंके वशीभूत हों, चारों ओर दौड़ा करते हैं। सन्तोषी मनुष्यके लिये संसारमें सर्वत्र सुख-ही-सुख है। क्योंकि जूते पहनकर चलनेवालेको काँटोंका और (गर्म या सर्द) बालूका भय नहीं रहता। उनके लिये तो चारों ओर चर्माच्छादित मानो सुन्दर मार्ग बना हुआ रहता है। हे राजन्! सन्तोषी पुरुषके लिये कोई काम असम्भव नहीं है। और तो क्या—वह केवल एक लोटेसे अपने सब काम कर सकता है; किन्तु असन्तोषी पुरुष उपस्थ, जिह्वा और इन्द्रियोंके भोगार्थ कुत्तेकी तरह दर-दर मारा-मारा फिरता है और हर जगह उसका अपमान होता है। भूख-प्यास सहनेसे काम अपने-आप शान्त हो जाता है और शत्रुको जीतनेसे क्रोध शान्त हो जाता है; किन्तु लोभ बड़ा प्रबल है; उसकी शान्ति कुबेरके धन तथा उदयास्तके बीचकी समूची पृथिवीका राज्य पानेपर भी नहीं हो सकती। हे राजन्! बड़े-बड़े ज्ञानी, संसारका रहस्य जाननेवाले और बड़े-बड़े जटिल प्रश्नोंको हल करनेवाले सभाओंके सभापति भी सन्तोषके अभावसे घोर नरकगामी हुए हैं। अतएव कल्याणमार्गके पथिक गृहस्थको चाहिये कि सङ्कल्पको त्यागकर क्रोधको जीते, धनको सब अनर्थोंका मूल

समझ और उसे त्यागकर लोभको जीते और तत्त्वानुसन्धानद्वारा भयको जीते। ब्रह्मविद्याके प्रभावसे शोक और मोहको जीते, महापुरुषोंकी उपासनासे अर्थात् उनके सत्सङ्गमें रहकर दम्भको जीते। मौनव्रत धारणकर भोगके विघ्नरूप मिथ्या वार्तालापका करना त्यागे; असत् चेष्टाओंको त्यागकर अनेक प्रकारकी हिंसावृत्तिको जीते। जिन प्राणियोंसे भय प्रतीत होता हो, उन्हींसे प्रेम करके भूतज दुःखोंको जीते। दैवकृत क्लेशोंको समाधिसे जीते। योगबलसे जीवात्माके कष्टोंको जीते और सात्त्विक भोज्य पदार्थोंका सेवन कर निद्राको जीते। सत्त्वगुणसे रजोगुण एवं तमोगुणको जीते और शान्तिसे सत्त्वगुणको जीते। इस प्रकार भिन्न-भिन्न विकारोंको जीतनेके साधन कहे गये हैं, अथवा यों भी कह सकते हैं कि इन विकारोंसे बचनेके लिये ये उपाय बतलाये गये हैं। किन्तु संसारमें गुरुभक्ति ही एक ऐसी प्रबल शक्ति है कि जिसके द्वारा मनुष्य बिना ही प्रयास तीनों लोकोंको जीत सकता है। हृदयमें ज्ञान-दीपकका प्रकाश करनेवाले साक्षात् गुरु भगवान्‌को जो अपने ही समान मनुष्य समझता है, तथा इस भावनाको रखकर उनसे जो ज्ञानोपदेश प्राप्त करता है, वह व्यर्थ है और उसका वह ज्ञानलाभ गजस्नानकी तरह व्यर्थ है। गुरुरूपी साक्षात् भगवान् प्रधान पुरुष ईश्वर श्रीकृष्ण हैं, उनके चरणोंकी खोजमें ही बड़े-बड़े योगेश्वर रहा करते हैं, किन्तु उनको भी सांसारिक लोग अपने समान मनुष्य ही समझते हैं। वे समझते हैं कि इन गुरुजीके भी हमारे ही समान माता, पिता, स्त्री, पुत्र, मित्र, बन्धु-बान्धवादि हैं। फिर इन्हें हम मनुष्य क्यों न मानें? किन्तु उनका ऐसा समझना एक भारी भ्रम है।

अनेक प्रकारसे अध्यात्मज्ञानका प्रतिपादन करते हुए अन्तमें सबका सारभूत ज्ञान नारदजीने निम्न भाँति वर्णन किया है—

यद् यस्य वानिषिद्धं स्याद्येन यत्र यतो नृप।
स तेनेहेत कर्माणि नरो नान्यैरनापदि॥
एतैरन्यैश्च वेदोक्तैर्वर्तमानः स्वकर्मभिः।
गृहेप्यस्य गतिं यायाद्राजंस्तद्भक्तिभाङ्नरः॥
यथा हि यूयं नृपदेवदुस्त्यजादापद्‌गणादुत्तरतात्मनः प्रभोः।
यत्पादपङ्केरुहसेवया भवानहारषीन्निर्जितदिग्गजः क्रतून्॥
धर्मस्ते गृहमेधीयो वर्णितः पापनाशनः।
गृहस्थो येन पदवीमञ्जसा न्यासिनामियात्॥

न यस्य साक्षाद्भवपद्मजादिभी रूपं धिया वस्तुतयोपवर्णितम्।
मौनेन भक्तयोपशमेन पूजितः प्रसीदतामेष स सात्वतां पतिः॥

अर्थात्—'हे राजन्! जिस यत्नसे, जिसके पाससे, जिस स्थानपर, जिस द्रव्यका, जिस मनुष्यके लिये शास्त्रने निषेध-सा किया है, उस यत्नसे, उसके पाससे, उस स्थानपर, उस द्रव्यसे वह मनुष्य वह कर्म करे और जबतक आपत्तिकाल उपस्थित न हो, तबतक निज शास्त्रोक्त कर्मोंका परित्याग न करे। हे राजन्! पूर्वोक्त वर्णाश्रमादि कर्म तथा वेदोक्त भक्तिमार्गसे भगवान्में भक्ति करनेसे मनुष्य अपने घरमें रहकर भी परमपद पा सकता है। हे नृपेन्द्र! ये समस्त बातें तो साधारण जनोंके लिये कही गयी हैं; किन्तु भगवद्भक्तोंके लिये तो एकमात्र भगवद्भक्ति ही उनके समस्त कार्यों अथवा मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली है। देखिये न, यह केवल भक्तिका प्रभाव और भगवान्के अनुग्रहहीका फल था कि आप बड़ी-बड़ी विपत्तियोंसे साफ बच गये, दिग्विजय किया और दिग्दिगन्तरमें विजयका डंका बजाया तथा बड़े-बड़े यज्ञ किये। हे राजन्! मनुष्योंके पापोंको नष्ट करनेवाला गृहस्थोंका परम धर्म मैंने आपसे कहा। इसका पालन करनेसे गृहस्थ बिना प्रयास उस परम पदवीको पा सकते हैं, जिसे इतर संसारीजन बहुत परिश्रम करके पाते हैं। हे राजन्! जिन परमात्माके साक्षात् स्वरूप अर्थात् यथार्थ स्वरूपको शिव, ब्रह्मादि देवगण भी नहीं जान पाते हैं और इसीसे वे उसका यथार्थ वर्णन भी नहीं कर सकते, और अन्तमें मौन हो तथा इन्द्रियोंको शान्त कर केवल भक्तिमार्गहीसे उनका पूजन किया करते हैं; वे ही भक्तवत्सल, परम कृपालु भगवान् हम सबपर परम प्रसन्न हों।'

इस प्रकार नारदजीने परम त्यागी होकर भी गृहस्थोंके उपकारके लिये गृहस्थोपयोगी परम कल्याणप्रद धर्मका वर्णन कर महाराज युधिष्ठिरको सन्तुष्ट किया। इसमें सन्देह नहीं कि उक्त सनातनधर्म, वर्णाश्रमधर्म, स्त्रीधर्म, अन्त्यजादिधर्म तथा सबके अन्तमें गृहस्थोंके विरक्तधर्ममें पद-पदपर भागवत-धर्महीका प्रकाश दिखलायी देता है और नामान्तर होनेपर भी नारदजीका यह धर्मोपदेश शुद्ध भगवद्भक्तिका ही उपदेश कहा जा सकता है।

तेरहवाँ अध्याय

शिव-पार्वती-विवाहमें नारदजीकी परम सहायता—पार्वतीजीके शारीरिक लक्षणोंका वर्णन

वर्तमान कल्पमें नारदजी अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रतधारी कहे गये हैं। नारदजीका वैराग्य और उनकी भगवद्भक्ति संसार-प्रसिद्ध है। जितना अनुराग नारदजीमें गार्हस्थ जीवनके प्रति दिखलायी देता है, गृहस्थोंके उद्धारकी चिन्ता जितनी देवर्षि नारदजीको है और जितना उपकार गृहस्थोंका नारदजीद्वारा हुआ है, उतना तो क्या, कदाचित् उसका एक अंश भी उपकार अन्य किसी त्यागी ऋषि, महर्षि एवं देवर्षिने न किया होगा। जिस समय जगन्माता सती अपने शरीरको त्यागकर शैलराज हिमालयके घरमें अवतीर्ण हुई थीं, और जिस समय वे वयस्का हुईं, उस समय उनके पिता हिमालय और माता मैनाको उनके विवाहकी चिन्ताने आ घेरा। उस चिन्ताके समय देवर्षि नारदने उन दोनोंको धीरज बँधाया था। गोस्वामी तुलसीदासजीने इस प्रसङ्गका पद्मपुराणके आधारपर निज रामायणमें सुन्दर वर्णन किया है। गोस्वामीजीके वर्णनको देखनेसे पता चलता है कि देवर्षि नारदजीका गृहस्थोंके प्रति कैसा अनुराग था। जिस समय वे शैलराज हिमालयके घरपर गये, उस समयका वर्णन गोलोकवासी गोस्वामी तुलसीदासजीने रामायणमें निम्न भाँति किया है—

नारद समाचार सब पाये। कौतुकही गिरि गेह सिधाये॥
सैलराज बड़ आदर कीन्हा। पद पखारि बर आसन दीन्हा॥
नारिसहित मुनि पद सिर नावा। चरन सलिल सब भवनु सिंचावा॥
निज सौभाग्य बहुत गिरि बरना। सुता बोलि मेली मुनि चरना॥

त्रिकालग्य सर्बग्य तुम गति सर्वत्र तुम्हारि।
कहहु सुताके दोष गुन मुनिबर हृदय बिचारि॥

कह मुनि बिहँसि गूढ़ मृदु बानी। सुता तुम्हारि सकल गुन खानी॥
सुन्दर सहज सुसील सयानी। नाम उमा अम्बिका भवानी॥
सब लच्छन सम्पन्न कुमारी। होइहि सन्तत पियहि पिआरी॥

सदा अचल एहिकर अहिबाता। एहिसे जसु पइहहिं पितु माता॥
होइहि पूज्य सकल जग माहीं। एहि सेवत कछु दुर्लभ नाहीं॥
एहिकर नाम सुमिरि संसारा। तिय चढ़िहहिं पतिब्रत असि धारा॥
सैल सुलच्छनि सुता तुम्हारी। सुनहु जे अब अवगुन दुइ चारी॥
अगुन अमान मात पितु हीना। उदासीन सब संशय छीना॥

योगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल बेष।
अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि परी हस्त अस रेष॥

सुनि मुनि गिरा सत्य जिय जानी। दुख दम्पतिहि उमा हरषानी॥

....

कह मुनीस हिमवन्त सुनु जो बिधि लिखा लिलार।
देव दनुज नर नाग मुनि कोउ न मेटनहार॥

तदपि एक मैं कहौं उपाई। होय करै जो दैव सहाई॥
जस बर मैं बरनेउँ तुम पाहीं। मिलहि उमहि कछु संशय नाहीं॥
जे जे बरके दोष बखाने। ते सब सिवपहँ मैं अनुमाने॥
जौ बिबाह संकर सन होई। दोषौ गुन सम कह सब कोई॥

....

साधु सहज समरथ भगवाना। इहि बिबाह सब बिधि कल्याना॥
दुराराध्य पै अहहिं महेसू। आशुतोष पुनि किये कलेसू॥
जौ तप करै कुमारि तुम्हारी। भाविउ मेटि सकैं त्रिपुरारी॥
यद्यपि बर अनेक जग माहीं। इहि कहँ सिव तजि दूसर नाहीं॥

....

अस कहि नारद सुमिरि हरि गिरिजहिं दीन असीस।
होइहि यहि कल्याण अब संसय तजहु गिरीस॥

इस प्रसङ्गको पद्मपुराणके सृष्टिखण्डमें विशेष विस्तारके साथ लिखा गया है। इसमें लिखा है कि जिस समय हिमालयके घरमें पार्वतीजीका प्रादुर्भाव हुआ और स्वकार्य-साधननिमित्त जिस समय देवताओंने पार्वतीका विवाह शिवजीके साथ करवाना चाहा, उस समय देवराज इन्द्रने इस कामके लिये देवर्षि नारदको उपयुक्त समझा था। पद्मपुराणमें लिखा है—

एतस्मिन्ननन्तरे शक्रो नारदं देवसम्मतम्।
देवर्षिमथ संस्मार कार्यसाधनसत्वरः॥

स तु शक्रस्य विज्ञाय काङ्क्षितं भगवांस्तदा।
आजगाम मुदा युक्तो महेन्द्रस्य निवेशनम्॥
तं तु दृष्ट्वा सहस्राक्षः समुत्थाय महासनात्।
यथार्हेण तु पाद्येन पूजयामास वासवः॥
शक्रप्रणिहितां पूजां प्रतिगृह्य यथाविधि।
नारदः कुशलं देव पपृच्छत्पाकशासनम्॥
वेत्स्येव तत्समस्तं त्वं तथापि परिचोदितः।
निवृत्तिं परमां याति निवेद्यार्थं सुहृज्जने॥
तद्यथा शैलजा देवी योगं यायात् पिनाकिना।
शीघ्रं तथोद्यमः सर्वैरस्मत्पक्षैर्विधीयताम्॥

अर्थात् पार्वतीजीका विवाह महादेवजीके साथ शीघ्र ही कैसे हो और कौन करावे—इन बातोंपर इन्द्रके दरबारमें विचार हो ही रहा था कि इतनेमें देवपूजित देवर्षि नारद हर्षित होते हुए वहाँ जा पहुँचे। उन्हें आते देख सहस्राक्ष इन्द्र सम्मानप्रदर्शनार्थ सिंहासन छोड़ उठ खड़े हुए और उनका अर्घ्य-पाद्यसे यथाविधि पूजन किया। इन्द्रका किया हुआ पूजन ग्रहण कर नारदजीने उनसे क्षेमकुशलसम्बन्धी प्रश्न किया। उत्तरमें इन्द्रने कहा—भगवन्! यद्यपि आप हमारे कुशल-क्षेमको तथा हमारे अर्थको भलीभाँति जानते हैं, तथापि अपने हितैषियोंसे मनकी बात खोलकर कह देनेसे मनको शान्ति प्राप्त होती है। अतएव हम अपना प्रयोजन आपसे कहते हैं। हिमालयकी कन्या पार्वती देवी जिस उपायसे अति शीघ्र भगवान् शङ्करको प्राप्त हो, आप तथा हमारे पक्षके अन्य समस्त जनोंको वही करना चाहिये।

देवराज इन्द्रके वचनोंको सुनकर देवर्षि नारद हिमालय पर्वतके यहाँ गये। वहाँ हिमालयने उनका यथाविधि आगत-स्वागत एवं पूजन किया। नारदजीने कुशल-प्रश्न पूछनेके बाद हिमालयकी प्रशंसा की। इतनेमें हिमालयपत्नी मैना अपनी सखी-सहेलियों और पार्वतीसहित वहाँ जा पहुँचीं, जहाँ देवर्षि नारद और शैलराज हिमालयमें वार्तालाप हो रहा था। उस समयका वर्णन पद्मपुराणमें इस प्रकार दिया गया है—

तं दृष्ट्वा तेजसो राशिं मुनिं शैलप्रिया तदा।
ववन्दे गूढवदना पाणिपद्मकृताञ्जलिः॥

तां विलोक्य महाभागां देवर्षिरमितद्युतिः।
आशीर्भिरमृतोद्गाररूपाभिस्तां व्यवर्द्धयत्॥
ततो विस्मितचित्ता तु हिमवद्गिरिपुत्रिका।
उदैक्षन्नारदं देवी मुनिमद्भुतरूपिणम्॥
एहि वत्सेति साप्युक्ता ऋषिणा स्निग्धया गिरा।
कण्ठे गृहीत्वा पितरमङ्के सा तु समाविशत्॥
उवाच मातां तां देवीमभिवन्दय पुत्रिके।
भगवन्तं तपोधन्यं पतिं प्राप्स्यसि सम्मतम्॥
इत्युक्ता तु ततो मात्रा वस्त्रेण पिहितानना।
किञ्चित्कम्पितमूर्द्धा तु वाक्यं नोवाच किञ्चन॥
ततः पुनरुवाचेदं वाक्यं माता सुतां तदा।
वत्से वन्दय देवर्षिं ततो दास्यामि ते शुभम्॥
रत्नक्रीडनकं रम्यं स्थापितं यच्चिरं मया।
इत्युक्त्वा तु ततो वेगादुद्धृत्य चरणौ तदा॥
ववन्दे मूर्ध्नि सन्धाय करपङ्कजकुड्मलम्।
कृते तु वन्दने तस्या माता सखिमुखेन तु॥
चोदयामास शनकैस्तस्याः सौभाग्यदर्शिताम्।
शरीरलक्षणानाञ्च परिज्ञानाय कौतुकात्॥
चोदितः शैलमहिषी सख्या मुनिवरस्ततः।
स्मिताननो महाभागो वाक्यं प्रोवाच नारदः॥
न जातो स्याः पतिर्भद्रे लक्षणैश्च विवर्जितः।
उत्तानहस्ता सततं चरणौ व्यभिचारिभिः॥
सुच्छाया स्या भविष्येयं किमन्यद्बहुभाष्यते।
....॥

अर्थात् उन तपस्वी देवर्षि नारदको देख हिमालयपत्नी मैनाने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। तब उसे देख देवर्षि नारदने आशीर्वाद दिया। तदनन्तर पार्वतीजीने विस्मित हो अद्भुत स्वरूपधारी नारदजीको देखा। तब नारदजीने पार्वतीजीको देख उनसे कहा—'बेटी! मेरे पास आ' किन्तु लजीली पार्वतीजी अपने पिता हिमालयके गलेमें लिपट उनकी गोदमें बैठ गयीं। इसपर मैनाने पार्वतीजीसे कहा—बेटी! इन देवर्षि नारदजीको प्रणाम करो। इन तपोधन महात्माको

प्रणाम करनेसे तुझे सुन्दर पति मिलेगा। यह सुन बालिका पार्वतीजीने वस्त्रसे अपना मुँह ढाँक लिया, क्योंकि वे बहुत सकुचा गयी थीं। वे कुछ भी न बोलीं। सिर हिला माताकी बात मानना अस्वीकृत किया। यह देख उनकी माताने उनसे कहा—बेटी! देवर्षि नारदको प्रणाम कर, मैं तुझे रत्नजटित एक सुन्दर खिलौना, जो बहुत दिनोंसे रखा है, दूँगी। इसपर पार्वतीजीने उठकर और अति विनम्रतापूर्वक देवर्षि नारदके चरणोंमें सिर झुका यथाविधि उनको प्रणाम किया। तदनन्तर मैनाने अपनी एक सखीद्वारा देवर्षिसे यह कहलाया—हे मुनिराज! आप इस कन्याके शारीरिक लक्षणोंको देख इसके शुभ भविष्यफलको सुनाइये। देवर्षि नारद भी बड़े अद्भुत थे, उन्होंने पार्वतीके शारीरिक लक्षणोंको देख और हँसते हुए कहा—इस कन्याका पति तो जन्मा ही नहीं और यदि है तो उसका सूचक कोई लक्षण नहीं है। यह कन्या सदा ऊपरको हाथ उठाये रहेगी तथा इसके चरण व्यभिचारियोंकी छायामें सदा रहेंगे।

देवर्षि नारदके इन गूढ़ वचनोंको सुन हिमालय, मैना तथा मैनाकी सखी-सहेलियोंके मनमें बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ और बड़े दुःखके साथ आँखोंमें आँसूभर हिमालयने कहा—भगवन्! इस दोषपूर्ण संसारके लिये ब्रह्माजीने यह नियम बना रखा है कि जो जिसको उत्पन्न करता है, वह उससे कुछ स्वार्थ रखता है और जो उत्पन्न होते हैं, वे भी अपने उत्पादकसे कुछ स्वार्थ रखते हैं। निज कर्मानुसार प्राणियोंका जन्म होता है। अण्डज, पिण्डज आदि योनियोंमें उत्पन्न हो जीव क्रमशः मानवयोनिमें उत्पन्न होते हैं। मानवयोनिमें भी पूर्वजन्मकृत भले-बुरे कर्मोंके फलानुसार जीवको श्रेष्ठ-निकृष्ट परिस्थिति या कुलमें जन्म लेना पड़ता है। यह बात शास्त्रसिद्ध है। कुलीन जातियोंमें उत्पन्न प्राणियोंमें भी पूर्वजन्मकृत कर्मानुसार कितने ही निस्सन्तान होते हैं। आश्रमोंमें भी लोग क्रमशः ब्रह्मचर्यके बाद गृहस्थाश्रममें आते हैं। गृहास्थाश्रम—सृष्टिकी वृद्धि करनेवाला आश्रम कहलाता है। यदि गृही न हों तो सृष्टिकी उत्पत्ति ही न हो। शास्त्रकारोंने यद्यपि नरकसे बचनेकी विशेष आवश्यकता प्रदर्शित कर मनुष्योंको सन्तानोत्पत्ति करनेके लिये उत्साहित किया है तथापि बिना स्त्रीकी सृष्टिके सृष्टिकी वृद्धि हो नहीं सकती। स्त्री-जाति स्वभावतः बड़ी दुखियारी और सीधी होती है; किन्तु शास्त्राध्ययनकी अधिकारिणी न होनेके कारण ब्रह्माने स्त्री-जातिको दूषित

ठहराया है। किन्तु जो बहुधा देखनेमें आता है, वह यह है—

'दशपुत्रसमा कन्या या स्याच्छीलवती शुभा।'

'अर्थात् यदि शीलवती सुन्दरी कन्या हो तो वह दस पुत्रोंके समान है। किन्तु देखनेमें तो नित्य यह आता है कि पिताओंके लिये बेचारी लड़कियाँ आत्मग्लानि और चिन्ता बढ़ानेका कारण होती हैं। जब पति-पुत्रवती कन्याओंकी यह दशा है, तब जो कन्याएँ पति-पुत्र, धनादिसे रहित दुर्भाग्यवती हों, उनके पिताओंको और उनको स्वयं कितना दु:ख होता होगा इसका अनुमान सहजमें किया जा सकता है। हे देवर्षे! अपनी कन्याके शरीरमें दोषपूर्ण लक्षणोंका वर्णन सुन मैं बड़े मोहमें पड़ गया हूँ। मेरा चित्त ठिकाने नहीं है। मुझे आत्मग्लानि सता रही है। मुझे इस समय अमित दु:ख सता रहा है। यह कह अन्तमें हिमालयने यह भी कहा—

अयुक्तमपि वक्तव्यमप्राप्यमपि साम्प्रतम्।
अनुग्रहाय मे छिन्धि दु:खं कन्याश्रयं मुने॥
परिच्छिन्नेप्यसन्दिग्धे मनः परिभवाश्रयात्।
तृष्णा मुष्णाति निष्णातं फललोभाश्रयात्पुनः॥
स्त्रीणां हि परमं जन्म कुलानामुभयात्मनाम्।
इहामुत्र सुखायोक्तं सत्पतिप्राप्तिसंज्ञितम्॥
दुर्लभत्वात्पतिः स्त्रीणां विगुणोऽपि पतिः किल।
न प्राप्यते विना पुण्यैः पतिर्नार्य्या कदाचन॥
यतो निःसाधनो धर्मः परिणामोत्थिता रतिः।
धनं जीवितपर्यन्तं पतौ नार्य्याः प्रतिष्ठितम्॥
निर्धनो दुर्मुखो मूर्खः सर्वलक्षणवर्जितः।
दैवतं परमं नार्य्याः पतिरुक्तः सदैव हि॥
त्वया देवर्षिणा प्रोक्तं न जातोऽस्याः पतिः किल।
एतद्दौर्भाग्यमतुलमसङ्ख्यञ्च दुरुद्वहम्॥
चराचरे भूतसर्गे चिन्ता सा व्यापिनी मुने।
स न जात इति श्रुत्वा ममेदं व्याकुलं मनः॥
मनुष्यदेवजातीनां शुभाशुभनिवेदकम्।
लक्षणं हस्तपादाभ्यां लक्षणं विहितं किल॥

सेयमुत्तानहस्तेति त्वयोक्ता मुनिपुंगव।
उत्तानहस्तता प्रोक्ता याचतामेव नित्यता॥
शुभोदयानां धन्यानां न कदाचित्प्रयच्छताम्।
सुच्छाययास्याश्चरणौ त्वयोक्तौ व्यभिचारिणौ॥
तत्रापि श्रेयसी ह्याज्ञा मुने न प्रतिभाति नः।
शरीरावेक्षणाच्चान्ये पृथक् फलनिवेदिनः॥

अर्थात्—हे मुनिप्रवर! चाहे ठीक हो अथवा ठीक न हो, चाहे इस समय मुझसे हो सके अथवा न हो सके—अनुग्रह कर मुझे उस दुःखसे छूटनेका कोई उपाय बतलाइये, जो कन्याके कारण मुझे सता रहा है। सन्दिग्धावस्थाके कारण असफलताकी सम्भावना होनेपर भी फल पानेका लोभ तृष्णासे मेरा पिण्ड नहीं छूटने देता। उभय लोकोंमें पितृ और पति–उभय कुलोंके कल्याणार्थ कन्याओंका जन्म हुआ करता है। यदि कन्याओंको अच्छे पति न मिलें तो उनका जन्म लेना सार्थक नहीं माना जा सकता। बिना पूर्वजन्मके सुकृतके कन्याओंका गुणहीन पतियोंका मिलना भी दुर्लभ है। स्त्रियोंके लिये रति–सुख ही परम धन है। वह धन पतिके जीवनपर्यन्त ही रहता है। अतएव स्त्रियोंके लिये निर्धन, कुरूप, मूर्ख तथा समस्त सद्‌गुणोंसे हीन पति भी परम देवता है। उनका सर्वस्व है। हे भगवन्! आप कहते हैं कि मेरी कन्याका पति उत्पन्न ही नहीं हुआ—यह तो बड़ा भारी दुर्भाग्यका विषय है और अपार दुःखदायी है तथा बड़ा दुरूह है। इस चराचरात्मक संसारमें रहनेवाले मुझको आपकी बात सुन बड़ी भारी चिन्ताने घेर लिया है। मेरा जी घबड़ाता है। मनुष्यों एवं देवताओंके शुभाशुभ फलोंको बतलानेवाली हाथ–पैरकी रेखाएँ, जो इस कन्याके हैं, वे इसको 'उत्तानपाणि' होनेकी सूचक हैं। यह आपका कथन है और उत्तानपाणि संज्ञा भिक्षुक या याचककी है। क्योंकि उदार, भाग्यवान् एवं प्रसिद्ध दाताओंको कोई भी उत्तानपाणि नहीं कहता। आपने यह भी कहा है कि इसके चरण व्यभिचारियोंकी छायामें रहेंगे, अर्थात् व्यभिचारी इसकी सेवा करेंगे। यह भी आपका भावी फल मुझे कल्याणप्रद प्रतीत नहीं हुआ। अतएव हे भगवन्! इस कन्याके शरीरके अन्यान्य लक्षणोंको देख, आप मुझे वर्तमान चिन्तासे मुक्त कीजिये।

शैलेन्द्र हिमालयके इन दुःखपूर्ण एवं चिन्तायुक्त वचनोंको सुन नारदजी हँसकर कहने लगे—

हर्षस्थाने च महति त्वया दुःखं निरुच्यते।
अपरिच्छिन्नवाक्यार्थे मोहं यासि महागिरे॥
इमां शृणु गिरं मत्तो रहस्यपरिनिष्ठिताम्।
समाहितो महाशैल मयोक्तस्य विचारिणीम्॥
न जातोऽस्याः पतिर्देव्या यन्मयोक्तं हिमाचल।
स न जातो महादेवो भूतभव्यभवोद्भवः॥

....

महादेवोऽचलः स्थाणुर्न जातो जनको जयः।
भविष्यति पतिः सोऽस्या जगन्नाथो निरामयः॥
यदुक्तं च मया देवी लक्षणैर्वर्जिता तव।
शृणु तस्यापि वाक्यस्य सम्यक्त्वेन विचारणाः॥
लक्षणं दैवको ह्यङ्कः शरीरावयवाश्रयः।
स चायुर्धनसौभाग्यपरिणामप्रकाशकः॥
अनन्तस्याप्रमेयस्य सौभगत्वस्य भूधर।
नैवाङ्को लक्षणाकारः शरीरे संविधीयते॥
अतोऽस्या लक्षणं गात्रे शैल नास्ति महामते।
यच्चाह मुक्तवानस्या उत्तानकरता सदा॥
उत्तानो वरदः पाणिरेष देव्याः सदैव तु।
सुरासुरमुनिव्रात वरदात्री भविष्यति॥
यच्च प्रोक्तं मया पादौ स्वच्छायो व्यभिचारिणौ।
मत्तः शृणुत्वमस्यापि व्याख्योक्तिं शैलसत्तम॥
चरणौ पद्मसङ्काशौ स्वच्छावस्या नखोज्ज्वलौ।
सुरासुराणां नमतां किरीटमणिकान्तिभिः॥
विचित्रवर्णैः पश्यद्भिः स्वां छायां प्रतिबिम्बितैः।
एषा भार्या जगद्भर्तुर्वृषाङ्कस्य महीधर॥

अर्थात् नारदजी कहते हैं हे महागिरि! तुम प्रसन्न होनेके बदले हमारे वचनको सुन दुखी हुए हो, इससे जान पड़ता है तुम हमारे वचनका यथार्थ अर्थ नहीं समझ सके। अतएव अब तुम हमारे रहस्यपूर्ण वचनोंका यथार्थ अर्थ सुनो। इस कन्याका पति पैदा नहीं हुआ। इस वाक्यका अर्थ यह नहीं है कि इसके लिये विश्व-ब्रह्माण्डमें कोई पति ही नहीं है; प्रत्युत

अचल, स्थाणु, निरामय सर्वेश्वर महादेवजी इस कन्याके पति होंगे। हमारा दूसरा वाक्य यह है कि कन्या लक्षणोंसे रहित है। इसका अभिप्राय यह है कि लक्षण तो दैव अथवा ब्रह्माके सङ्केत हैं जो शरीरावयवोंके आश्रित हैं। आयु, धन, सौभाग्यका उन लक्षणोंसे ज्ञान होता है। अतएव अनन्त, अप्रमेय और सौभाग्यवती इस कन्यारूपी जगज्जननी देवीके लक्षणोंके रूपमें ब्रह्माङ्क नहीं हैं—अर्थात् जो लक्षण साधारण जनोंके शरीरावयवोंमें हुआ करते हैं, वे इसके शरीरमें नहीं हैं। तीसरी बात हमने जो कही वह यह है कि यह उत्तानपाणि है, सो यह भी ठीक है। अर्थात् यह देवी सुरासुरको और मुनियोंको वर देनेवाली होगी। अतएव इसका वरद पाणि सदैव उत्तान रहेगा। चौथी बात हमने इसके चरणों और उनपर व्यभिचारियोंकी छायाके सम्बन्धमें कही है। उसका अभिप्राय यह है कि इस देवीके कमलपत्रके समान आभावाले चरण और उज्ज्वल नख हैं। इनको सुरासुर प्रणाम करेंगे। प्रणाम करते समय उनके सिरोंपर लगे हुए किरीटोंकी मणियोंकी कान्तिसे वे विचित्र वर्णके देख पड़ेंगे। सुरासुरोंद्वारा इसके चरणद्वय अभिचारित अर्थात् पूजित होंगे। यह देवी—आपकी कन्या—हे महीधर! जगन्नाथ भगवान् वृषभध्वज शङ्करकी अर्धाङ्गिनी होगी।

इस प्रकार देवर्षि नारदजीके समझानेपर शैलराज हिमालय तथा उनकी पत्नी मैनाका भ्रम दूर हुआ और वे दोनों सन्तुष्ट हुए। साथ ही नारदजीके भविष्य-कथनके अनुसार पार्वतीजीका विवाह भगवान् भूतभावन महादेवजीके साथ हुआ और देवताओंका मनोरथ पूर्ण हुआ। सारांश यह कि नारदजीने शिव-पार्वतीके विवाहके लिये सर्वाधिक प्रयत्न किया और ऐसी बुद्धिमानीसे प्रयत्न किया कि वह पूरा उतरा।

चौदहवाँ अध्याय

पूज्य पुरुषके सम्बन्धमें श्रीकृष्णको नारदोपदेश—ब्राह्मण-महत्त्वादर्श—सांसारिक लोगोंके लिये शिक्षापूर्ण उपदेश

एक बार भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि नारदजी ब्राह्मणोंको हाथ जोड़कर प्रणाम कर रहे हैं। यह देख उन्होंने नारदजीसे पूछा—भगवन्! आप किसको प्रणाम करते हैं? हे देवर्षे! आप तो स्वयं पूज्य हैं, फिर आप इन ब्राह्मणोंको प्रणाम कर इनका बहुमान क्यों करते हैं? हे धर्मवित्तम! यदि यह विषय मेरे सुनने योग्य हो तो आप कृपा कर मुझे सुनावें। क्योंकि इस विषयको सुननेके लिये मैं उत्सुक हूँ।

इसके उत्तरमें नारदजीने कहा—'हे अरिदमन गोविन्द! ब्राह्मणोंको मैं पूज्य मान क्यों प्रणाम करता हूँ—इसका कारण मैं बतलाता हूँ। आप सुनिये। इस मर्त्यलोकमें आपको छोड़ और दूसरा कौन है जो इस विषयको सुननेके लिये उत्कण्ठित हो और सुननेकी योग्यता रखता हो। हे कृष्ण! जो लोग वरुण, वायु, आदित्य, अग्नि, स्थाणु, स्कन्द, लक्ष्मी, विष्णु, ब्रह्मा, वाचस्पति, चन्द्रमा, जल, पृथिवी और सरस्वतीको सदैव नमस्कार किया करते हैं, मैं उन्हींको प्रणाम करता हूँ। हे विभो! जो अनात्मश्लाघापरायण मनुष्य अभुक्त रहकर देव-कार्य करते और सन्तुष्ट एवं क्षमायुक्त रहते हैं, मैं उन्हींको प्रणाम किया करता हूँ। हे महाराज! जो लोग क्षमाशील, दान्त और जितेन्द्रिय हों पूर्णरीत्या यज्ञ किया करते हैं, जो सत्य तथा धर्मकी उपासना किया करते हैं, जो ब्राह्मणोंको भूमिदान और गोदान दिया करते हैं, मैं उन्हींको प्रणाम करता हूँ। जो लोग वनमें रह और वन्य पदार्थोंको खाकर उदरपूर्ति कर तप करते हैं और संग्रही नहीं हैं अथवा देवता और अतिथियोंको अन्न अर्पण कर अवशिष्ट अन्नादिको खा अपना निर्वाह किया करते हैं, मैं उन्हींको नमस्कार करता हूँ। जो वाक्पटु ब्रह्मचारी वेदज्ञान प्राप्त कर वन्दनीय होते हैं तथा जो सदैव

भजन या अध्यापनकर्म किया करते हैं, मैं उन्हींको प्रणाम करता हूँ। जो अपने सेवकोंका भरण-पोषण किया करते हैं, अतिथियोंका आतिथ्य किया करते हैं—मैं उन्हींको प्रणाम करता हूँ।

हे ब्रह्मण्यदेव! जो समस्त जीवोंपर प्रसन्न रहते हैं, मध्याह्नतक स्वाध्याय एवं मन्त्रके जपमें लगे रहते हैं, मैं उन्हींकी पूजा किया करता हूँ। हे यादव! जो स्थिर व्रतधारी पुरुष गुरुके प्रसादसे स्वाध्यायनिरत रहते हैं, जो गुरु-सेवा-परायण रहते हैं और जो किसीकी निन्दा नहीं करते, मैं उन्हीं द्विजराजोंको प्रणाम किया करता हूँ। हे यादव! जो व्रतोत्तमधारी मुनि और सत्यप्रतिज्ञ ब्राह्मण-गण हव्य-कव्यका हवन किया करते हैं, मैं उन्हीं सबको प्रणाम किया करता हूँ। हे कृष्ण! जो लोग याचनावृत्तिवाले हैं, जो शरीरसे कृश, गुरुकुलाश्रयी, असुखी और निर्धन हैं, मैं उन्हीं ब्राह्मणोंको प्रणाम किया करता हूँ। जो मनुष्य ममतारहित, निष्प्रतिद्वन्द्व, दिगम्बर, निष्काम और वेदज्ञान प्राप्त करते हैं, जो वाग्मी, ब्रह्मवादी, अहिंसारत, सत्यव्रती, शान्त, दान्त हैं, मैं उन्हीं सब ब्राह्मणोंको नमस्कार किया करता हूँ। जो गृहस्थ पुरुष देवताओं तथा अतिथियोंकी पूजामें लगे रहते हैं और सदैव अपनी वृत्तिके लिये कपोतवृत्तिका अनुसरण किया करते हैं, अर्थात् आवश्यकतानुसार अन्नके कण बीन लाते हैं और संचय नहीं करते—उन सबको मैं प्रणाम किया करता हूँ। जो लोग धर्म, अर्थ और कामके साधनमें संलग्न रहते हैं और उनसे कभी विरत नहीं होते तथा जो शिष्टाचारका परित्याग कभी नहीं करते, मैं उन्हीं सबको प्रणाम किया करता हूँ। जो लोग जल तथा वायुको पीकर निर्वाह करते हैं, अथवा जो बलिवैश्वदेव करनेके बाद बचे हुए अन्नको खाते हैं तथा जो विविध व्रतोंको धारण करते हैं, मैं उन्हींको सदा प्रणाम किया करता हूँ। हे कृष्ण! जो लोग लोकश्रेष्ठ, कुलज्येष्ठ, तमोघ्न और लोकसत्तम हैं, मैं उन लोकप्रसिद्ध ऋषियोंको प्रणाम किया करता हूँ। जो लोग विवाह न करके अथवा विवाह कर निज धर्मपत्नीके साथ अग्निहोत्र करते और वेदोंकी आज्ञाके अनुसार सर्व प्राणियोंके हितमें तत्पर रहते हैं, मैं उन्हीं सबको प्रणाम करता हूँ। हे कृष्ण! अतएव आप भी ब्राह्मणोंका पूजन सदा किया कीजिये।

हे अनघ! ऐसे वे पूज्य ब्राह्मण, उन लोगोंको सुख-सम्पत्ति देते हैं, जो उनका पूजन किया करते हैं। इस लोक तथा परलोकमें वे लोग सुखप्रद

हो विचरा करते हैं। वे मान्य हैं, अतएव आपसे सम्मानित होनेपर वे आपका कल्याण करेंगे। जो लोग आये-गये सबका आतिथ्य किया करते हैं, जो सदा गो-ब्राह्मणकी सेवा किया करते हैं और जो अपने वचनको सत्य करके दिखला दिया करते हैं अथवा जो सत्यका पालन करते हैं, वे सांसारिक समस्त क्लेशोंसे मुक्त हो जाते हैं। जिस कुमारने तपस्यापरायण हो ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया है, वह सांसारिक क्लेशोंसे मुक्त हो जाता है। जो लोग शान्त, असूयारहित और नित्य स्वाध्यायशील हैं, वे क्लेशोंसे मुक्त हो जाते हैं। जो लोग देवता, अतिथि, पितर और अपने आश्रित सेवकोंकी यथाक्रम पूजा, सत्कार और भरण-पोषण अनुरागसहित किया करते हैं और जो शिष्टान्नभोजी हैं, अर्थात् पञ्चयज्ञावशिष्ट अन्न खाया करते हैं, वे भी सांसारिक क्लेशोंसे पार हो जाते हैं। हे कृष्ण! जो लोग आपकी तरह माता-पिता तथा गुरुजनोंके निकट सेवकभावसे सदा रहते हैं, वे इस संसारके समस्त क्लेशोंसे मुक्त हो जाते हैं।

देवर्षि नारदके इन वचनोंमें कैसा सुन्दर हितोपदेश है। आपने अपने इन वचनोंमें यह बात सविस्तर प्रकट की है कि किस प्रकारके ब्राह्मणोंको देवर्षि नारद-जैसे परम त्यागी भी सादर प्रणाम करते हैं अथवा किस आचार-विचारके ब्राह्मणोंको बड़े-से-बड़े विद्वान् ब्राह्मण भी प्रणाम किया करें। साथ ही नारदजीने यह भी दिखलाया है कि जो ब्राह्मण अपने नित्य-नैमित्तिक कर्मोंमें संलग्न रहते हैं, उनको सांसारिक क्लेश बाधा नहीं पहुँचा सकते।

पद्मपुराणके सृष्टिखण्डमें भी नारदजीने संसारमें ब्राह्मण-माहात्म्यका प्रचार करनेके अभिप्रायसे ब्रह्माजीसे पूछा है और ब्रह्माजीने भी बड़े विस्तारसे ब्राह्मणोंके आचार-विचार और उनके महत्त्वका वर्णन किया है। नारदजीने इतने अधिक और उपयोगी प्रश्न किये हैं कि उन प्रश्नोंके उत्तरमें ब्राह्मणोंके सम्बन्धकी बहुत-सी बातें आ गयी हैं। नारदजीके कतिपय प्रश्न ये हैं—

कश्च पूज्यतमो विप्रो ह्यपूज्यो वाथ को भवेत्।
विप्रस्य लक्षणं ब्रूहि याथातथ्यं गुरोरपि॥
ज्ञातः कः श्रोत्रियस्तात सत्कुले वाप्यसत्कुले।
सदसत्कर्मकर्ता वा कः पूज्यो भुवि वाडवः॥
गायत्र्या लक्षणं किं वा प्रत्येकाक्षरजं गुणम्।
कुक्षिचरणगोत्राणां तस्या ब्रूहि सुनिश्चयम्॥

प्राणायामाः कथं ब्रह्मन् प्रत्येकाक्षरदेवताः।
तेषां न्यासं तथाङ्गेषु वद तात यथाक्रमम्॥

अर्थात् नारदजी ब्रह्माजीसे पूछते हैं कि हे तात! संसारमें सबसे अधिक पूज्य ब्राह्मण कौन है? अपूज्य ब्राह्मण कौन है? आप यथार्थरूपसे ब्राह्मणोंके लक्षण मुझे बतला दें। ब्राह्मणोंमें श्रोत्रिय ब्राह्मण-संज्ञा किसकी है? कुलीन अथवा अकुलीन ब्राह्मण भी क्या श्रोत्रिय माना जा सकता है? सदसत्कर्म करनेवाला कौन ब्राह्मण पूज्य है? जिस गायत्रीके प्रभावसे ब्राह्मणकी इतनी विशाल महिमा है, उस गायत्रीका लक्षण क्या है? उसके प्रत्येक अक्षरके गुण क्या हैं? उसके कुक्षिपाद एवं गोत्रादिको निश्चयात्मकरूपसे कहिये। गायत्रीद्वारा जिस प्राणायामका महत्त्व आपने बतलाया उस प्राणायामकी विधि कौन-सी है? गायत्रीके प्रत्येक अक्षरका देवता कौन है? उनका अङ्गन्यासादि किस क्रमसे किया जाता है। आप कृपया यह बतलावें।

नारदजीके इन प्रश्नोंका उत्तर दे, अन्तमें ब्रह्माजीने कहा—

एवं विप्रगुणान्वक्तुं न शक्नोमि द्विजोत्तम।
विश्वरूपश्च को देही समूर्तो हरिरेव च॥
यस्य शापाद्विनाशः स्यादायुर्विद्यायशोधनम्।
वरदानात्समायान्ति सर्वाः सम्पत्तयस्तथा॥
विष्णुर्ब्रह्मण्यतामेति सदा विप्रप्रसादतः।
'नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च॥
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः।'
मन्त्रेणैवं हरिं यस्तु पूजयेत्सततं नरः॥
प्रसादी च हरिस्तस्य विष्णुसायुज्यतां व्रजेत्।
..॥

अर्थात् इस प्रकार हे नारद! मैं ब्राह्मणोंके गुणोंका वर्णन करनेमें असमर्थ हूँ। क्योंकि ब्राह्मण विश्वरूप ब्रह्मा एवं देहधारी साक्षात् भगवान् हैं। जिन ब्राह्मणोंके शापसे आयु, विद्या, यश और धनका नाश हो जाता है, तथा जिनके वरदानसे संसारकी समस्त सम्पत्तियाँ मिल जाती हैं और जिनकी कृपासे भगवान् विष्णु भी ब्रह्मण्यता पाते हैं उनके गुणोंका वर्णन मैं क्योंकर कर सकता हूँ। हाँ, **'नमो ब्रह्मण्यदेवाय'** इत्यादि मन्त्रसे जो

भगवान् विष्णुकी पूजा करेंगे, वे भगवद्भक्त हो अन्तमें विष्णुसायुज्यरूपी ऐकान्तिक भक्ति पावेंगे।

इस प्रकार नारदजीने विविध पुराणोंमें अनेक स्थलोंपर पूज्यापूज्यविचार तथा ब्राह्मण-महत्त्वादर्श दिखलाया है अथवा प्रश्नोंद्वारा अन्यान्य महापुरुषोंसे यह विषय कहलाया है। इस प्रकार देवर्षि नारदजीके सांसारिक उपकारितापूर्ण कार्य न मालूम कितने रूपोंमें पाये जाते हैं। इन बातोंसे यह सारांश निकलता है कि देवर्षि नारदके जीवनका प्रधान लक्ष्य परहितसाधन है।

पन्द्रहवाँ अध्याय

देवर्षि नारदजीके वैष्णव-धर्म-सम्बन्धी विचार—देवर्षि नारदद्वारा महाराज अम्बरीष और वसुदेवजीको उपदेश—सांसारिक मनुष्योंके लिये परम कल्याणप्रद वैष्णव-धर्मका सारांश

देवर्षि नारदका पाञ्चरात्रशास्त्र, उनका भक्तिमार्ग अथवा भागवत-धर्म संसारभरमें प्रसिद्ध है। देवर्षि नारदजीका परम भागवतत्व भी किसी भी धार्मिक जनसे छिपा नहीं है। फिर भी वैष्णव-धर्मके नामसे जिस धार्मिक ज्ञानका उपदेश (श्रीमद्भागवतमें) वसुदेवजीको और (पद्मपुराणके) महाराज अम्बरीषको दिया गया है, वह सांसारिक प्राणियोंके लिये सबसे अधिक कल्याणप्रद और सेवन करनेयोग्य है। परम भागवतों या भगवद्भक्तोंमें महाराज अम्बरीषकी भी गणना है। आप सूर्यवंशी राजा थे। आपका प्रभाव बड़े-बड़े महर्षियोंपर भी पड़ चुका है। आपका सबसे अधिक प्रभाव देखनेका अवसर तो महर्षि दुर्वासाको प्राप्त हुआ था। उन्हीं महाराज अम्बरीषको देवर्षि नारदने वैष्णव-धर्मका जो उपदेश दिया था, उसका वृत्तान्त पद्मपुराणमें निम्न प्रकार दिया गया है—

'भगवन् भवतो यात्रा स्वस्तये सर्वदेहिनाम्।
बालानां च यथा पित्रोरुत्तमश्लोकवर्त्मनाम्॥
तस्मात्त्वं भगवन् मह्यं वैष्णवं धर्ममादिश।
यस्योपदेशदानेन लभते वेदजं फलम्॥'

अर्थात् भगवन्! आपका विश्वब्रह्माण्डमें निरन्तर भ्रमण, प्राणिमात्रके कल्याणके लिये वैसे ही होता है जैसे बालकोंके कल्याणके लिये गुरुरूपी पिता भ्रमण करता है। अतएव हे नारद! आप मुझको उस वैष्णव-धर्मका उपदेश दें, जिसके द्वारा मनुष्य वेदोक्त फल अर्थात् परमपद प्राप्त करते हैं।

महाराज अम्बरीषके प्रश्नोंको सुनकर देवर्षि नारद बहुत प्रसन्न हुए और बोले—राजन्! आपने अनन्य भावसे भगवान् माधवकी सेवा की है और इनके अनन्य भक्त होकर भी आपने वैष्णव-धर्म जाननेके लिये

जिज्ञासा की है। आपका यह प्रश्न सर्वोत्तम है। जिन भगवान् विष्णुकी आराधना करनेसे सारा विश्व आराधित हो जाता है, जिन सर्व देवमय हरिके प्रसन्न होनेसे सारा संसार प्रसन्न हो जाता है, जिनके स्मरणमात्रसे बड़े-बड़े पातक तत्क्षण भस्म हो जाते हैं, वे ही दयामय हरि सेवनीय हैं। क्योंकि वे इस जगत्के कार्य-कारणादि सभी कुछ हैं, और जो कारणके भी कारण हैं, महायोगी हैं, जगत्के जीवनस्वरूप हैं, जगन्मय हैं, जो छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े हैं, जो निर्गुण होकर भी सगुण हैं, वे ही अज एवं जन्मत्रयातीत भगवान् सदैव सेवनीय हैं। राजन्! यह तो आप भलीभाँति जानते हैं कि जिस भागवत-धर्मकी आपने मुझसे जिज्ञासा की है, वह विश्वभरके लिये कल्याणप्रद होनेके कारण सर्वप्रिय है। सज्जनजन प्रसङ्गवश कर्णप्रिय भगवान्की निर्मल कथाओंको कहा-सुना करते हैं। क्योंकि देवादिदेव भगवान् विष्णु भावसाध्य हैं। इस बातको भलीभाँति जानकर भी जब आप मुझसे पूछते हैं, तब मैं आपके प्रश्नको गौरव समझ यथामति आपको उत्तर देता हूँ।

यदाहुः परमं ब्रह्म प्रधानं पुरुषात्परम्।
यन्मायया सर्वमिदं विश्वमस्तीति सोऽच्युतः॥
पुत्रान् कलत्रं दीर्घायू राज्यं स्वर्गापवर्गकम्।
स ददातीक्षितं सर्वं भक्त्या सम्पूजितोऽच्युतः॥
कर्मणा मनसा वाचा तत्परा ये हि मानवाः।
तेषां व्रतानि वक्ष्यामि प्रीतये तव भूपते॥
अहिंसासत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यमकल्कना।
एतानि मानसान्याहुर्व्रतानि हरितुष्टये॥
एकभुक्तं तथा नक्तमुपवासमयाचितम्।
इत्येवं कायिकं पुंसां व्रतमुक्तं नरेश्वर॥
वेदस्याध्ययनं विष्णोः कीर्तनं सत्यभाषणम्।
अपैशून्यमिदं राजन् वाचिकं व्रतमुच्यते॥
चक्रायुधस्य नामानि सदा सर्वत्र कीर्तयेत्।
नाशौचं कीर्तने तस्य सदा शुद्धिविधायिनः॥
वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान्।
विष्णुराराध्यते पन्थाः सोयं तत्तोषकारणम्॥

पतिरूपो हिताचारैर्मनोवाक्कायसंयमैः।
व्रतैराराध्यते स्त्रीभिर्वासुदेवो दयानिधिः॥
स्वागमोक्तेन मार्गेण स्त्रीशूद्रैरपि पूजनम्।
कर्तव्यं कृष्णचन्द्रस्य द्विजातिवेदरूपिणः॥
त्रयो वर्णाश्च वेदोक्तमार्गाराधनतत्पराः।
स्त्रीशूद्रादय एव स्युर्नाम्नाराधनतत्पराः॥
न पूजनैर्न यजनैर्न व्रतैरपि माधवः।
तुष्यते केवलं भक्तिप्रियोऽसौ समुदाहृतः॥

अर्थात् 'जिनकी मायासे यह सारा विश्व देख पड़ता है, जो परब्रह्म एवं प्रधान पुरुषके भी परे हैं, वे ही अच्युत भगवान् वासुदेव भक्तिपूर्वक पूजे जानेपर पुत्र, कलत्र, दीर्घ जीवन, राज्य एवं स्वर्गापवर्गरूपी मनोरथोंको पूर्ण करते हैं। मन, वचन एवं कर्मसे जो मनुष्य भगवद्भक्ति करते हैं, उनके व्रतादिका वर्णन, आपके सन्तोषके लिये मैं करता हूँ। राजन्! अहिंसा, सत्यभाषण, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा पवित्रता—ये पाँच मानस व्रत हैं। एकाहार, अनाहार, दिनमें भोजन न करना अथवा अयाचित जो कुछ मिल जाय उसीसे मिताहार करना—ये चार कायिक व्रत हैं। वेदाध्ययन, मन्त्रजप एवं स्तोत्र-पाठ, हरि-कीर्तन, हितकर सत्य वचन बोलना, किसीकी निन्दा न करना—ये वाचिक व्रत हैं। भगवान्के सुदर्शन-चक्रका नाम सदैव एवं सर्वत्र ले। क्योंकि सदैव शुद्धता प्रदान करनेवाले शुद्ध सुदर्शनके नाम-कीर्तनसे अशुद्धता रह नहीं सकती। वर्णाश्रम-धर्मावलम्बी पुरुषोंके लिये परम पुरुषका आराधन ही सन्तोष करानेवाला मार्ग है। मन, वचन और शरीरके संयमद्वारा पतिव्रत-धर्मानुसार सर्वात्मना हिताचारद्वारा जो स्त्री अपने पतिदेवका पूजन करती है, वह मानो दयानिधि भगवान् वासुदेवका पूजन करती है। शास्त्रोक्त निज अधिकारों एवं विधानके अनुसार भक्तिपूर्वक शूद्रा और स्त्रियोंको भी भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा करनी चाहिये। ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य तो वेदोक्त विधानसे भगवान्की आराधना करते हैं, किन्तु वेदके अधिकारी न होनेके कारण स्त्रीजन तथा शूद्रादि द्विजेतर जन, केवल भगवान्के नामकी आराधनामें तत्पर रहते हैं, अर्थात् नाम-कीर्तन किया करते हैं। अतः इससे किसीको असन्तुष्ट न होना चाहिये। क्योंकि परम दयालु भगवान् माधव बड़े-बड़े वैदिक विधानद्वारा पूजे जानेपर भी प्रसन्न नहीं होते,

बड़े-बड़े अश्वमेधादि यज्ञोंसे भी प्रसन्न नहीं होते और न विविध प्रकारके व्रतोपवासों, यमों-नियमोंके पालनहीसे वे प्रसन्न होते हैं। यदि ये पूजन, यज्ञ और व्रतोपवास-भक्तिभावनासे रहित हैं, किन्तु जो पुरुष पूजन, यजन और व्रतोपवास नहीं करते और केवल भगवान्‌की ऐकान्तिकी भक्ति ही करते हैं, वे भी भगवान्‌को अपने ऊपर प्रसन्न कर लेते हैं। क्योंकि भगवान् तो भक्तिप्रिय प्रसिद्ध ही हैं।'

पद्मपुराणमें पूजन, ध्यान, भक्ति आदिके विविध भेदोंसहित, वैष्णवधर्मका वर्णन बड़े विस्तारके साथ किया गया है। अतः उन सब विषयोंके वर्णन करनेकी विस्तारभयसे यहाँ आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। किन्तु देवर्षि नारदने महाराज अम्बरीषको अन्तमें श्रीवैष्णव-धर्मका जो सार बतलाया था वह निश्चय ही ध्यानमें रखनेयोग्य है। देवर्षिने कहा है—

ब्राह्मणं विष्णुबुद्ध्या यो विद्वांसं साधु पश्यति।
स एव वैष्णवो यश्च स्वस्वधर्मे समास्थितः॥

अर्थात् हे राजन्! संसारमें वैष्णव कहलाने योग्य वही है, जो अपने वर्ण एवं आश्रमके अनुसार शास्त्रोक्त आचार-विचारसहित साधु एवं विद्वान् ब्राह्मणको साक्षात् परमात्मा विष्णुकी भावनासे देखता है।

इसी वैष्णव-धर्मके प्रसङ्गमें देवर्षि नारदजीने जो उपदेश वसुदेवको दिया था, उसका वर्णन श्रीमद्भागवतमें दिया हुआ है। पद्मपुराणसे भागवतमें वर्णित श्रीवैष्णव-धर्मोपदेशमें कुछ विशेषता है। द्वारकापुरीमें देवर्षि नारदसे वसुदेवजीने पूछा कि आप उस वैष्णव-धर्मका स्वरूप मुझे बतलावें, जिसका श्रद्धापूर्वक पालन करनेसे मनुष्य संसार-बन्धनसे छूट जाता है। फिर वसुदेवजीने कहा—'हे भगवन्! अनेक दुःखोंके आगार और भयावह इस संसारसे छुड़ानेवाले धर्मका निरूपण आप मुझे सुनावें।' नारदजीने धन-जन-सम्पन्न परम ज्ञानी एक राजाके मुखसे संसारसे छुटकारा दिलानेवाले वैष्णव-धर्मको जाननेकी उत्कण्ठाभरी बात सुन बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और कहा—हे यदुश्रेष्ठ! तुम्हारा यह प्रश्न उत्तम है। यह सब लोगोंके मनको प्रसन्न करनेवाला है। क्योंकि यह भगवत्सम्बन्धी धर्म ऐसा है कि इसको सुननेसे, इसका स्मरण करनेसे, इसका श्रद्धापूर्वक ध्यान करनेसे और इसके विषयमें निज सम्मति प्रकट करनेसे 'इस विश्वके समस्त पातकी जन शीघ्र ही पवित्र हो जाते

हैं। हे वसुदेव! जिन परम कल्याणरूप भगवान् नारायणका गुणानुवाद-श्रवण एवं कीर्तन पवित्र है, आपने प्रश्नद्वारा उनका मुझे स्मरण करा बड़ा उपकार किया है।'

इतनी भूमिका बाँध देवर्षि नारदने वह उपाख्यान वसुदेवजीको सुनाया जो जनक तथा नव योगेश्वरोंके संवादरूपसे प्रसिद्ध है। नारदजीने कहा—एक समय राजा जनककी यज्ञशालामें भगवदंशावतार महाराज ऋषभदेवजीके पुत्र नव योगेश्वरके नामसे प्रसिद्ध—कवि, हरि, प्रबुद्ध, पिप्पालायन, अन्तरिक्ष, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन जा पहुँचे। राजा जनकने उनका यथाविधि पूजन कर उन्हें आसनोंपर बिठाया और जब वे स्वस्थ हो गये, तब उनसे कहा—हे अनघ! कृपा कर आप बतलावें कि संसारमें मनुष्योंके लिये सबसे उत्तम कल्याणका साधनरूप वैष्णव-धर्मका स्वरूप क्या है? यदि आप मुझे इसका अधिकारी समझते हों तो मुझे बतलावें। इस सम्बन्धमें राजा जनकने उन नव योगेश्वरोंसे नव प्रश्न किये थे, जो इस प्रकार हैं। १—वैष्णव-धर्म क्या है? २—ईश्वरकी भक्ति क्या है? ३—भगवान्‌की माया क्या है? ४—उस मायासे पार पानेका उपाय क्या है? ५—ब्रह्मका स्वरूप क्या है? ६—कर्म किसको कहते हैं? ७—भगवान्‌के अवतारोंके चरित्र कैसे हैं? ८—भगवद्भक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है और ९—युगका वृत्तान्त क्या है?

जनकजीके इन प्रश्नोंके उत्तरमें परम योगेश्वर कविने परम कल्याणरूप वैष्णव-धर्मका वर्णन किया था। उन्होंने कहा था—जनक! भगवान् हरिके चरणोंकी उपासना ही संसारके सब प्रकारके भयोंको दूर करती है। हरि-चरणकी सेवाद्वारा देहादि भिन्न-भिन्न पदार्थोंके गर्वसे सदैव उद्विग्न रह ममताहीन हो जाता है और अन्तमें वह संसारके भयोंसे छूट जाता है। पूर्व कालमें मनु आदि ऋषियोंके मुखसे साधारणतः वर्णाश्रम-धर्म कहा गया है। किन्तु वैष्णव-धर्मको भगवान्‌ने निज श्रीमुखसे कहा है और इसीलिये वैष्णव-धर्म अज्ञानी जनोंके लिये भी सुखपूर्वक परमपद पानेकी अति रहस्यमय एक अमोघ उपाय है। वही भगवत्प्रोक्त वैष्णव-धर्म है। जो मनुष्य इस धर्मका आश्रय लेता है, वह विघ्न-बाधाओंसे कभी पीड़ित नहीं होता। वैष्णव-धर्मरूपी मार्गपर यदि कोई आँखें बन्द करके भी दौड़े तो भी उसके गिरनेका भय नहीं रहता। यदि वैष्णव-धर्मानुसार चलते हुए वर्णाश्रम-धर्मका पालन न भी हो

सके, तो भी उसका परिश्रम नष्ट नहीं होता। ऐसा मनुष्य धर्मच्युत नहीं होता। उसका वैष्णव-धर्म-पालनका फल नष्ट नहीं होता। शास्त्रोक्त विधिसे किये हुए केवल कर्मोंहीको नारायणके समर्पण करे यह नियम नहीं है; किन्तु शरीर, मन, वाणी, बुद्धि, अहङ्कार और अध्याससे माने हुए ब्राह्मणत्व आदिसे भी जो कर्म करे, उन सबको परमेश्वरके अर्पण कर दे। ऐसा करनेसे उस मनुष्यकी समस्त शारीरिक क्रियाएँ धर्मफलप्रद हो जाती हैं। परमेश्वरके विमुख पुरुषको ईश्वरकी मायासे भगवत्स्वरूपका ज्ञान नहीं होता, किन्तु उसको मिथ्या देहाभिमान होता है और तभी अन्यके अभिनिवेशसे उसको भय होता है। माया-मोहसे उसे भय होता है। अतएव गुरु, देवता और इष्टदेवको माननेवाले बुद्धिमान् पुरुषोंको उचित है कि वे भक्तिपूर्वक, मायारहित ईश्वरकी आराधना किया करें। यदि कोई शङ्का करे कि मन तो इन्द्रियोंके विषयोंमें फँसकर चञ्चल हो जाता है, तब निश्चल भक्ति कैसे हो सकती है? और जब भक्ति न हुई तब सांसारिक भय कैसे दूर हो सकता है? तो इसका समाधान इस प्रकार किया जायगा। विषय कोई वस्तु नहीं है। वह तो केवल मनका विलास है। अतएव यदि मनका निग्रह कर भगवद्भजन किया जाय तो भय नहीं हो सकता। यद्यपि संसारका यह सारा प्रपञ्च ब्रह्मस्वरूप ही है—अन्य कहीं कुछ भी नहीं है तथापि अविद्यावश द्वैतभाव दिखलायी पड़ता है। जैसे कि ध्यान धरनेवाले पुरुषको स्वप्न और मनोरथ दिखलायी पड़ते हैं। अतएव मनुष्योंको उचित है कि वे सङ्कल्प-विकल्पके कर्ता मनको बुद्धिमत्तासे अपने वशमें करें। इस प्रकार निश्चल भक्तिपूर्वक भगवद्भजन कर सांसारिक भयोंसे मुक्त होना चाहिये।

भगवद्भक्तोंको चाहिये कि भगवान्के शुभ जन्म-कर्म तथा उनके शुभ जन्मोंके कर्मोंसे सम्बन्ध रखनेवाले उनके नामोंका कीर्तन निस्पृहवान् हो और किसी प्रकारका सङ्कोच न कर किया करें। क्योंकि इस प्रकार भगवद्भजन करनेसे प्रेम-लक्षणा भक्ति-योग प्राप्त होता है और प्रेम-लक्षणा भक्ति-योगसे मनुष्यकी संसारसे न्यारी ही गति हो जाती है। इस योगसे मन कोमल हो जाता है और मनकी कोमलतासे वह हरिभक्त अपने प्रभुको अपने वशमें कर लेता है। मनुष्योंको उचित है कि वे आकाश, वायु, पृथिवी, जल तथा ज्योतिको और दसों दिशाओंको; वृक्ष, नदी तथा संसारके प्राणिमात्रको ईश्वरमय अर्थात् ईश्वरहीका शरीर जानें और इन सबमें अनन्यभावसे ईश्वरको प्रणाम

करें। मुख्यत: यही वैष्णव-धर्म है। यदि कोई कह बैठे कि ऐसा वैष्णव-धर्म तो बड़े-बड़े योगेश्वरोंके लिये भी दुर्लभ है। तब योगेश्वरोंको अनेक जन्मोंके बाद प्राप्त होनेवाला यह धर्म, भगवान्‌के नाम-कीर्तन-मात्रसे एक ही जन्ममें कैसे प्राप्त हो सकता है? इसके समाधानमें कहना पड़ता है कि प्रेम-लक्षणा भक्ति और प्रेमाश्रय भगवत्स्वरूपकी स्फूर्ति तथा गृहादिमें आसक्ति न होना अर्थात् वैराग्य—ये तीनों भगवान्‌के नाम-कीर्तनमात्रसे, एक ही जन्ममें वैष्णव-धर्मानुरागी जनको, एक ही साथ प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार भोजन करनेसे सुख, पुष्टि तथा तृप्ति एक ही साथ प्राप्त होती है, उसी प्रकार हरिभजनसे भी उक्त तीनों बातें एक ही समयमें प्राप्त हो जाती हैं। हरिभजनसे मनुष्यको प्रेम-लक्षणा भक्ति, वैराग्य तथा भगवान्‌के साक्षात् स्वरूपका ज्ञान जब प्राप्त हो जाते हैं, तब ही उसे परम शान्ति भी प्राप्त होती है।

इतनी बातोंको सुनकर राजा जनकने पूछा—भगवन्! मनुष्य-समुदायमें कैसे जाना जाय कि अमुक मनुष्य वैष्णव है। उनका स्वभाव कैसा होता है? उनकी मन:स्थिति कैसी होती है। उनके आचरण कैसे होते हैं? वे कैसे बोलते हैं? उनके कौन-से चिह्न हैं, जिनसे यह जाना जा सके कि उन्हें भगवान् मिलेंगे।

इन प्रश्नोंका उत्तर योगेश्वर हरिने इस प्रकार दिया। राजन्! जो मनुष्य अपने-आपको संसारके समस्त प्राणियोंमें ब्रह्मस्वरूपसे स्थित देखे और प्राणिमात्रको ब्रह्मस्वरूपसे अपनेमें देखे, वही भागवतोत्तम अथवा वैष्णवोत्तम है। ईश्वरसे प्रेम करे, भगवद्भक्तोंसे मित्रभाव रखे, अज्ञानियोंपर दया दिखावे और शत्रुओंकी उपेक्षा करे, वह मध्यम श्रेणीका वैष्णव है। जो भेद-बुद्धिसे केवल भगवान्‌की मूर्तिहीमें श्रद्धा रखता है और संसारके प्राणियोंमें तथा भगवद्भक्तोंमें जिसकी श्रद्धा नहीं है, वह प्राकृत वैष्णव—प्राकृत भगवद्भक्त है। राजन्! जो जन इन्द्रियोंसे विषयोंका भोग करता है, किन्तु किसीसे प्रीति या द्वेष नहीं रखता, समस्त वस्तुओंको ईश्वरकी माया जानता है, वह भागवतोत्तम है। जो महानुभाव जन्म, मरण, इन्द्रियोंके कष्टोंसे, भूख, भय, तृष्णा आदि सांसारिक धर्मोंसे मोहको प्राप्त न हों और निरन्तर भगवत्स्मरणमें निरत रहें वह भगवद्भक्तोंमें मुख्य गिने जाते हैं। जिसके मनमें कामवासना उत्पन्न न हो और जिसका मन भगवान् वासुदेवके स्वरूपमें बना रहे, वह वैष्णवोत्तम है। जिसे

कुलीनता, निज तपोबल, निज वर्ण एवं आश्रम तथा जातिका अभिमान नहीं है, वह भगवान्‌का अति प्यारा अर्थात् परम प्रिय भक्त है। जिसके मनमें अपने-परायेकी भेदबुद्धि नहीं है, जो प्राणिमात्रमें समदृष्टि रखता है और जिसका चित्त शान्त है, वह वैष्णवोंमें उत्तम है। जिसका मन त्रिलोकीके राज्यमें नहीं, बल्कि भगवान् वासुदेवमें संलग्न है, जो एक क्षण भी देवदुर्लभ भगवच्चरणारविन्दोंके भजन बिना नहीं रह सकता और जिसको यह दृढ़ विश्वास है कि भगवच्चरणप्राप्तिसे बढ़कर संसारमें कोई अन्य लाभ ही नहीं है, वह वैष्णवोंमें श्रेष्ठ है। अन्तमें कहा—

विसृजति हृदयं न यस्य साक्षा-
द्धरिरवशाभिहितोप्यघौघनाशः।
प्रणय रसनया धृताङ्घ्रिपद्मः
स भवति भागवतप्रधान उक्तः॥

अर्थात् जो भगवान् केवल नाम लेते ही समस्त पापोंके समूहको नाश करनेवाले हैं, उनको जो हृदयमें सदा धारण किये रहता है और एक क्षणको भी नहीं त्यागता, जिसने भगवान् वासुदेवके चरणोंको निज हार्दिक प्रेमसे बाँध रखा है, वही वैष्णवोंमें उत्तम है।

इसी प्रकार देवर्षि नारदजीने वैष्णव-धर्म अथवा भक्ति-मार्गको पात्रानुसार, न मालूम कितने भगवद्भक्तोंको कितने प्रकारसे उपदेश दिया है। फिर भी उनके सिद्धान्तमें सर्वत्र '**समत्वमाराधनमच्युतस्य**' का ही प्रकाश देख पड़ता है। ऐसा होना आश्चर्यकी बात भी नहीं है। क्योंकि देवर्षि नारद भगवान् विष्णुके मानसावतार होनेके कारण आदर्श भागवत हैं।

सोलहवाँ अध्याय

वेदोंमें देवर्षि नारदकी चर्चा—नारदरचित ग्रन्थोंमें विविध विषयोंका समावेश—नारदजीके उपदेशोंमें विलक्षणता

देवर्षि नारदकी चर्चा केवल पुराणोंहीमें नहीं है, प्रत्युत वेदोंमें भी देवर्षि नारदकी समुचित चर्चा पायी जाती है। अथर्ववेद तथा ऋग्वेदमें नारदजीका उल्लेख पाया जाता है। अथर्ववेदमें एक मन्त्र इस प्रकार आया है—

तं वृक्षा अपसेधन्ति छायां नो मोपगा इति।
यो ब्राह्मणस्य सद्धनमभि नारद मन्यते॥

(५। ११। १९)

अर्थात् नारद! जो ब्राह्मणके उत्तम धनको, गो-भूमिको बलपूर्वक लेना चाहता है, उसके प्रति वृक्ष भी कहते हैं कि तू हमारी छायामें मत आ। अथर्ववेदीय मुण्डकोपनिषद्में अथर्ववेदके प्रचारकी परम्परा ही है। उससे पता चलता है कि विश्वकर्त्ता और भुवनगोप्ता सर्वप्रथम ब्रह्माजी हुए। उन्होंने समस्त विद्याओंमें प्रतिष्ठित वेदविद्या अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वाको पढ़ायी। फिर अथर्वाने वही वेदविद्या अङ्गिराको बतलायी। अङ्गिराने वही वेदविद्या भरद्वाजको और भरद्वाजने आङ्गिरसको पढ़ायी। अर्थात् प्रचलित अथर्ववेदके उपनिषत्कालीन प्रचारक आङ्गिरस ऋषि थे। आङ्गिरस ब्रह्माजीके ज्येष्ठ पुत्र और देवर्षि नारदके ज्येष्ठ भ्राता थे। मनुस्मृतिके अनुसार ब्रह्माके दस पुत्रोंमें मरीचि, अत्रि, आङ्गिरस, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेतस, वसिष्ठ, भृगु और नारदके नाम आये हैं। इससे पता चलता है कि ऊपर उद्‌धृत अथर्ववेदीय मन्त्रमें आङ्गिरस ऋषिने अपने छोटे भाई नारदजीको ब्राह्मणकी प्रतिष्ठाका वर्णन करते हुए यह दिखलाया है कि ब्रह्मद्रोही प्राणियोंको— मनुष्यकी कौन कहे—वृक्ष भी आश्रय देना नहीं चाहते और कहते हैं कि तू हमारी छायाके नीचे मत आ।

इतना ही नहीं नारदका नाम ऋग्वेदमें भी आया है और ऋग्वेदके

आठवें मण्डलके १३वें सूक्तके ऋषि नारदजी ही हैं। वेदोंमें ऋषियोंका जो उल्लेख होता है, उसके विषयमें लोगोंका परस्पर बड़ा मतभेद है। पद्मपुराण तथा अन्यान्य पुराणोंके मतानुसार भगवान् विष्णुने हयशिरा दैत्यको मार प्रयागमें वेदोंको ऋषियोंको सौंप उनकी रक्षाका विधान किया था और उसे समय जिन सूक्तों, मन्त्रोंको जिन ऋषियोंने आरम्भमें प्राप्त किया था, उन सूक्तों तथा मन्त्रोंके ऋषियोंके स्थानमें उन्हीं ऋषियोंके नाम रखे गये थे। इससे पता चलता है कि वर्तमान सृष्टिमें ऋग्वेदके आठवें मण्डलके १३वें सूक्तको सबसे प्रथम देवर्षि नारदजीने ही प्राप्त किया था। वेदमन्त्रों तथा सूक्तोंके ऋषियोंके सम्बन्धमें निरुक्तकार यास्कने लिखा है कि—'**साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः**' आचार्य व्याडिने लिखा है—'**अनूचानत्वे सति मन्त्रार्थाहनसमर्थत्वम् ऋषित्वम्**' अर्थात् विवाद उपस्थित होनेपर जो मन्त्रार्थ करनेमें समर्थ हों, वे ही ऋषि कहलाते हैं। अन्य ऋषि नहीं, मुनि कहलाते हैं। इन प्रमाणोंसे भी यही विदित होता है कि वेदमन्त्रों तथा वेदसूक्तोंके ऋषियोंमें उन्हींका नाम आता है, जो उन सूक्तोंके सबसे प्रथम प्राप्त करनेवाले और निजज्ञान द्वारा उनके अर्थ करनेवाले थे। ऋग्वेदके सूक्तके ऋषि होनेसे नारदजीका महत्त्व दिखलाना हमारा अभिप्राय नहीं है। क्योंकि भगवान्के जो मानस अवतार हैं, जो परम भागवत हैं और जो समस्त धार्मिक संसारमें भक्ति-मार्गके सबसे बड़े आचार्य माने जाते हैं, उनके महत्त्वके लिये सूक्तोंके ऋषि होनेका प्रमाण ढूँढ़ना अनावश्यक है। किन्तु इस प्रसङ्गकी चर्चा हमने इस अभिप्रायसे की है कि जिन लोगोंकी दृष्टिमें पौराणिक कथाएँ कोई मूल्य नहीं रखतीं अथवा जो अज्ञान और दुराग्रहवश पुराणोंके महत्त्वको समझनेमें असमर्थ हैं उनको भी यह विश्वास हो जाय कि देवर्षि नारद आधुनिक नाटकों (थियेटरों) के जोकर—विदूषक अथवा लड़ाई करानेवाले चुगल नहीं हैं—प्रत्युत वे ऐसे महापुरुष हैं जो ऋग्वेदके मन्त्रोंके सबसे प्रथम अर्थकर्त्ता हैं। अथर्ववेदमें जिनका सादर नामोल्लेख है और जो संसारको भगवद्भक्तिमें लगाकर भवसागरके पार उतारनेवाले सबसे बड़े देवर्षि हैं।

केवल पुराणों और वेदोंहीमें नहीं, देवर्षि नारदका महत्त्व स्मृतियोंमें भी है। नारदरचित्त स्मृति धार्मिक विषयोंके प्रतिपादनमें बड़े महत्त्वकी है। नारदीय ज्योतिष-वेदाङ्ग अर्थात् नारदीय सिद्धान्त, नारदीय जातक, नारदीय संहिता,

ज्योतिषके मूलभूत समझे जाते हैं। नारदरचित सामुद्रिक ग्रन्थ यद्यपि अभीतक देखनेमें नहीं आया, तथापि इसमें सन्देह नहीं कि वे इस विज्ञानके भी बड़े चढ़े–बढ़े पण्डित थे। सनत्कुमार–संहितामें नारदजीकी प्रश्नविद्याका चमत्कार, पद्मपुराणमें सामुद्रिक विद्याका प्रमाण तथा उनके नामसे प्रसिद्ध ज्योतिषके ग्रन्थोंके देखनेसे नारदजी उच्च कोटिके ज्योतिषी प्रमाणित होते हैं। अन्यान्य विविध वेदाङ्गोंमें भी उनकी प्रतिभा उनके पुराणोंसे प्रतिपादित होती है; किन्तु वे सबसे बड़े आचार्य थे धार्मिक विषयके। राजनीतिसम्बन्धी वे उपदेश, जो प्रश्नात्मकरूपसे महाराज युधिष्ठिरको दिये गये थे, उच्च कोटिके हैं। इसका समर्थन राजनीति–विशारद कर सकते हैं। समाजनीतिमें उनके विचार कैसे उपयोगी हैं इसका प्रमाण उनके उस उपदेशमें मिल सकता है, जो उन्होंने राजा अम्बरीषको वैष्णव–धर्मके प्रसङ्गमें दिया था। जिस समय छलसे युधिष्ठिर जुएमें हराये गये और उनको वनवास दिया गया उस समय नारदजीने कौरवोंकी राजसभामें जा जो भविष्यवाणी कही थी, (अर्थात् 'आजसे चौदहवें वर्ष दुर्योधनके दोष तथा भीम और अर्जुनके हाथसे समस्त कुरुकुलका संहार होगा') वह कितनी दूरदर्शितापूर्ण राजनीति तथा त्रिकालदर्शिताकी बात थी। क्या इसका अनुमान करना कोई कठिन बात है?

जिस समय महाराज युधिष्ठिर सशरीर और सकुशल स्वर्गमें पहुँचे, उस समय नारदजीहीने उन्हें देखकर कहा था—जितने राजर्षि हैं, वे सभी स्वर्गमें उपस्थित हैं, किन्तु महाराज युधिष्ठिर उन सबकी कीर्तियोंको दबाकर आ रहे हैं, मैंने ऐसे एक भी राजर्षिकी कथा नहीं सुनी जिसने निज यश, तेज, सच्चरित्रता और सम्पत्तिसे लोकोंको दबाकर सशरीर स्वर्गलोक प्राप्त किया हो। नारदजीके इन वचनोंको सुनकर युधिष्ठिरके हृदयमें अपने भाइयों तथा अन्यान्य सम्बन्धियोंका प्रेमस्त्रोत बह निकला और इन्होंने अपने भाइयों तथा सम्बन्धियोंके साथ रहनेका आग्रह किया। इतना ही नहीं जिस समय महाराज युधिष्ठिर स्वर्गमें दुर्योधनको स्वर्गीय सम्पत्तिसे परिपूर्ण देख ईर्ष्यापूर्ण प्रलाप करने लगे थे, उस समय नारदजीने धर्मराजको बड़ी फटकार बतलायी थी। वैसी फटकार नारदजीके समान त्यागी और ज्ञानीको छोड़ और कौन बतला सकता था। युधिष्ठिरके क्रोधपूर्ण तथा ईर्ष्यापूर्ण प्रलापको सुन नारदजीने उनका उपहास करते हुए उनसे कहा था—'राजेन्द्र! आप

ऐसे वचन न कहें, क्योंकि स्वर्गमें आनेपर विरोधका भाव दूर हो जाता है। हे महाबाहो! अतः आप दुर्योधनके सम्बन्धमें एक भी अनुचित शब्द न कहें और मैं जो कुछ अब कहूँ उसे ध्यान देकर सुनें। ये जो अन्य समस्त राजागण आपको स्वर्गमें देख पड़े हैं, वे सब देवताओंसहित दुर्योधनका पूजन किया करते हैं। ये लोग समरानलमें अपने शरीरको होमकर वीर लोकमें आये हैं। आप सब यहाँ देवतुल्य हैं। यद्यपि दुर्योधनने सदा आपके साथ विद्वेषपूर्ण व्यवहार किया और आप लोगोंको बहुत सताया है, तथापि इसे यह पद क्षात्रधर्मका पालन करनेके कारण प्राप्त हुआ है। दुर्योधन घोरातिघोर भय उपस्थित होनेपर भी डरा कभी नहीं। द्यूतकाण्डके कारण आपको जो क्लेश सहने पड़े, उनको आप अब भूल जाइये। और द्रौपदीके अपमानकी बातको भी भूल जाइये। युद्धमें आपको अपने जाति-भाइयोंसे जो कष्ट मिले हैं, उन्हें भी आप भूल जाइये। राजन्! आपको यहाँपर दुर्योधनसे शिष्टाचारपूर्वक मिलना चाहिये। हे नरनाथ! यह स्वर्गलोक है। यहाँ मर्त्यलोक-जैसी आपसकी शत्रुता नहीं रखी जा सकती।'

देवर्षि नारदके इन वचनोंको पढ़ यह बात स्पष्ट विदित हो जाती है कि नारदजी न तो किसीके शत्रु हैं और मित्र हैं। जब दुर्योधनने अन्याय किया, तब उसे फटकार बतलायी और जब युधिष्ठिर न्यायपथसे विचलित हुए, तब उन्हें भी कोरा नहीं छोड़ा। नारदजीको सत्य, न्याय एवं भूतहितैषिताका ध्यान सदैव बना रहता था।

देवर्षि नारदने जब युधिष्ठिरको वीरवर कर्णके लिये शोक करते देखा तब उन्होंने जिस ढंगसे युधिष्ठिरको समझा-बुझाकर धीरज बँधाया था, उस ढंगसे क्या कोई भी सांसारिक प्राणी किसीको सान्त्वना दे सकता है? फिर आश्रमवासिक पर्वके बीसवें अध्यायमें वर्णित दुःखाकुल धृतराष्ट्रको नारदद्वारा समझाया जाना भी एक महत्त्वपूर्ण प्रसङ्ग है। उस समय धृतराष्ट्र मनमें किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो बड़े चिन्तित हो रहे थे। उस समय नारदजीने उनसे बड़ी सुन्दर बातें कही थीं। उन्होंने अनेक प्राचीन राजाओंके उदाहरण दिये थे और एकमात्र तपकी महिमा दिखला उन्हें तप करनेके लिये उत्साहित किया था। इसका फल यह हुआ था कि अन्तमें धृतराष्ट्रका विकल मन नारदजीके वचनोंसे शान्त हो गया था।

फिर जब इन्द्र प्रह्लादकी माता महारानी कयाधूको पकड़कर लिये जा

रहे थे, तब नारदजीने उन्हें समझा-बुझाकर कयाधूकी रक्षा की थी*। जिस समय हिरण्यकशिपु तपश्चर्यामें लगा हुआ था और देवराज इन्द्र उसके तपसे विचलित हो गये थे, उस समय देवर्षि नारदने अपने मित्र पर्वत मुनिके साथ पक्षिरूप धारण कर तथा अष्टाक्षर मन्त्रका उच्चारण कर दैत्यराजके तपका कैसा अन्त किया था? इतना ही क्यों, कंसकी राजसभामें नारदजी पहुँचे और उसे बतलाया कि देवदल मानवरूपमें धराधामपर अवतीर्ण हुआ है और उसके (कंसके) विरुद्ध, वह दल प्रयत्न कर रहा है। यह सुन, जब कंसने वसुदेवजीको मारना चाहा, तब नारदजीने निज प्रभावहीसे कंसको इस घोर पापकर्मसे बचाया था। इससे यह सहजहीमें जाना जा सकता है कि कंस-जैसा मदान्ध राजा भी देवर्षि नारदकी बातको टालना उचित नहीं समझता था और नारदजीकी मान्यता सुरासुर दोनों दलोंमें समानरूपसे थी। सारांश यह है कि नारदजीके उपदेश इतने हृदयग्राही और सच्चे होते हैं कि वे महानिष्ठुर हृदयपर भी प्रभाव डाले बिना नहीं रहते।

एक बार नारदजीने महाराज युधिष्ठिरको तीर्थ-विवरण सुनाया था। उसे पढ़नेसे अवगत होता है कि नारदजीने निरन्तर भ्रमणमें रह विविध बड़े-बड़े दिव्य पवित्र स्थानोंका अनुसन्धान किया था। देवताओंकी सभाओंके वर्णनसे यह भी भलीभाँति विदित हो जाता है कि देवर्षि नारद केवल तीर्थभ्रमण ही नहीं करते थे, प्रत्युत वे संसारभरकी संस्थाओंका भी पूर्ण ज्ञान रखते थे। उनका सर्वविषयसम्बन्धी ज्ञान बहुत चढ़ा-बढ़ा था। प्राचीन सोलह राजाओंकी कथा जो उन्होंने कही थी और जिसका उल्लेख महाभारतमें है, उसे पढ़नेसे यह भी पता चलता है कि उनमें प्राचीन इतिहासका प्रेम भी परिपूर्ण था।

देवर्षि नारदके उपदेशोंमें विलक्षणता पायी जाती है। नारदीय पुराणमें यदि वे सनत्कुमारको एक प्रकारका उपदेश देते हैं तो इन्द्रकी सभामें प्रियदर्शन ब्राह्मण तथा समाहित अतिथिकी संवादात्मक कथामें उनका दूसरे ही प्रकारका उपदेश पाया जाता है। यदि वे प्रह्लादको नारायण-परायण बनानेके लिये नारायणमन्त्रका उपदेश देते हैं, तो ध्रुवजीको द्वादशाक्षरी वासुदेवमन्त्रका।

* जिनको यह प्रसङ्ग विस्तारसे पढ़ना हो वे गीताप्रेसकी छपी—'भागवतरत्न प्रह्लाद' नामक पुस्तक पढ़ें।

इस प्रकार उन्होंने अपने नारद नामको चरितार्थ कर दिखाया है। महाभारतके समङ्ग ऋषि और नारदसंवादमें यदि धार्मिक एक प्रकारका ज्ञानका प्रकाश देख पड़ता है तो नारायण-नारद-संवादमें उस प्रकाशमें कुछ दूसरा ही प्रकार देख पड़ता है। यदि नारदजी दक्षपुत्रोंको ज्ञानोपदेश दे विरक्त बनाते हैं तो वे सन्तप्त हृदय और वैराग्यकी ओर झुकते हुए महाराज युधिष्ठिरको राजकार्यमें नियोजित करनेके लिये भी उपदेश देते हैं। भू-भार उतारनेके सदुद्देश्यसे कहीं-कहीं नारदको हम यदि विग्रह करानेमें प्रवृत्त पाते हैं तो द्रौपदीके साथ पाँचों पाण्डव भाइयोंको समयविभागके अनुसार व्यवहार करनेका उपदेश देते हुए भी तो हम उन्हें ही देखते हैं। यह इसलिये कि जिससे पाँचों भाई सुन्द-उपसुन्दकी तरह आपसमें कहीं लड़कर मारे न जायँ। फिर वे ही नारद दुर्योधनको लड़ाई न करने तथा दुराग्रह त्यागनेके लिये गुरु-शिष्यकी एक ऐसी सुन्दर एवं उपदेशपूर्ण कथा सुनाते हैं कि यदि दुर्योधन कहीं उनके उस उपदेशपर ध्यान देता तो भारतके वीर क्षत्रियोंका नाशकारी महाभारतका युद्ध कभी होता ही नहीं। सारांश यह है कि नारदजीके उपदेशोंमें बड़ी ही विलक्षणता देख पड़ती है। तिसपर भी विशेषता यह है कि नारदजीका मुख्य सिद्धान्त सर्वत्र देख पड़ता है और वह सिद्धान्त भक्तिमार्गके अन्तर्गत ही देख पड़ता है। नारदजीके उपदेशोंमें भूतदया है, '**समत्वमाराधनमच्युतस्य**' का पुट है, संसारभरके लिये हितोपदेश है; किन्तु है पात्रानुसार। इसीलिये उन उपदेशोंका बाह्यरूप विभिन्न देख पड़ता है।

देवर्षि नारदरचित ज्योतिषशास्त्रके ग्रन्थोंके अतिरिक्त नारदभक्तिसूत्र, नारदस्मृति आदि अनेक ग्रन्थ हैं। उनके नामसे नारदीय, वृहन्नारदीय तथा लघुवृहन्नारदीय पुराण, उपपुराण, कार्तिकमाहात्म्यके अतिरिक्त दत्तात्रेयस्तोत्र, पार्थिवलिङ्गमाहात्म्य, मृगव्याधकथा, यादवगिरिमाहात्म्य, श्रीकृष्णमाहात्म्य, शङ्करगणपतिस्तोत्र आदि रचनाएँ भी पायी जाती हैं। किन्तु उनकी सबसे बड़ी और सुन्दर रचना नारदपाञ्चरात्रशास्त्र है। यों तो नारदजीके नामसे विविध पुराणोंमें अनेक उपाख्यान पाये जाते हैं, किन्तु समूचा शिवपुराण नारद और ब्रह्माजीके प्रश्नोत्तररूपमें रचा गया है। यह शिवपुराण ग्यारह खण्डोंमें विभक्त है और शैवोंके लिये एक बड़ा उपयोगी ग्रन्थ है। वृहन्नारदीय पुराणकी गणना उपपुराणोंमें की जाती है। इसमें ३८ अध्याय हैं और तीन सहस्रके ऊपर इसकी श्लोकसंख्या है। इस पुराणके दूसरे अध्यायके २० वें श्लोकसे नारदजीने श्रद्धा, भक्ति

आदि सद्धर्मनिरूपण, भगवद्भक्तिमाहात्म्य, राजाओंके उपाख्यान, श्रीगङ्गाजीकी उत्पत्ति, दान-विधान, पापभेद, नरकवर्णन, व्रतोंका वर्णन, ध्वजारोपण, वर्णाश्रमधर्म, गृहस्थधर्मविशेष, श्राद्धप्रकरण, तिथिनिर्णय, प्रायश्चित्तविधान, यम-मार्गका सविस्तर वर्णन, सांसारिक दुःख-वर्णन, मोक्षोपाय-प्रतिपादन, भक्तिसे सिद्धिकी प्राप्ति, वेदमाली, सुमाली आदि दानवोंकी कथाएँ, विष्णुपादोदकमाहात्म्य, उत्तङ्कमुनिकृत विष्णुस्तुति, राजा यज्ञध्वजका वृत्तान्त, मन्वन्तरोंकी कथा, हरिपूजाका फल और युगधर्मवर्णन आदि अनेक उपयोगी विषय भले प्रकार वर्णन किये गये हैं। लघुवृहन्नारदीय पुराणमें वैष्णवधर्मसम्बन्धी विविध प्रसङ्गोंका वर्णन है और नारदीय पुराणमें तो अति विस्तारके साथ सांसारिक तथा धार्मिक विषयोंका वर्णन किया गया है।

नारदीय पुराण दो भागोंमें विभक्त है। पूर्वार्द्धमें १२५ और उत्तरार्द्धमें ८२ अध्याय हैं। पूर्वार्धके वक्ता सनक और श्रोता नारदजी हैं। और उत्तरार्द्धको वसिष्ठजीने महाराज मान्धाताको सुनाया है। इसमें वैष्णवधर्म, भक्तिमार्ग, भागवतधर्म, अथवा पाञ्चरात्रप्रोक्त सात्वतधर्मका बड़ा ही सुन्दर वर्णन है। आरम्भमें शौनकजीकी की हुई भगवत्स्तुति ५७ श्लोकोंमें पूरी हुई है और प्रातःकालमें पाठ करनेके लिये बड़ा ही सुन्दर और भावपूर्ण एक स्तोत्र है। इसमें केवल भगवद्भक्तिहीका आद्यन्त वर्णन नहीं है। बल्कि इसमें तन्त्र-मन्त्रादिका वर्णन, वेदाङ्गोंका वर्णन, तीर्थक्षेत्रोंका तथा विविध माहात्म्योंका भी बड़ा रोचक वर्णन है। उस पुराणमें मनुष्योपयोगी प्रायः समस्त विषयोंका यथेष्ट वर्णन पाया जाता है। हम चाहते थे कि इसके कतिपय उपादेय अंश इस पुस्तकमें उद्धृत किये जाते, किन्तु विस्तारभयसे हम ऐसा नहीं कर सके। भावुक जनोंको एक बार इस ग्रन्थका साद्यन्त पाठ अवश्य करना चाहिये। नारदरचित ग्रन्थोंमें न मालूम कितने विषयोंका समावेश पाया जाता है।

अन्तमें हम यह कहेंगे कि देवर्षि नारदका जीवनचरित्र अनुपमेय है, उनकी उपमा वे स्वयं ही हो सकते हैं। अपनी लेखनीको विराम देनेके पूर्व हम यह कह देना आवश्यक समझते हैं कि परम भागवत देवर्षि नारद-जैसे देवर्षियोंके चरित्रचित्रणमें हम अल्पमतियोंकी योग्यता, अयोग्यताहीके समान है, तो भी भगवत्स्वरूप भागवतोंके गुणानुवादसे हमने अपनेको, अपनी लेखनीको तथा इस पुस्तकके पाठकोंको कृतकृत्य करने और इसी

व्याजसे भगवान्‌के पुनीत चरित्रोंका स्मरण करने-करानेके लिये इस चरित्रको लिपिबद्ध करनेका साहस किया है। आशा है, भगवज्जन हमारी इस मनोभावनाको ध्यानमें रख, हमें, हमारी मानव-स्वभाव-सुलभ त्रुटियोंके लिये क्षमा प्रदान करेंगे।

हृदि स्थितोऽपि यो देवो मायया मोहितात्मनाम्।
न ज्ञायते परः शुद्धः तमस्मि शरणं गतः॥

—नारदीय उक्ति

अर्थात् जो देवादिदेव भगवान् विष्णु अपनी मायासे मोहित मानवशरीरधारी प्राणियोंके द्वारा जाने नहीं जा सकते, उन्हीं परब्रह्म परमात्माके मैं शरणागत हूँ। इति।

उपसंहार

पिछले पृष्ठोंमें हमने देवर्षि नारदके चरित्रकी मुख्य-मुख्य घटनाओंपर विस्तारसे विचार किया है, किन्तु साथ ही हमें यह भी आवश्यक जान पड़ता है कि हम देवर्षि नारदका चरित्र संक्षेपमें भी दें। यह इसलिये कि जो लोग समूची पुस्तक न भी पढ़ सकें, वे यदि कम-से-कम इस एक ही अध्यायको पढ़ लें तो भी उन्हें देवर्षि नारदके सम्बन्धकी प्रायः सभी बातें संक्षिप्तरूपसे अवगत हो जायँ।

नारदजी ब्रह्माके मानस पुत्र हैं। ब्रह्माने पहले मरीचि, अत्रि आदिकी और सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार तथा नारदकी सृष्टि की। नारदकी कथा प्रायः सभी पुराणोंमें देखी जाती है। 'नार' शब्दका अर्थ है जल। सर्वदा तर्पण करनेके कारण इनका नाम नारद पड़ा। प्रजापति दक्षने प्रजाकी सृष्टि की। प्रजासृष्टिकी उत्कट इच्छाके कारण उन्होंने वीरण प्रजापतिकी कन्या असिक्नीको ब्याहा और उसके गर्भसे पाँच हजार कन्याएँ उत्पन्न कीं। हर्यस्व, शवलाश्व आदि दक्षपुत्रोंको योगशास्त्रका उपदेश देकर नारदजीने संसारत्यागी बना दिया। इससे दक्ष अत्यन्त क्रुद्ध हुए और शाप देकर उन्होंने नारदका नाश कर दिया। दक्षके निकट आकर ब्रह्माने नारदके जीवनकी प्रार्थना की तब दक्षने एक कन्या ब्रह्माको देकर कहा कि कश्यप इस कन्याको ब्याहें, इसीके गर्भसे नारद पुनः उत्पन्न होंगे। ब्रह्माने दक्षकन्या कश्यपको दी और उसके गर्भसे नारद पुनः उत्पन्न हुए।

श्रीमद्भागवतमें नारदने भगवान् व्याससे अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त कहा है, जो इस प्रकार है—

वह (नारद) वेदज्ञ ब्राह्मणोंकी एक दासीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। बाल्यकालहीसे वे उन वेदज्ञ ब्राह्मणोंकी सेवा करने लगे। ऋषियोंका भी उनपर अधिक स्नेह था। एक दिन ऋषियोंका उच्छिष्ट खानेसे वह पापमुक्त हो गये। उनकी चित्तशुद्धि हो गयी। ऋषियोंद्वारा उच्चारित हरिगुणके गानमें उनका चित्त अत्यन्त अनुरक्त हो गया। उस समय इनकी अवस्था पाँच वर्षकी थी। एक दिन साँपके काटनेसे अकस्मात् उनकी माताकी मृत्यु हो गयी। माताके मरनेके अनन्तर इन्होंने स्वाधीन भावसे उस आश्रमको छोड़कर उत्तरकी ओर प्रस्थान किया और घूमते-घूमते वे एक वनमें चले गये।

अत्यन्त क्षुधातुर और तृष्णार्त्त होनेके कारण एक सरोवरमें उन्होंने स्नान और जलपान किया। तदनन्तर वे एक वटवृक्षके नीचे बैठकर भगवान्‌की आराधना करने लगे। एकाग्रचित्तसे ध्यान करते-करते उन्होंने हृदयमें भगवान्‌के दर्शन पाये। परन्तु शीघ्र ही भगवान्‌के अन्तर्हित हो जानेसे नारद व्याकुल हो गये। भगवान्‌ने आकाशवाणीद्वारा नारदको सान्त्वना देते हुए कहा—नारद! इस जन्ममें तुम हमको नहीं देख सकते। क्योंकि अजितेन्द्रिय योगी हमको नहीं देख सकता। तो भी जो मैंने तुम्हें दर्शन दिया, वह केवल तुम्हारी भक्तिकी दृढ़ताके लिये। मेरी भक्तिसे साधुजन इन्द्रियोंको जय कर मुझको प्राप्त कर सकते हैं। अतएव साधु-सेवाद्वारा तुम अपनी भक्ति दृढ़ करो, इस प्रकार तुम शीघ्र ही इस निन्दित लोकको छोड़कर, हमारे पार्श्वचर होओगे। हमारे अनुग्रहसे तुमको प्रलयकालमें भी हमारी स्मृति बनी रहेगी। तबसे नारद हरिनामका जप करते-करते पृथिवी-परिक्रमा करने लगे। अनन्तर कर्मभोगके शेष होनेपर इनका पाञ्चभौतिक शरीर नष्ट हो गया। पुनः सृष्टिके अनन्तर विष्णुके मानस पुत्ररूपसे नारद उत्पन्न हुए।

ब्रह्मवैवर्तपुराणके मतसे नारद ब्रह्माके मानस पुत्र थे। यह ब्रह्माके कण्ठसे उत्पन्न हुए थे। ब्रह्माने नारद तथा अन्य अपने मानस पुत्रोंसे सृष्टिकार्य करनेके लिये कहा। नारदने देखा कि सृष्टिकार्यमें लगनेसे ईश्वरचिन्तनमें बाधा पड़ेगी। इसलिये उन्होंने पिताकी आज्ञाका पालन नहीं किया। इससे क्रुद्ध होकर पिताने शाप दिया। ब्रह्माके शापसे नारद गन्धमादनपर्वतपर गन्धर्वयोनिमें उत्पन्न हुए और इनका नाम उपवर्हण था। इस जन्ममें इन्होंने गन्धर्वराज चित्ररथकी पचास कन्याओंको ब्याहा था। उन स्त्रियोंमें मालवती सबसे प्रधान थी। एक समय ब्रह्माके शापसे नारद गन्धर्वदेह छोड़कर नरदेहमें उत्पन्न हुए। ये कान्यकुब्जवासी गोपराज द्रुमिलकी स्त्री कलावतीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। कलावती वन्ध्या थी। काश्यपनारद नामक ऋषि स्वर्गकी अप्सरा मेनकाको देखकर काममोहित हुए और उनका रेतःपात हो गया। किसी प्रकार कलावतीने उस रेतको खा लिया। उससे उसको गर्भ रहा और उसी गर्भसे नारद उत्पन्न हुए। काश्यपनारदके वीर्यसे उत्पन्न होनेके कारण इनका नाम नारद पड़ा। ये बालकोंको जलदान तथा ज्ञानदान करते थे और ये जातिस्मर और महाज्ञानी थे। इस कारण इनका नाम नारद हुआ।

ददाति नारं ज्ञानं च बालकेभ्यश्च नित्यशः।
जातिस्मरो महाज्ञानी तेनायं नारदः स्मृतः॥

—ब्रह्मवैवर्तपुराण

ब्राह्मणोंने इन्हें विष्णुतन्त्रका उपदेश दिया था। इनकी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान् विष्णुने इन्हें दर्शन दिया और शीघ्र ही वे अन्तर्धान हो गये। नारदके व्याकुल होनेपर आकाशवाणी हुई—तुम इस नश्वर देहके अन्तमें मुझको पा सकोगे। यथासमय शरीर त्याग करके नारद ब्रह्ममें लीन हुए। महाभारतमें लिखा है कि नारदने ब्रह्मासे संगीतविद्या सीखी थी और दक्षके पुत्रको सांख्ययोगका ज्ञानोपदेश करके संसारत्याग किया।

एक समय विष्णुकी सभामें नारद और तुम्बुरु उपस्थित हुए। विष्णुकी आज्ञासे तुम्बुरु गान करने लगे। तुम्बुरुका गान सुनकर नारदको ईर्ष्या उत्पन्न हुई, अतएव विष्णुकी आज्ञासे गन्धर्व उलूकेश्वरके निकट जाकर नारद गान-विद्या सीखने लगे। गीत-वाद्यमें शिक्षा पाकर नारद तुम्बुरुको जीतनेकी इच्छासे उनके घरकी ओर जा रहे थे, मार्गमें उन्होंने लूले-लँगड़े अनेक स्त्री-पुरुषोंको देखा। उन स्त्री-पुरुषोंने कहा—हम लोग राग-रागिनियाँ हैं। नारदके गानसे हम लोगोंका अंगभंग हो गया, तुम्बुरुके दर्शनके लिये हम लोग यहाँ खड़े हैं। यह सुन नारद लज्जित हुए। नारदने विष्णुके समीप जाकर समस्त वृत्तान्त कहा। विष्णु बोले, गीतशास्त्रमें तुम्हें अभी अभिज्ञता नहीं प्राप्त हुई, जब हम यदुवंशमें श्रीकृष्णरूपसे अवतीर्ण होंगे तब तुम गान-विद्याकी शिक्षा प्राप्त करना। भगवान् श्रीकृष्णके अवतीर्ण होनेपर नारद वहाँ उपस्थित हुए। श्रीकृष्णकी आज्ञासे यद्यपि नारदने पहले जाम्बवती और सत्यभामाके निकट दो वर्षतक गान किया, तथापि वे स्वर नहीं सीख सके । तदनन्तर इन्होंने रुक्मिणीके निकट दो वर्षतक वीणापर गान सीखा।

एक समय नारदने विष्णुसे मायाका स्वरूप पूछा। ब्राह्मणका रूप धारण करके विष्णुने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदिके घरमें जाकर मायाके विविध रूप दिखाये। इसी यात्रामें एक सरोवरमें स्नान करनेसे नारदको स्त्रीत्व प्राप्त हुआ। स्त्रीवेशी नारद बारह वर्षतक राजा तालध्वजकी पत्नी होकर रहे। अनन्तर विष्णु आये और तालध्वजकी पत्नीको सरोवरमें स्नान कराकर उसे पुनः नारद बना लिया।

विद्वानोंका अनुमान है कि नारद नामका एक व्यक्ति हुआ होगा, परन्तु पीछेसे उस व्यक्तिके धर्म–मत तथा सिद्धान्तोंके आधारपर एक सम्प्रदाय गठित हुआ। उस सम्प्रदायके लोग नारद कहे जाते हैं। क्योंकि सृष्टिकी आदिसे लेकर श्रीकृष्णजीपर्यन्त नारद नामक देवर्षिका पता लगता है। नारद कभी देवर्षियोंमें और कभी ब्रह्मर्षियोंमें भी देखे जाते हैं। ऐसी स्थितिमें एक नारदका होना वे विद्वान् स्वीकार करना नहीं चाहते। नारदके बनाये मुख्य ग्रन्थोंके नाम नारदपाञ्चरात्र, नारदभक्तिसूत्र, नारदस्मृति, नारदीय पुराण आदि हैं। इनका उल्लेख यथास्थान पुस्तकमें विस्तारसे कर दिया गया है। नारदका नाम वेदोंमें भी विद्यमान है। यह कुछ मन्त्रोंके कर्ता हैं और कहीं कण्व और कहीं कश्यपवंशी लिखे गये हैं।

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित तुलसी-साहित्य

श्रीरामचरितमानस

बृहदाकार, सचित्र, सटीक

ग्रन्थाकार, सचित्र, सटीक, मोटा टाइप
(हिन्दी, गुजराती, बँगला, तेलुगु, मराठी, अंग्रेजी)

” ” **सामान्य टाइप**

मझला, सटीक
(हिन्दी, गुजराती, अंग्रेजी)

मूल मोटा टाइप (ग्रन्थाकार)
(ओड़िआ, गुजराती)

मूल मझला (हिन्दी, गुजराती)

मूल गुटका (हिन्दी, गुजराती)

केवल भाषा (ग्रन्थाकार)

बालकाण्ड सटीक

अयोध्याकाण्ड सटीक

अरण्य, किष्किन्धा एवं सुन्दरकाण्ड सटीक
(हिन्दी, तेलुगु, कन्नड़, बँगला)

सुन्दरकाण्ड मूल गुटका
(गुजराती)

सुन्दरकाण्ड मूल मोटा टाइप
(हिन्दी, गुजराती, ओड़िआ)

सुन्दरकाण्ड मूल लघु आकार
(हिन्दी, गुजराती)

लंकाकाण्ड सटीक

उत्तरकाण्ड सटीक

अन्य तुलसी-साहित्य

विनयपत्रिका—हिन्दी भाषासहित

गीतावली—हिन्दी भाषासहित

कवितावली—हिन्दी भाषासहित

दोहावली—हिन्दी भाषासहित

रामाज्ञा-प्रश्न—हिन्दी भाषासहित

जानकी-मङ्गल—हिन्दी भाषासहित

हनुमानबाहुक—हिन्दी भाषासहित

पार्वती-मङ्गल—हिन्दी भाषासहित

वैराग्य-संदीपनी एवं बरवै रामायण—
हिन्दी भाषासहित

मानससम्बन्धी अन्य महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

मानस-पीयूष—(सात भागोंमें)

मानस-रहस्य

मानस-शंका-समाधान

मानसमें नाम-वन्दना

रामायणके कुछ आदर्श पात्र